विभाग दुसरा

प्रकरण पहिले

बप्पभट्टिसूरिकहाचे मूळ हस्तलिखित

प्रकरण दुसरे

बप्पभट्टिसूरिकहाच्या मूळ हस्तलिखिताचे देवनागरी रूपांतर

प्रकरण तिसरे

बप्पभट्टिसूरिकहाचा मराठी अनुवाद

प्रकरण पहिले

बप्पभट्टिसूरिकहाचे मूळ हस्तलिखित

॥ॐ॥ सिरिहेमचंदसूरिपवरो वयारिक्ककरणतल्लिच्छो। उदयप्पहसुहिसिक्खणत्थं वखाणं समाइट्ठो॥१॥ दो
पुरिसे धरउ धरा अहवा दोहि पि धारिया धरणा। उवयारेन तस्स मई उवयरिअ जो न पच्चुवयरइ॥२॥ उवयरं
पुरिसेहि सामन्नेणं जे सव्व लोआण। विहिडिय निवत्तणाया विसेसं तं होइ कायव्वं॥३॥ सिरिमोढेरपुरंमी
आमकुमारस्स विहलिअस्सावि। अह बप्पभट्टिसूरीहि। कारिउ तस्स उवयारो॥४॥ जं ता उदयप्पहेण णसणियास
यवं को नाम आमउकुमरो। कह उवयरियं सूरीहि। वित्थरेण इमं कहसु॥५॥ गुज्जरविसयंमि मोढेरपुरव
रंतबंवीरजिणत्थुवणं। विहियं च जेवलसन्निणासत्तिंसुत्तेण॥६॥ नवक्कि विचक्कवट्टी। विसिद्धसयमणुणीहि
संथुओ। सिरिवद्धमाणसूरी। दूरीकयतिमिरनियरवो॥७॥ गुरुविणयमन्दिअतणो। तस्स वि सीसत्तवरप
सहत्ति वरबलसचूरधारि स्वपासिद्धो सयलस्स वलए॥८॥ गोवालयगिरिपुरानिवई नरवणो आम नाम उक
मरो। तन्न जरापरणपरपवित्त पारिब्भमंतो य संपत्तो॥९॥ आमो न मित्तसूरि उवविट्ठो बप्पभट्टिपासंमि। सो
सूरिहिं पुट्ठो कहिं उ निय वइअरो तेण॥१०॥ तो सूरिहि तणाउ निच्छितो पट्टसुअस्स पासंमि। पुरिसाण वि
हत्थिया अखोरहणतु मंडणया॥११॥ नह मसिआईउवएसं जाया बप्पभट्टिणा सिद्धा। पढमा उदसण उवि
आमकुमारस्स सुविसिट्ठा॥१२॥ सूरीहि अह सयलाणं सारस्सयं सयं दिन्नं॥१३॥ सत्तेण अणाउ ब

लाउ हु जिसयणाउ॥[illegible]॥ स मारा हणा य जं सरसई बप्पभट्टिणो सिद्धा। [illegible]
अत्थस्स॥१४॥ किरिया ही णत्तणाउ। अह कइ निवइ नरवणो जाउ। अइ देसपसत्ताणं। ताणं वट्ठा निदिअ
हाइ॥१५॥ अह गोवालगिराउ। जणएण आमकुमर आणयणे। तिअ सिन्नाउ कहिअ। रज्जं तु वइ आग
छ॥१६॥ सिरिवद्धमाणसूरी। विन्नत्ता ताव आमकुमरेण। पकमहजणयाए सो। समागउ सिग्घमेअस्स।
॥१७॥ पकुपसिऊण संपई। मक्कमित्तं तिय पएगविकऊण। पेसहमए विसहिजा जहम हमएण लिज्जुइ होइ
॥१८॥ तो सूरीहि सणियं। वच्छ तुमं गच्छ आउ रोजणउ। नरवम इक्कालरेखवं पच्चो तुहवंछिअं करिसो॥१९॥
॥ आमो गोवालगिरिं पत्तो मिलिउ अनिअयजणयस्स। पिउणा रज्जे ठविउ। नयवुद्धे पालए रज्जं॥२०॥ सु
मुक्कं तेमि गुरूहिं। निवेसिउ बप्पभट्टि सूरिपए। मुक्कलिउ गोवालगिरिपुरे आम पासंमि॥२१॥ सि
रिबप्पभट्टिसूरी। पडिबोहिंतो सहकमलाण। नियपरिवारसमिउ। गोवालगिरिं मि संपत्तो॥२२॥ व
द्धाविउ नरिंदो। आगमणेणं बप्पभट्टिस्स। वद्धावस [illegible]
[illegible] यस्स रन्ना। दिन्नमतो सयं दाणं॥२४॥ अइरिद्धिसमुदएणं। नरिंदचक्कण पउरलोग
ण। विन्नाणऊकंवाए पत्तो सूरिस्स पासंमि॥२५॥ उवयारमन्नाणेण। सुहमसावेण नरवरिंदेण

पारद्धो अपवेसो। नयरे ऊसिअपडायंमि ॥ [illegible] ॥ अह विद्धारेण नियमे दिइंमि। आणितु सूरिं वररय
ण। अग्घासणाणं वविद्धा। नरनाहा विन्नवइ एवं ॥ [illegible] ॥ गिरुआउ पकरुणाए यइ हलोयसुरकमा
हणयाउ वयारसारसगाम्मा। दहिवासा मयम अ॥ [illegible] ॥ सणियसूरीवारणा। कइरञ्जणेन कित्र
माणां [illegible] आजम्माऊम्म हिकउ। परिहारा सव्वसगस्स ॥ [illegible] ॥ इह सो न छिंति ता। परा वयारिकसाव
रसियत्तो। सूरि वरस्स पयदहु। सो सद्धणेइ नरनाहो ॥ [illegible] ॥ ता गा अवरावासो। समप्पिउ नरवरेण
सूरिस्स। परमपमो अपसन्ना। गामंतिदिअहाइ दासित्ता ॥ ३७ ॥ इदिअ चवलत्ताण। जोव्वाणविस
यपरव्वसत्तणउ। उद्दरिमयाय मनणस्स। अन्नया नरवरिदस्स ॥ ३८ ॥ कलकंठम्मिगयवद्या। कला
विलासस वणंमि। अइतिव्वो संजाउ। इविम्मी कहवि अणुराउ ॥ ३९ ॥ नो अजविसंजाउ। कज्जाविणा
सो अनरवरिंदस्स। इवीइ समसमम्मा। इयजाणइ वप्पसूदिन्नि ॥ ४० ॥ उक्तंच ॥ आकारैरिंगितैर्गत्या।
चेष्टया भाषणेन च। नेत्रवक्त्रविकारैश्च। लक्ष्यतेंतर्गतं मनः ॥ ४१ ॥ तथा च ॥ कत्तो वा कसलिणका
तो अइदुट्ठपिबिअद्वाइ। कसमिअ चमुणिज्जइ। वइद्ध जणसंकुले गामे ॥ ४२ ॥ आयारिगियकु
सलेणं। सूरिणा मित्तअयसरक्कण। सणियनरिंदपुरउ। अन्नवएसेण गुणनिहिणा ॥ ४३ ॥ यु
ग्मं ॥ सहतं संकुणमहा। हंसमहार्घकांत। कांजाघनस्तनतटोचितचारुमूर्त्तिं। आपामरी कविनकठ
विलग्नसग्न। हाहारहारितमहो सवतागुणित्वं ॥ ४४ ॥ तव्वयणसवणमित्तेण। नरवरिंदेण ऊग्गा

[illegible] वियसया [illegible] ररसिकउं [illegible] ऊवजार [illegible] रयस्सकयाविने
यसंकेमि। जम्मासुमाइलोए। चक्कअरिण न ऊरिणहोइ ॥ ४५ ॥ कहकह छसंकहाण। नहइय समस्साइ
इरिणो हिइ। अच्छान हिहियाण हि। सूरी अइन्निवघरपत्तो ॥ ४६ ॥ आगच्छंत सूरिं। नरवइ अद्धासणाउ
निवघरणी। दट्ठूण सचलिया। सूरीनाउवित्र उवविट्ठो ॥ ४७ ॥ निकुंचक्कमंताण पएपए कुणइका
समुहसंगा। पसणइ रायाएवा। फुरइ लोउ सगुत्तं ॥ ४८ ॥ तो अणवयंणं सणियं। चसिद्धसारस्स एणगु
णिवइण। रूणंरमणपएसा। मेहलियाचिवइ नइपत्ता ॥ ४९ ॥ निसुणितु इमं राया। जाउ सविक्कमा
णसो सहमा। किमइ अवरो हमी। एसो संचरइ कइ आवि ॥ ५० ॥ ताए विडुरयणीए। वसिउ राया कया
इ सुज्जाए। पच्छसे नरनाहो। पढमं जग्गितु संचलिउ ॥ ५१ ॥ अइनिद्दाइ परवसा। जइ तजा य नियमियविलि
इट्ठा। वलिऊण तीए अग्गा। पडेण सच्छाइउं चलिउ ॥ ५२ ॥ सइ समत्तिसंविउद्धा। मइ अग्ग नरवरेण सवरि
आ। अइइपमाउ जाउ। न पइउ इहतउ नाउ ॥ ५३ ॥ पच्छा वाला अणेण। नव्ववइणा जाणिउ णतस्सावा। अ
इकइ न्निनरिंदो। गाहा एकुणइ उल्लिहिए ॥ ५४ ॥ अह सूरा सपत्तो। नरवइ अद्धासणमिउ वविट्ठो ॥ वसू
रि अ नरवइणा। इररगाह इमदइन्ना ॥ ५५ ॥ अज्ज विसा परितप्पइ। कमलमुही अप्पणो पमाएण। तो
वप्पहट्टिसूरी। पसणइ निसुणेह नरनाह ॥ ५६ ॥ टह रियकानाराया। संजाउ जावतणरत्ता सूरी। प
टमविउद्धणतरणं। जो से पच्छाइ यअग्ग ॥ ५७ ॥ सोउ णिउ णइ मंराया। चित्ते मिच्चमक्कउं यसइसत्ति। मइ

अत्तेआराया हि। सममेसो अवणत्तणा॥५२॥ पासो य ठमससमस्साइ रंगो नाउं तह केवलीया णानरवरमणे वि
लोआ। चसिअसूरिस्स उवरमि॥५३॥ अह चिंतेइ नरिंदो। एसो महपाणवच्छहो मित्तो॥ आतउरमइमइ
।तो पभिछिवववियरउ॥५४॥ जइ विक्कमस्स वयारो मणंमि निवसेइ नरवरिंदस्स। तह विक्कवइर
स्कि तस्स। दढयरं होइ लोगंमि॥५५॥ सिढिलायरं नरिंदो दट्ठुं चिंतेइ बप्पहट्टिवि। कह अम्ह निम्माणं
।चिट्ठेउ नुकुई इ ३॥५६॥ उक्तं च॥ स्वदेशस्था प्रियाता चैत्‌ काकाः का पुरुषा मृगाः। स्थानभ्रष्टा न विद्या
श्चायत्रतत्र कलालया:॥५७॥ तम्हा अ॥ देसु पिआरउं अप्पणो। कारिसह य पडिहाइ। माहं जह पत्ति
अट्ठमइ। पिअरिसिढिल उनाइ॥५८॥ इय चिंतिऊण सूरी। अकहंतो नरवरस्स संचलिउं पत्तो अ
सिग्घमेव यावउरमि सिरिक्कनउ कंमि॥५९॥ तत्थ धम्मनामो। नरनाहो आमरायपडिवक्खो॥ ते
ण नाउं सूरी समागओ बप्पहट्टित्ति॥६०॥ नियपरिवारसमेउ चलिउ सूरीस्स संमुहो राया। जस्स प
सिद्धमेआ। हइअ कसूआ करोलो उ॥६१॥ महया विड्ढमेणं पवेसिऊणं पुरंमि नरवइणा। एगंमि
अधवलथरे सूरी मुक्को अविलत्ते॥६२॥ जह उम्हे वरकाणं। कुबेता आमनरवरसहाए। नह अम्हाणं
पुरउ निच्चं उम्हे हिं कायव्वं॥६३॥ धम्मसहाए सिरिबप्पहट्टिसूरी करेइ वक्खाणं॥ तस्स वणाउं जा
उ धम्मनिवो सावउपरमो॥६४॥ अह अन्नया नरिंदो सूरिं पत्तणेइ सबेम ठिउणा। इट्ठ तुम्ह पाऊण

[illegible]

अकहेवा॥६६॥ बक्करइ बप्पहट्टि जे जयऊ नेतह त्ति नरना [illegible] मरआगउरिज इआ [illegible]
त्तो जोमो॥६७॥ तो अउलवइ धम्मनिवो। आमोइ त्ताग उय तुम्हे हिं मह कहि अघोनूणं। पडिहत्त
व सूरीहिं॥६८॥ काउणरायवाडियाचलिउ गोवालगिरि निवो कइआ। पिछइ मयकप्पडिअं तह
रउ लिहिअगाह हे॥६९॥ तद्यथा॥ तइआमहतिणम [illegible] पिआइ छोरसुणहिं सफलं। अइकुंभ
रिंदो। इरेउ तं न सक्केइ॥७०॥ पडिअं पंचसयाणं विहिनिव हाण तस्स मयपाई तेनि अलि उससहेण।
सुरंति कहं ति नरवइणा॥७१॥ चित्तंमि नो चमक्कइ। कहइ एयस्स पंडियस्सावि। अह गिहिखालज
ले किं फुडइरा यहंसस्स॥७२॥ जेणं तु णि अकहं। सरसं सिरिबप्पहट्टिसूरीणं। तस्स न अन्नं फुडइ
वऊय णकण्ला णकोडयं णो॥७३॥ तो नरवइस्स तइआ उक्कंठा सूरिदंसणे जाया। किं अच्छिबप्प
हट्टी। कहइ हि अयावजो अउ॥७४॥ अह बप्पहट्टि सूरिस्सा तं मि समयंमि आगउ लेहो। कालइहि
ठो अनिवो गाहेमहिट्ठउ निअइ॥७५॥ तद्यथा॥ पइ सुक्काहि वितरा वर फिट्टइ पत्त तणन पत्ताणं। जइ
पुणगाया तऊ सा काह विमाते हि पत्तेहिं॥७६॥ पडिगाह ठेरल्ला। पढहो दव्वा विउ पुरवरंमि
।जो वरगाहं काहोट्टइ निवो तस्स इट्ठवरं॥७७॥ सिरिवट्टमाण सूरीस्सा ताय गो विमल सूरिना

माया तव्वासि ते ण गाहं। विहिकयं पेसिउं रन्नो॥ ४०॥ सं उच्छेणं रन्ना। तं गाहं बप्पभट्टिलेहमि। तं अ
प्पिउण मंती। पढइ विउ[illegible] कल्लउ क्कमि॥ ४१॥ तो बप्पभट्टि हट्ठो। चडिउ लेहो यवाइउ तणा दद्दूणं
पडिमाहं। संउट्ठो अत्ति चित्तमि॥ ४२॥ तम्हा॥ गाथाहं कारणमि रिधरिक्कं पि अमहिडि पउंतिपत्तहए
उपत्तं तण तरुवरकाइ करंति॥ ४३॥ मंतिवरेण ताहि किं लत्ता सूरिणो य सहमत्ति। चइत्त रंगो वालगि
रितकरं आमनरनाहो॥ ४४॥ सूरिहिं निअपरुन्ना। कहिआ सचिवस्स तणइ तो मंती। कहइ मि वपडि
वुरुक्कगिहे। आगवइ आमदेव निहो॥ ४५॥ तो बप्पभट्टि सूरी। पत्तणइ जइ अविअम्हकज्जं हि। आग
वइ ज्ञानिवो। कहहत्तउ तम्ममहसंते॥ ४६॥ धम्मति वस्स मिलिज्ञा। गोवालगिरिमि आगउ सचिवो। क
हिआ सूरिपइन्ना। तणवियआमनरवइणो॥ ४७॥ इय नरेणवरका। न्हाट एण आमनरवरिंदेण।
दिट्ठो गइ वेइ याए गिहं मिलिरकागउ सा झ्झा॥ ४८॥ नीएत्तणिअत्त यव। गिहमज्ञवाद देमिजत्तलि
क्को। सा कुसरल सहावो। संपत्तो गेहमज्ञ मि॥ ४९॥ तुष्टमत्ता एवुणो। ताए सा कुयपडिउएव। सामि
अकारसुंदरं। तेणागेणं तुष्टुण मज्ञा॥ ५०॥ तेण अणगारेणा नइ च्छिअ तो इव च्छिअ कहविा च
तइ सा कुकहमहउवसग्गो एस अणुकूलो॥ ५१॥ चिंतितं चलेतं वरवविट्ठ ह्रलितं कुताओ नान
च्चा पित्तमं चित्तसं चितवत्ता। वरं हि मरणं सुविशुद्धकर्मणो न चापि शीलस्खलितस्य जीवितं॥ ५२॥
णाइय चिंतिउण सा झ्झा निग्गउ दइदेहलिय जामि ग्घा पन्निपइरो मुक्को। कहाए पिट्ठतो नीए॥ ५३॥ न्ह

[illegible] तो पत्ता। [illegible] मि॥ [illegible]॥ ५४॥
वल्लणा विएणगे पुणि विकरियं अ सवइहइ अ सुणिंदो। मह वयं किं [illegible] मि उरम विसुं चना गस्सा॥ ५५॥
नत्रमिणं वुत्तंतं। वियाणं इत्ता पयसमस्सा एण काउणवद्ध [illegible] आएणं। लम [illegible] नरवरं किग्घा॥ ५६॥
॥ तो पडिएहिं सवेहिं। हरिकुलं समप्पियं छित्ते। नरवइस्स ताव ढो। हुं हुं ज्ञान केणावि॥ ५७॥
॥ तो बप्पहट्टिसूरी। सल रिउ निवइ वित्तमज्ञमि। हाहारवमन्निज्ञो। जो महमणवलिअं कहइ॥ ५८॥ ज
म मतिहिं तइआ। अवरिच्चिअस्सा चिरंकमित्तस्स। विज्जाधरेहिं चिहिउ अव्वयारो सो गउ विरलो॥ ५९॥
॥ हाहा कहसजाउ। निग्घिणनाहा ण निग्घिणो अहयं॥ जं महतं तहिं विहियं। जलंतत्ती यस्स पडियं
॥ ६०॥ उक्कंच॥ उव्वयाकुगुकिकह शउक्कणं हतं जाणि कुक्केडिआ। उअणुत अक्क विससरइ। जंति
णुमंझं छ हा फडिआ॥ ६१॥ अहवा किं महकज्जं। महाणु सावणं तण अवरद्धं। जं तुवइ वइ आर
णवि। पाणपिउ मिट्टि लिउ समए॥ ६२॥ सो पुण अहि माणं अक्कणो। दिद्धायर उगउ विदेस मि। त
त्रउणो विज्ञाउ। रायगु कुग कुअस क्कारा॥ राउक्कंच॥ अराश्वर्द्वत्तचिद्धा। श्रासूपचतन्मध्यो।
पितः। वयो तिय त्रयैर्वेचा तत्रतत्र कृतालया मता। तस्मान मीअइकिंचि। अहं पुणो तविउ गउ रक्के
णा सततं मिलाइ गउ। मच्छवइ यं नपावमि॥ ६३॥ जइ जामि कन्न उज्जं। मराम पडिवरक्क हत्व उअ
हयं। इ ठेयव्व यसं विउया। म पइवच्च हिमहपाणा॥ ६४॥ तामिन्नसपउगो। जाए जइकहविजतिमे

पाणा। एवं पेहिज्जुमाणा। संचलिउं कल्लउ ऊंमि॥५॥ वाणे रतिअवाहणाणा। मेलिज्जु आमनरना
हे। कइवइ उरिससमेउं। महो र एञ्जन्तिसंपत्तो॥६॥ संञ्जा समए बन्नो। मिलिउं सिरिबप्पभट्टिसूरि
सूरिस्स। परमाणंदो जाउं। चिरकालिअ ताण मित्ताणं॥७॥ विन्नवइ आमदेवो। जावन मे कोइ
जाणइ इवा। चइऊ हे गोवालगिरि। तुम्ह पइन्नाय संपत्ता॥८॥ मह पडिवरकगिहमि। वि अं स्स वट्टे
इयाण संदेहो। ता मा कुणह विलंबो। सासो न समाइ मह पिट्ठे॥९॥ उक्तं वइ बप्पभट्टी। मइ इवावि
ए नउं अ को तुञ्ज। सिरिधम्मनरिंद सहा दहूण वच्छ मच्छ मणो॥१०॥ अह धम्मनरिंद नरो। पहा य सम
मयंमि विन्नवइ सूरिं। हक्कारेइ नरिंदो। परिहाए दसण निमित्ते॥११॥ वद्धे इ बप्पभट्टी। आमनरि
दं धरिज्जु बाहाए। दहूण स जलपरिहा। धम्मपसण इ सूरी॥१२॥ कन्निपवित्तडी जणु जाणइ दो
रा। विरहिमाणुस जम्मे रइ तसु कवण तिहोरा। तत्ती सयल्ली अम्भही केहा। धणि जुत्तावल्लीविउमं
इ सिणेहा॥१३॥ वार तिगं पढिऊण। एय वा क्काय बप्पसहिन्ति। चिंतइ धम्मो अहय। मह पडिबिं
बो अहो राया॥१४॥ धम्मनरिंदो ता हे। वदेऊण विसञ्जइ एस्सूरिं। सण रयवद्ध ह सिग्घा। वद्धइव
रका णा वेलंति॥१५॥ आमनरिंदेण समं। सूरीगं नयनियवाणं मि। दाऊण आमसि रका। संप
त्तो रायसवणंमि॥१६॥ सबाव सरसहाए। नरवइ सिंहासणंमि उवविट्ठो। सिरिबप्पभट्टि स
री। तप्परउं धम्मनरनाहा॥१७॥ सामंतमंडलेसर। मन्तिमहामंति सिद्धिपरियरिउं। धम्मस्स
[illegible] सारमेती। [illegible] मंपत्तो॥ [illegible]
[illegible] आमनरि [illegible]
[illegible] बप्पभट्टि [illegible] सिरयासेउक्क [illegible] तस्स रमा [illegible]
[illegible] सिरिबप्पभट्टि [illegible] विन्नवइ [illegible]
[illegible] बप्पभट्टी। आमनरिंदस्स ऊण [illegible] धम्मनिवो
उवइ। नय वसो केरिसो आमो॥२३॥ जस्स सयाविसय विआ। गुणागहणपरा उ मेसया दिट्ठा। ज
इ तस्स सम्मो इउ। कोइ ता मझ दंसेह॥२४॥ सव सहाम उेणा दिट्ठिसा मिज्जु दंसए सूरी। जो मतिउ
ट्ठवाहो। पच्चरकोएस आमत्ति॥२५॥ जप्पइ धम्मनरिंदो। ह हो आमस्स निरुवमं रूवं। रूवं व पमा
णेण गुणा। संताविऊंति सद्वे वि॥२६॥ अह उहइ आमनिवो। एगिउअ इ अथु लिनमिउ। जइ ठग्गा
इयहरेगो। तइ वरका णं वि हेअ वं॥२७॥ इअ सावे ड नाउं। सूरिंदो अग्गुलाउ उ खेडा दो जामे य करि
स्स। वरका णं सुवउं जाहिं॥२८॥ आमनरिंदच छिए। सूरी न ह कुह विऊण इ वरकाणा। सम हो धम्म
नरिंदो। जइ इह जाउं वित्तलिहिय वुं॥२९॥ सिरिबप्पभट्टि सूरी। जा वरकाणं सुएइ सरहसत्तिं। तो धम्म
निवो जंपइ। दिणस्स जामो वि न कुपत्तो॥३०॥ हसिऊण भणइ सूरी। सउत्तो न रवरिंद्दु रि मट्टो।
घडिकरएराया। जाजा य इता न हवि वा॥३१॥ जंपेइ बप्पभट्टी। अम्हे गोवालगिरि वराजामा। उ

म्मा समएणं धम्म। निवो विन्नवइ एवं॥३२॥ सुरे मरह निययपइन्नो। सूरीपत्तणे इअ आगउ आमो नर
वइ तणेइ किमहो न साहिउ इह संपन्नो॥३३॥ परिहातीरे कहिं आ वारत्तिग इह अच्छिदो राया। इह
वयय पच्चखे को। हा हा वलं दंसिउ आमो॥३४॥ धम्म नरिंदंती इह तरमि देसा लिएणं विन्नत्तो। तं बोलग्गा
लिमि। चिट्ठइ कंचणमय सिलाया॥३५॥ ता हं सममेणं आइच्छा दंडनायगो रन्ना। संघवच्च इअ
णहा अविद्धि आमनिवं॥३६॥ पत्तणइ बप्पभट्टी गयस्संदोगया जामी। उवगयस्स सपव्वस्सा कइ गुवि
छिऊण पव्वसणी॥३७॥ सेणाचाई विसबलो। चलिउ आमस्स पिट्ठउ झत्ति। गंतूण देससीमा जहगउ
आगउ सतहा॥३८॥ चउरंगबलसमेउ धम्मनिवो बप्पभट्टिणा सहिं। पत्तो बकुसत्तिजुउ सीमाए नि
ययादेसस्स॥३९॥ नियमत्तिराणए उणा पेसइ अह सूरिणा समं सवो। सूरी वि तहिं सहीउ गोवाल
गिरिम्मि संपत्तो॥४०॥ आमनरिंदो ना उणा बप्पभट्टिस्स संमुहो चलिउ। वंदेऊणं दो उणा बाहिं य चिसय
नयरंमि॥४१॥ लेच्छमयं कप्पडियं तप्पुरउ दोपयाइ गाहाए। करचत्ति अगलंतो पुव्वं जं गविय आसि
॥४२॥ तद्दंसिअं तहच्चिय आमनरिंदेण बप्पभट्टिस्स। गाहद्धं दंहूणं सिग्घं तं सूरए सूरी॥४३॥ तइआ
महनिग्गमणे पियाइ घोरं सुएहिं जं रुन्नं। करवत्ति बिंडनिवडणं मिणंत तस्स सतरिआ॥४४॥ त
पूरणाउ रन्नो। विलीअ मइ गयंदहियाउ। नासमेतमपसरा सूरी चित्तवसए वत्तो॥४५॥ बीअदि
णमन्नो तं मिगवरकं मि सूरीण सहिं। उववि‍ठो नरनाहो॥ चित्तपयं कहइ सूरिस्स॥४६॥ तं छ्वा॥

...उरा पवरइ वरस्स पाउ॥ इय हमित्तसमस्सो। एयं महहियय ज्ञात म्जुत्तं। सिरिबप्पभट्टिणा चित्तं। सि
...ते हरिऊं सिमेत्ति॥४७॥ कवाउ जा सज्झवरगणाणं अन्नं छिंडं तु वणगच्छियाए नगछिउं...
...जिइंदिहणा सलेउरोपद्धरोपद्धइस्स पाउ॥४८॥ एवं सचारन्नो। नासेसं वियलियं चिलीयं तं...
...डिआणं ताण। सुहणवट्टंति दिआ हाइ॥४९॥ देसन्तराउ कलाविनाडिगा आणिआ वरसमाआ
...ओम्हइ वकुगा वाउ। दावउ पकाइ नकिणा॥५०॥ पिअसंतररणपदुहा। तवाद धारा निवा सन्नोआ
ए। दिक्ख यइ वकगा वाउ। दावउ पढिय जा राणए॥५१॥ एअं सुणिजु राया। कोउ सयलो वि विन्हि
उ तणाइ। सिरि बप्पभट्टि सरिसो। संपइ लकुपंडिउ अन्नो॥५२॥ आमनरिंदेण समं सहीव विठो
अ बप्पभट्टि विजोएइ एगदिट्ठी। पवरनमित्तववनच्चंति॥५३॥ राया विसूरि दिट्ठिं। खुत्तं दहुं नडीइ
लिलिराल्लुणं महमित्तस्सय नडीइ उवरिम्मि अणुराउ॥५४॥ सत्तंगमिमेरक्को। विहलं मन्नेसमिद्धि
म विस्सयलं जमहवयंसं वंछा न विउकइ मसंपासाउ॥५५॥ इय चिंतिउ एण रन्नो। सूरिस्सयासे प
उ ससमयमि। सिक्क वि उपट्ठविया। सा वि नडी लिहिअ सिंगारा॥५६॥ वसहि उवारमुहंमी। पवि
संतितनउ डिनिए कुणत्तो बप्पभट्टिसूरी। विसज्जसा वणसाउ॥५७॥ सूरि सयासं मि नडी। आगंतू
णं तु फ्रंतिउ वविट्ठा। कवाणणं साउ अपइ। करेमि सवाद णं तुम्ह॥५८॥ प्रसन्नोइ बप्पभट्टी। एवं ता
उ न्निइ बकोदोसो। संवाणणं कुणंती। अउरेण समइ एसूरी॥५९॥ सुहदं सीइसूरी। उच्चविसिउ रो

यएयस्स हसवि। सीएसणिए किं पक्का मोउ हरिसमस्सगाणं मि॥६१॥ सूरी सणेइ अम्हे। विस्सामएण य गुरुएण कु

धंता। तो ताण समवाए समो। फरिसो उहगुब्बस्सावि॥६२॥ सजाउ मम्मकारा। तेणं ते सुमरियाम एगुरूएणास

हेरोयएण कूडं। एय जाणं हिअ चिअप्प॥६३॥ तो लक्खिउ एगणिया। गया यपासंमि आमनरवइणो। वि

न्नवइ दिवपब्भरा। पासे हवे सिआ कहसु॥६४॥ जा पुइ नरवरिंदा। सहसो पब्भरं कहं कहसु। तो तीए वु

त्तं तो। नरवइणो साहिउ सव्वा॥६५॥ अह बीयंमि दिणंमि। सूरिसया समिनागउ आमा। सूरी गउ

सयचिआ मज्झा कआ मनिवगेहे॥६६॥ लज्जा वनमवयणो। आमो जाव कुरेइ नज्ज किंपि। तो बप्पभ

ट्टीसूरि। तासइ नरवर किंमेअं ति॥६७॥ वागइ नरवरिंदा। अम्हे हिअ विणउ कउ आसि। सूरी भणइ

तमेवया। पुच्छा मो तुम्ह पासंमि॥६८॥ आमो जंपइ कव्वेएगा। दिट्ठी नडी इउ यरिंमि। तुम्हाण मए दिट्ठा

तउ मएसा विपट्ठविआ॥६९॥ अरकुरनिरिरकणाउ। अम्हाणं आसि तरलिआ दिट्ठी। तातीएनील

वट्टीह लोयएण विस्सामएण येवि हिअ॥७०॥ अइ रज्जसी लज्जोगो। तरलिअ दिट्ठी हा वइ जइ वाणो। स

रासणइ न अन्नो। असिप्पाउ न बिअ म्हाणं॥७१॥ मम अवन्नाए सा। उम्हे हिसब्बहा रक्खमे य बा। पाए

सु लगिऊण। सूरिं खामे हि नरनाहो॥७२॥ पारद्धो धम्मकहा। निव पुरउ बप्पभट्टि ण ताहो। आमोत

स्स वणाउ। धम्मा सिमुहो यसंजाउ॥७३॥ अह जंपए नरनाहो। नय वजिएण सासणस्स मज्झ मि। तुम्ह

चिअ सब्बाणवि। पहाणया सत्त्वं रसुणि दीणं॥७४॥ ते केवि अब्भिजिणसासणंमि। सव्वुन्नमाय अण

गारा। सूरीलणेइ जाणां पयरेणु समानआम्ह वि॥७५॥ विन्नवइ आमएवो। नयव अब्भिकोइ

[illegible] ॥ ता सुसाहेह यसिक्खणं॥ [illegible] ॥ सूरी [illegible] नरवइ [illegible]

यवाउ मि। अम्ह गुरु विमल [illegible] ॥ नयपउ बिहइ अइमहप्प॥७६॥ चिंतेस नइ नरवरिंदो। निरूवम

चारि तंब्भइ अगणता। सिरि बप्पभट्टी सूरी। परो वयारी अलयजुत्तो॥७७॥ एअस्स निअ बिगुरु

जो या तहसणं मिउ कवा। जस्स गुणे अम्ह गुरु। गिह्ह सो केरिसो होइ॥७८॥ इनि मरत्ती इतउ। अ

क्खरपट्टेगा पिहिअ सब्बओ॥ पिरवइ विमलसूरि। कुइ तरिउ आमनिवो॥७९॥ पडिअ नणाणउ रउ।

कहाइ वरकाणंइयं कुणइ सूरी। नारीइ रूववन्नणा। पच्छा वो वइ इएत इअ॥८०॥ सलोग विउगा

हावत्ता वहला विलास लिब्बोआ। महिलाण स विसेसा। ताव च्चिअ कहइ सूरी॥८१॥ तो विम्हिउ

राया। चिंतइ सिंगारिणो अइ वाम्ह। उण सुरिक्क हिअ सावा। न याणिमो इच्छिरं कालो॥८२॥ एवं उण

साणुता वा सव्वसाहइ अइ ईव सिंगारी। तो कामुयाण पढमा। रेहाए यस्स जियलोए॥८३॥ तो बीअ

दिणे सिरि बप्पभट्टि णा तस्स जाणिउ ता वा। एसो जहिं सलेहि। उक्कोनऊसं पयं तहिं॥८४॥ ताम

न्निर त्तीए नि सु यम्मि सिरि विमल सुरिचरकाणो। तहो साउ एसो। धम्मे टिट्ठा य रो जाउ॥८५॥ तातेहिं

चिय एसो। वाणे आगच्छइ न अन्नेण। निअसा कूणं सुहा उ। एय जाणा विय ताणं॥८६॥ कवि अर

विसकाऊण। तेवि सिरि बप्पभट्टिणा मलिआ। तेण विनिवपासाउ। दवावि उ अवसरे ताण॥८७

॥ अरकेव पुब्बं य चियालो अदत्ता वहाणय काउं। तहिं वि नरिंद पुरउ। सार हो बाऊ बलि विन्नउ॥

८८॥ सच्च विउ सा को विजा वयण पवचेण तेहिं चीर रसो। जेह रणरसिउ आमो। रवगं कहिं चुम चलि

वलिउ॥८५॥सहसत्ति अत्ता वकरे। घित्तूण तण इ बप्प सट्टी वि। नरनाह कहाएसा। संगामो वट्टए नेय॥८६॥ जा विम्हिउ नरिंदो। दिसावलोउ करेइ माहप्पो। ताव त्ति विमल अक्खरा। रूणि वेसं गिन्ह एस्स सा॥८७॥

नरवइणा विन्नत्तो। किं एत्थ कहह इंदियालं ति। तो तेण इ विमल अक्खरिं। जएय तं तत्थ जाण॥८८॥ आबाल काल उवि ज्झा। गहिय वया मुक्क सव्व सावज्जा। अन्हे नरवर माणसु। ना याय अदिट्ठ रणरणया॥८९॥ उव्हेहि अणेगा छिआ। संगामे साहिआ नरवरिंदा। वयणाउ अम्हेहिं। तुम्हाण विम्हउ विहिउ॥९०॥ नरह एहिं तत्थ नाएसु। नरवर सिंगारा वन्नणसट्ठा। नाणामोवयणाउ। अणुसव दाराउ किं पि॥९१॥ जं किं चि सय दिट्ठं। तं परिनामवि तु सद्दहिअ द्वा। अविसा विअकज्ज यरो। हणइ नरो गुरुय रकज्जं॥९२॥ इक्कं च। मोहा हसु यगा ही। पच्चक्खं जं न दीइ किल दिट्ठं। पच्चक्खे विय दिट्ठे। जुत्ता जुत्तं वियारिज्जा॥९३॥ सव्व लिद्धेय पसाए। सूरी हि देसणं विहेऊण। पडिबोहिउ य आमो। जाउ जिणधम्म धुरधवलो॥९४॥ तो तेण कारविय। वीरजिणिंदस्स भवणमइ तुंगं। मेरुगिरि स्सव सिंगं। अच्छरिय करंति जयणस्स॥९५॥ जिणभवणे अम्हाणं। काऊण वरं अउट्ठ कोडीओ। नउए हेमराम॥ अउट्ठ कोडी उ सुइ वियार॥२ ००॥ कारित्तु जिणप इट्ठं। विविह पयारं करित्तु जिण पूअं। रोमंचविअगत्तो। आमनिवो थुणिउ माढत्तो॥१॥ तह य। कर्मारि कानन दहनो शुक्ल ध्यान निलेन तो। जिनाख्या ज्योति श्चित्रं। चित्रा चेतेव पद्म ववं॥२॥ धीरो धरस्य धारा यालो लोला लोलतल जलं। भासा सारं गेस्य किं लेटिपयःपानं सगोप्पदे।॥३॥ चिक्कीड राज

ह अयो। मानलाने दमातसो निलोभन्यस्य रतिश्रते। ऊरुका सारकू सोऊ... ॥४॥ रेमसा स्वक्र्य...। जिना नदेस... दनो। निर्गंधा... ...। मादसा लिसा ...। ... ये न वंदइ ...। ... रागद्वेषा ... ॥६॥ अह बप्पसट्टी सूरी। चउविह सिरि समणसंघ परियरिओ। सउ लियमंति ... ऊर्जित रन्ति ...॥७॥ आमनिवो विय सक्को। गोवालगिरिम्मि विंबमित्तो उ। जो को वि नियय लोगं सं जुत्तं चल जं ताए॥८॥ ...। पइगाम पइ नगरं जिणभवणेसु विहि अवरमहिमा। मोढेर सूरे पत्तो। सघा उ सूरि समं पत्तिउ सद्धो॥ ...॥ तयणंतरं च पत्तो। सुरट्ठ विसयंमि वामण थलीए। नेमिजिणवंदणत्ति हेउ सिरिवीरनमणट्ठा॥१९॥ तयणंतरं च पत्तो ... जाव पत्तो विचलिउ। ततो उज्जिंत गिरिवरासि मुहो। तो नरवरस्स आणा। एरिस ह जिं न से लत्ति॥२०॥ जाव पत्तो विचलिउ। तत्तो उज्जिंत गिरिवरा सि मुहो। तो नरवरस्स आणा। एरिसक्त वायसं जाया॥२१॥ जो सेयंबर साहू। सो व छउ रख वणयस्स वेसेण। कवलयं मरूण। अज्जा वियतं तु सब्बावि॥२२॥ तो जणपरंपराए। नायं सिरि बप्पसहिणा एयं। नरनाह अग्गमहि सी। जा सा रव वणा स तन्ति॥२३॥ तह वियाणएण रन्ना। कह वि अह वरख वण एवाए। जिणिऊण सेयंबरा। वेसे रानमहणत मिजिण॥२४॥ तो बप्पसहि सूरी। वाएणं दिगंबरा जियासुद्धं। निव्वहरणी तणइ उण। जिणकप्पं णइ मनिओ॥२५॥ तो बप्पभट्टिणा विय। अरका विरक्किणाउ तद्देहो। हा हजरेण समं चिय। जलंत फोडीउ विम्मविया॥२६॥ सूरि चलणेसु सीस। काऊण विन्नवइ नरनाहो। कहह विउ सर कस्सा एणा उणरं विकिसो यरवा यद्धो॥२७॥ अह हवानिय यं वद्धं। उच्चारं करेइ जइ विउच्छंगे। ता किं बालस्सा

वरिारूसीयवेकन्नविपिञ्ञरेहिं॥१८॥तोकरुणाएसिरिबप्प॥सहिसङ्कीकयारवेणाविाउणरविङ्ग
जेपइ।तिङ्गमिणानउणाञ्ञम्हाणं॥१९॥ञ्ञहउद्दिदेववंदणामज्ञेजइतिङ्गमङ्गिलणियमिणं।ञ्ञाबालवु
ड्ढसंघो।सव्वेदाउगिरिंवउउ॥२०॥सूरीसणइपहाएमव्वेउम्हाणदाहिहीसंघो।इयसणिऊणसूरीम
ञ्ञेसंघस्ससपत्तो॥२१॥तोरयणीएसूरी।गाहकोऊणपाढएसंघ।ञ्ञगामहिसापुराउ।तप्पाढदेइसं
घोवि॥२२॥उज्जिंतसेलसिहरे।दिरकानाणनिसीहियाजस्स।तंधम्मचक्कवट्टिं।ञ्ञरीहंनेमिंनमसा
मि॥२३॥तीएविवेलराणमुक्का।ञ्ञाणाइञ्जत्तिनरवईणो।सूरीविसंघसहिउ।ञ्ञारूढोरेवगिरिंमि॥२४
संघोकरेइतव्वे।विममहिमहियनेमिजिणवरिंदस्स।ञ्ञइसंतुट्ठोचिंतइ।कयवयदिञ्ञहोइतव्वेवि॥२५
।सत्तुञ्जयंमितत्तो।तहयछेवंतणमिगरूणं।नमिऊणतिछ्छपणगं।गोवालगिरिंमिसंपत्तो॥२६॥मिलेऊ
णसंघ।पसणइसूरीविचायमञ्झंमि।उज्जिंतसेलसिहरे।एसागाहामएविहिञ्ञा॥२७॥देवंदणमुज्झाउ
।एयंमिच्चेउसंपयंसघो।संघोसाणइचिट्ठउ।एसाइच्चेवायणंमि॥२८॥जहबप्पसहिणाविद्यावयरि
यंञ्ञामनरिंदस्स।तहउम्हाणविकुणइ॥वक्कुरकुमरस्सउचगरणं॥२९॥तोउदयणणाउफ्फतति॥सार
सरिएणतंतहहत्तिकय।जहलोउनवियाणइ।बज्ञकालकुमरपालस्स॥३०॥इतिबप्पसहिकथा॥

नं

2

प्रकरण दुसरे

बप्पभट्टिसूरिकहाच्या मूळ हस्तलिखिताचे देवनागरी रूपांतर

प्रकरण दुसरे

बप्पभट्टिसूरिकहाच्या मूळ हस्तलिखिताचे देवनागरी रूपांतर

सिरिहेमचंद्रसूरिपरो । चयारिक्ककरणतल्लिछो ।

उदयणमुद्दिसिऊण । एवं भणिउं समाढत्तो ॥ १ ॥

दो पुरिसे धरउ धरा । अह वा दोहिंपि धारिया धरणी ।

उवयारे जस्स मई । उवयरिअं जो न पम्हुसइ ॥ २ ॥

उवयरणं पुरिसेहिं सामन्नेणं तु सव्वलोआणं ।

विहिलियनिवतणयाणं । विसेसओ होइ कायव्वं ॥ ३ ॥

सिरिमोढेरपुरंमि । आमकुमारस्स विहलिअस्सावि ।

अह वद्धमाणसूरीहिं कारिओ तस्स उवयारो ॥ ४ ॥

ता उदयणेण भणियं । भयवं को नाम आमओ कुमरो ।

कह उवयरियं सूरिहिं । वित्थरेणं इमं कहसु ॥ ५ ॥

गुज्जरविसए मोढेरपुरवरं तत्थ वीरजिणभुवणं ।

विहियं च जं बंभसत्तिणा भत्तिजुत्तेण ॥ ६ ॥

तत्थ कविचक्कवट्टि । विसिट्ठ संयमगुणेहिं संपुन्नो ।

सिरिवद्धमाणसूरी । दूरीकयतिमिरनियरंबो ॥ ७ ॥

गुरुविणयमंडिअतणू । तस्स विणेउत्थि बप्पभट्टत्ति ।

वरंबभचेरधारि । सूपसिद्धो सयलभूवलए ॥ ८ ॥

गोवालगिरिपुरीनिवई । नंदणो आम नामउ कुमरो ।

तत्थ जनएण परभविउ । परिब्भमंतो य संपत्तो ॥ ९ ॥

आमो नमिउं सूरिं । उवविट्ठो बप्पभट्टिपासंमि ।

सो सूरिहिं पुट्ठो । कहिओ नियवइअरो तेण ॥ १० ॥

तो सूरिहिं भणीओ । निच्चिंतो पढसु अम्ह पासंमि ।

पुरिसाणं विज्जचिय । अच्चोरहणं तु मंडणयं ॥ ११ ॥

नहमसिआईपई । संजाया बप्पभट्टिणो सिद्धिं ।

पढमाउ दंसणाउवि । आमकुमारस्स सुविसिद्धी ॥ १२ ॥

सूरिहिं अइसयलं । ताणं सारस्सयं सयं दिन्नं ।

इगभत्तभोअणाओ । बंभाओ भूमिसयणाओ ॥ १३ ॥

सम्माराहणायाओ । सरस्सई बप्पभट्टिणो सिद्धा ।

संपुन्नकई जाओ । जहट्ठिअस्सा अच्छस्स ॥ १४ ॥

किरियाहीणत्तणओ । अद्धकई निवइनंदणो जाओ ।

अइ पेमपसत्ताणं । ताणं वच्चंति दिअहाइं ॥ १५ ॥

अह गोवालगिरीओ । जनएणं आमकुमरआणयणे ।

तिअ सिन्नाओ कहियं । रज्जत्थं वच्छ आगच्छ ॥ १६ ॥

सिरि वद्धमाणसूरी । चित्तत्ताताव आमकुमरेणं ।

पहु मह जणया एसो । समागओ सिग्घ मे अज्ज ॥ १७ ॥

पहु पसिऊणं संपई । मह मित्तं नियपए ठविऊण ।

पेसह मए वि सद्धिं । जह मह मणनिव्वुइ होइ ॥ १८ ॥

तो सूरिहि भणियं । वच्छ तुमं गच्छ आउरो जणओ ।

न खमइ कालखेवं । पच्छा तुह वंच्छिअं करिमो ॥ १९ ॥

आमो गोवालगिरिं । पत्तो मिलिओ अ निअय जणयस्स ।

पिउणा रज्जे ठविओ । नयपुव्वं पालए रज्जं ॥ २० ॥

सुमुहुत्तंमि गुरुहिं । निवेसिओ बप्पभट्टिसूरिपए ।

मुक्कलिओ गोवालगिरिपुरे । आमपासंमि ॥ २१ ॥

सिरिबप्पभट्टिसूरी । पडिबोहिंतो भव्वकमलाणं ।

नियपरिवारसमिओ । गोवालगिरिमि संपत्तो ॥ २२ ॥

वद्धाविओ नरिंदो । आगमणेणं बप्पभट्टिस्स ।

वद्धावयस्स रन्ना । दिन्नं संतोसयं दाणं ॥ २३ ।.

अइरिद्धिसमुदएणं । नरिंदचक्केण पउरलोगेण ।

चिरनेहुकंठाए । पत्तो सूरिस्स पासंमि ॥ २४ ॥

उवयारं मन्नंतेण । सुहसहावेण नरवरिंदेण ।

पारद्धो अ पवेसो । नयरे ऊसिअपडायंमि ॥ २५ ॥

अइवित्थारेण नियमंदिरमिं । आणितु सूरिवररयणं ।

अद्धासणोवविट्ठो । नरनाहो विन्नवइ एवं ॥ २६ ॥

गिन्हज्जउ पहु रज्जं । एयं इहलोयसुक्खसाहणयं ।

उवयारभारभग्गस्स देहि वीसामेयं मज्झ ॥ २७ ॥

भणियं सूरिवरेणं । कज्जं रज्जेण नत्थि अम्हाणं ।

जम्हा अम्हेहिं कओ । परिहारो सव्वसंगस्स ॥ २८ ॥

हंहो निल्लिभत्तं । परोवयारिक्क भावरसियत्तं ।

सूरिवरस्स य दट्ठुं । सीसं धूणेइ नरनाहो ॥ २९ ॥

एगो अ वरावासो । समप्पिओ नरवरेण सूरिस्स ।

परमपमोअपसत्ता । गंमति दिअहाइं दो मित्ता ॥ ३० ॥

इंदिअ चवलत्ताए । जीवाणं विसयपरवसत्तणओ ।

दुद्धरिसया य मयणस्स । अन्नया नरवरिंदस्स ॥ ३१ ॥

कलकंठम्मि गंधव्व । कलाविलासभवणंमि ।

अइतिव्वो संजाओ । डूंबिम्मी कहवि अणुराओ ॥ ३२ ॥

नो अज्ज वि संजाओ । कज्जविणासो अ नरवरिंदस्स ।

डूंबीइ समं सम्मं । इय जाणइ बप्पभट्टित्ति ॥ ३३ ॥

उक्तं च ॥

आकारैरिंगितैर्गत्या । चेष्टया भाषणेन च ।

नेत्रवक्त्रविकारैश्च । लक्ष्यतेंर्गतमनः ॥ ३४ ॥

तथा च ॥

कत्तो व के भणिए । कत्तो अद्धच्छपिच्छि अव्वाइं ।

ऊससिअं च मुणिज्जइ । बइल्लजणसंकुले गामे ॥ ३५ ॥

आयरिगिंयकुशलेण । सूरिणा मित्तअयसरक्खट्ठा ।

भणियं नरिंदपुरओ । अन्नवएसेण गुणनिहिणा ॥ ३६ ॥

॥ यथा ॥

सद्वृत्तसद्गुणमहा ऽ र्हमहार्घकांत । कांताधनस्तनतटोचित चारुमूर्ति ।

आ पामरी कठिण कंठ विलग्नभग्न । हा हा हारितमहो भवता गुणित्वं ॥ ३७ ॥

तव्वयणसवणमित्तेण । नरवरिंदेण कुग्गहो मुक्को ।

सूरिस्स वि उवयारं । मन्नइ महरक्खिओ अयसो ॥ ३८ ॥

पडिउवयारं काउं । एयस्स कयावि नेय सक्केमि ।

जम्हा सुम्मइ लोए । बहुअरिणं न हु रिणं होइ ॥ ३९ ॥

कह कव्व संकहाए । तह य समस्साइपूरिणेहिंच ।

वच्चंतेहिं दिणेहिं । सूरी अह निवघरं पत्तो ॥ ४० ॥

आगच्छत्तं सूरिं । नरवइअद्धासणाओ निवघरणी ।

दट्ठूणं संचलिया । सूरी तत्थेव उवविट्ठो ॥ ४१ ॥

निहु चंकमंतीए । पए पए कुणइ का समुहभंगं ।

पभणइ राया एवं । पूरह भावत्थसंजुत्तं ॥ ४२ ॥

तो अणुवयणं भणियं । च सिद्धसारस्सएण मुणिवइणा ।

नूणं रमणपएसे । मेहलिया छिवइ नहंपती ॥ ४३ ॥

निसुणित्तु इमं राया । जाओ सविक्कमाणसो सहसा ।

किं मह अवरोहंमी । एसो संचरइ कइआवि ॥ ४४ ॥

ताए वि हु रयणीए । वसिओ राया कयाइ भज्जाए ।

पच्चूसे नरनाहो । पढमं जग्गित्तु संचलिओ ॥ ४५ ॥

अइनिद्दाइ परवसं । जह जायं निय नियंविर्णी दट्ठूं ।

वलिऊण तीए अंगं । पडेण संछाइउं चलिओ ॥ ४६ ॥

सहसत्ति सा विउद्धा । मह अंगं नरवरेण संवरिअं ।

अहह पमाओ जाओ । न पई उट्ठंतओ नाओ ॥ ४७ ॥

पच्छावलो अणेणं । नरवइणा जाणिओण तब्भावं ।

अद्धकइत्ति नरिंदो । गाहाए कुणइ दुन्निपए ॥ ४८ ॥

अह सूरी संपत्तो । नरवइ अद्धासणंमि उवविट्ठो

वज्जरिअं नरवइणा । पूरह गाहं इमं झत्ति ॥ ४९ ॥

अज्ज वि सा पारितप्पइ । कमलमुही अप्पणो पमाएण ।

तो बप्पभट्टिसूरी पभणइ । निसुणेह नरनाह ॥ ५० ॥

टहरियकनो राया । संजाओ जाव भणइत्तो सूरी ।

पढमविउद्धेण तए । जीसे पच्छा इयं अंगं ॥ ५१ ॥

सुणिउण इमं राया । चित्तंमि चमक्किओ सहसत्ति ।

मह अंतेअरियाहिं । सममेसो अच्छए नूणं ॥ ५२ ॥

पासो पढम समस्साइ । रंगो जाओ तहेव लीयाए ।

नरवरमणे विलीअं । वसिअं सूरिस्स उवरंमि ॥ ५३ ॥

अह चिंतेइ नरिंदो । एसो मह पाणवल्लहो मित्तो ।

अंतेउर - मज्झे मह । ता पडिबिंबं व विअरेउं ॥ ५४ ॥

जइ विहुस्सवयारो । मणंमि निवसइ नरवरिंदस्स ।

तहविहु वइर क्खितस्स । दढयरं होइ लोगंमि ॥ ५५ ॥

सिढिलायरं नरिंदं । दट्ठुं चिंतेइ बप्पहट्टिवि ।

कह अम्हं निम्माणं । चिट्ठेउं जुज्जइ इत्थ ॥ ५६ ॥

उक्तं च ।

स्वदेशस्था म्रियन्ते च । काकाः कापुरुषा मृगाः ।

शूराश्च कृतविधाश्च यत्रतत्रकृता याः ॥ ५७ ॥

तथा च । देसु पिआरओ अप्पणो । काउरिसह पडिहाइ ।

साहह जहवणि अछमइ । पिअरि विढत्तउं नाइ ॥ ५८ ॥

इय चिंतिऊण सूरी । अकहंतो नरवरस्स संचलिओ ।

पत्तोअ सिग्घमेवय । पुरंमि सिरि कन्नउज्जंमि ॥ ५९ ॥

तत्थत्थि धम्मनामो । नरनाहो आमराय पडिवक्खो ।

तेणं नाओ सूरी । समागओ बप्पहट्टित्ति ॥ ६० ॥

नियपरिवारसमेओ । चलिओ सूरिस्स संमूहो राया ।

जम्हा पसिद्धमेअं । पूइअपूआकरो लोओ ॥ ६१ ॥

महया विच्छडणं । पवेसिऊण पुरंमि नरवइणा ।

एगंमि अ धवलयरे । सूरी मुक्को अविन्नत्तो ॥ ६२ ॥

जह तुम्हे वक्खाणं । कुव्वंता आम नरवरसहाए ।

तह अम्हाणं पुरओ । निच्चं तुम्हेहिं कायव्वं ॥ ६३ ॥

धम्मसहाए सिरि । बप्पभट्टिसूरी करेई वक्खाणं ।

तस्सवणाओ जाओ । धम्मनिवो सावओ परमो ॥ ६४ ॥

अह अन्नया नरिंदो । सूरिं पभणे सव्वमत्थि पुणो ।

इत्थ तुम्हे पाहुणगा । गोवालगिरिंमि वत्थव्वा ॥ ६५ ॥

जम्हा आमेण समं । निरुवमनेहो य वट्टए तुम्ह ।

मन्ने तत्थ तुमेहिं । गंतव्वं अज्जकल्लेवा ॥ ६६ ॥

बज्जरइ बप्पभट्टी । जं जं पहुं त तह त्ति नरनाह ।

सइआगच्छइ जइ आम । नरवरो तत्थ ता जामो ॥ ६७ ॥

तो अणुलवइ धम्मनिवो । आमो इत्थागओ य तुम्हेहिं ।

मह कहिअव्वो नूणं । पडिवन्नं तंच सूरिहिं ॥ ६८ ॥

काउण रायवाडिय । चलिओ गोवालगिरिं निवो कइआ ।

पिच्छइ मयकप्पडिअं । तप्पुरओ लिहिअ गाहद्धं ॥ ६९ ॥

तद यथा । तइआ मह निग्गमणे । पिआइ घोरंसुएहिं जं रुन्नं ।

अद्धकइअ नरिंदो । पूरेउं तं न सक्केइ ॥ ७० ॥

पंडिअपंचसयाणं । वित्तिनिबद्धाण तं समप्पेई ।

ते निअनिअसत्तीए । पूरंति कहंति नरवइणो ॥ ७१ ॥

चित्तंमि नो चमक्कइ । कव्वं एयस्स पंडियस्सावि ।

अहगिहिखालजलं किं रुच्चइ रायहंसस्स ॥ ७२ ॥

जेणं सुणिअं कव्वं । सरसं सिरिबप्पभट्टिसूरीणं ।

तस्स न अन्नं रुच्चइ । बहुयणकन्नाण फोडणयं ॥ ७३ ॥

तो नरवइस्स तइआ । उक्कंठा सूरिदंसणे जाया ।

किं अत्थि बप्पभट्टी । कहइ हिअयाओ जो अत्थं ॥ ७४ ॥

अह बप्पभट्टिसूरिस्स । तंमि समयंमि आओ लेहो ।

वायइ हिट्ठो अ निवो । गाहेगं हिट्ठओ निअइ ॥ ७५ ॥

यथा । पइं मुक्काहिं वि तरुवर फिट्टइ पत्ततणं ण पत्ताणं ।

जइ पुण छाया ते हुज्ज । कहवि ता तेहिं पत्तेहिं ॥ ७६ ॥

पडिगाहत्थ रन्ना । पडहो दव्वाविओ पुरवरंमि ।

जो वरगाहं काही । देहि निवो तस्स इक्ववरं ॥ ७७ ॥

सिरिवद्धमाणसूरिस्स । भायगो विमलसूरिनामो य ।

तत्थासि तेण गाहं । विहिऊणं पेसिओ रण्णो ॥ ७८ ॥

संतुट्ठेण रन्ना । तं गाहं बप्पभट्टिलेहमि ।

तं अप्पिउण मंती । पट्ठविओ कन्नउज्जमि ॥ ७९ ॥

तो बप्पभट्टिहत्थे चंडिओ । लेहोय वाइओ तेण ।

दट्ठूणं पडिगाहं । संतुट्ठो झत्ति चित्तंमि ॥ ८० ॥

तथा । छायह कारण सिरिधरि । कंपिअ महिहिं पडंति ।

पत्तहए पत्तत्तण तरुवर काइं करंति ॥ ८१ ॥

मंतिवरेण ताहे विन्नत्ता । सूरिणो य सहसत्ति ।

चल्लह गोवालगिरिं । हक्कारइ आम नरनाहो ॥ ८२ ॥

सूरिहिं निअं पइन्ना । कहिआ सचिवस्स भणइ तो मंती ।

कहमि व पडिवक्खगिहे । आगच्छइ आमदेवनिवो ॥ ८३ ॥

तो बप्पभट्टिसूरी पभणइ । जइ अत्थि अम्ह कज्जंति ।

आगच्छउ इत्थनिवो । कहह भओ तस्स मइसंते ॥ ८४ ॥

धम्मनिवस्स मिलित्ता । गोवालगिरिंति आगओ सचिवो ।

कहिआ सूरि पइन्ना । तेणं चिअ आम नरवइणो ॥ ८५ ॥

इत्थंतरेण वरकारूढेण । आमनरवरिंदेणं ।

दिट्ठो गइवइयाए । गिहंमि भिक्खागओ साहू ॥ ८६ ॥

तीए भणिअं भयवं । गिहमज्झे ठाह देमि जह भिक्खं ।

साहू सरलसहावो । संपत्तो गेहमज्झामि ॥ ८७ ॥

जुव्वणमत्ताए पुणो । ताए साहू य पत्थिओ एवं ।

सामिअ करेसु सहलं । भोगेणं जुव्वणं मज्झ ॥ ८८ ॥

तेणं अणगारेणं । न इच्छिअं तीइ वंछिअं कहवि ।

चिंतइ साहू कहमह । उवसग्गो एस अणुकूलो ॥ ८९ ॥

चिंतितं च तेन वरं प्रविष्टुं ज्वलितं हुताशनं । न चापि भानं चिर संचितं व्रतं ।

वरंहि मृत्युः सुविशुद्ध कर्मणो ।न चापि शीलस्य स्खलितस्य जीवितं ॥ ९० ॥

इय चिंतिउण साहू । निग्गच्छइ देहलिय जा सिग्घं ।

पन्हिपहारो मुक्को । रुट्टाए पिट्ठतो तीए ॥ ९१ ॥

ल्हसिऊण तीए पाया । नेउरं मुणिवरस्स चलणंमि ।

झत्ति पविठ्ठंत च्चिअ । जुगसमिलाएय नाएण ॥ ९२ ॥

चलणठिएणं गेणवि । तुरियं तुरियं च वच्चइ मुणिंदो ।

महवयविग्घं इत्थं । नेउरमविमुंचमाणस्स ॥ ९३ ॥

सव्वमिणं वुत्ततं । वियाणइत्ता पयं समस्साए ।

काउण पंचपंडिआणं । समपिउं नरवर सिग्घं ॥ ९४ ॥

तो पंडिएहिं सव्वेहिं । पुरिऊणं समप्पियं चित्तं ।

नरवइमणभावत्थो । वु तुं सक्को न केणावि ॥ ९५ ॥

तो बप्पभट्टिसूरी । संभरिओ निवइ चित्तमज्झमि ।

हा दूरे मम मित्तो । जो मह मणवंछिअं कहइ ॥ ९६ ॥

जं मम तेहिं तइआ । अपरिचिअस्सा विरंकमित्तस्स ।

विज्जाधरेहिं विहिओ । उवयारो सो गओ विहलो ॥ ९७ ॥

हा हा कह संजाओ । निग्घिणनाहाण निग्घिणो अहयं ।

जं मम तेहिं विहियं । जलं तत्तायसे पडियं ॥ ९८ ॥

उक्तं च ।

उवयारु जु किज्जइ । दुज्जणह तं जाणिज्जहु फेडिअं ।

सुअणु तं अज्जवि संभरइ । जंतिणु मच्छह फेडिअं ॥ ९९ ॥

अहवा किं मह कज्जं । महाणुभावेण तेण अवरद्धं ।

जं जुवइ वइअरेण वि । पाणपिओ सिढिलिओ स मए ॥ १०० ॥

सो पुण अहिमाणधणो । ढिल्लायरओ गओ विदेसंमि ।

तत्थ पुणो वि हु जाओ । रायगुरु गुरुअसक्कारो ॥ १०१ ॥

उक्तं च ।

शूराश्च कृतविद्याश्च रूपवत्यश्च योषितः ।

प्रयान्ति यत्र यत्रैव । तत्र तत्रकृतालया ॥ १०२ ॥

तस्स न सीअइ किंचि । अहं पुणो तव्विओगदुक्खेण ।

संतत्त सिलाइगओ । मच्छुव्व रयं न पावेमि ॥ १०३ ॥

जइ जामि कन्नउज्जे । मरामि पडिवक्खहत्थओ अहयं ।

इत्थ पव्वयसेविओ य । संपइ वच्चंति मह पाणा ॥ १०४ ॥

ता मित्तसंपओगो । जाए जइ कहवि जंतिमे पाणा ।

एवं पेहित्तु मणे । संचलिओ कन्नउज्जंमि ॥ १०५ ॥

ठाणे ठाणे तिअ वाहणाणि । मेलित्तु आमनरनाहो ।

कइ वइ पुरिससमेओ । महोदए झत्ति संपत्तो ॥ १०६ ॥

संझासमए छन्ने । मिलिओ सिरि बप्पभट्टिसूरिस्स ।

परमाणंदो जाओ । चिरकालिअ ताण मित्ताण ॥ १०७ ॥

विन्नवइ आमदेवो! जाव न कोइ जाणइ ईत्थ ।

चल्लह गोवालगिरिं । तुम्ह पइन्ना य संपत्ता ॥ १०८ ॥

मह पडिवक्खगिहंमि । वि अस्स वट्टेइ पाणसंदेहो ।

ता मा कुणह विलंबं । सासो न समाइ मह पिट्ठे ॥ १०९ ॥

उल्लवइ बप्पभट्टी । मइ इत्थ ठिए भओ अ को तुज्झ ।

सिरि धम्मनरिंदसह । दट्ठूणं वच्छ सच्छमणो ॥ ११० ॥

अह धम्मनरिंदनरो । पहायसमयंमि विन्नवइ सूरिं ।

हक्कारेइ नरिंदो । परिहाए दंसणनिमित्तं ॥ १११ ॥

चल्लेइ बप्पभट्टी । आमनरिंदं धरित्तु बाहाए ।

दट्ठूणं स जलपरिहं । धम्मं पभणइ सूरी ॥ ११२ ॥

कन्निपवित्तडी जणु जाणइ दोरा । विरहि माणुस जं मरइ तसुकवणत्तिहोरा ।

तत्ती सयली उम्महा केहा । धणिउत्तावली पिउ मंदसणेहा ॥ ११३ ॥

बारतिगं पढिऊणं । एवं वक्को य बप्पभट्टि त्ति ।

चिंतइ धम्मो अहयं । महपडिबिंबो अदोराया ॥ ११४ ॥

धम्म नरिंदो ताहे । वंदेऊणं विसज्जए सूरिं ।

भणइ य वच्चह सिग्घं । वट्टइ वक्खाण वेलं ति ॥ ११५ ॥

आम नरिंदेण समं । सूरी गंतूण नियठाणंमि ।

दाऊण आमसिक्खं । संपत्तो रायभवणंमि ॥ ११६ ॥

सव्वावसरसहाए । नरवइ सिंहासणम्मि उवविट्ठो ।

सिरिबप्पभट्टिसूरी । तप्परओ धम्मनरनाहो । ११७ ॥

सामंत - मंडलेसर । मंतिमहामंतिसिट्ठिपरीयरिओ ।
धम्मं सुणेइ समं । पासे सिरि बप्पभट्टिस्स ॥ ११८ ॥
आमनरेसरमंती । पाहुड हत्थो तत्थ संपत्तो ।
गहिऊण मंतिहिऊं । तप्पिट्ठे आगओ आमो ॥ ११९ ॥
दट्ठूण तत्थ सूरिं । आम उड्ढं करेइ हत्थेणं ।
आमस्स एस भावो । राया एगो च्चिय तुमं त्ति ॥ १२० ॥
तो बप्पभट्टिसूरी । सिरपासो उज्जाएइ दो हत्थे ।
तस्स इमो भावत्थो । रायसिरी हुंति किं सिंगे ॥ १२१ ॥
तेण सचिवेण सिरी । बप्पभट्टिहत्थे समप्पिओ लेहो ।
विन्नवइ तओ मंती । तुम्हे हक्कारिओ आमो । १२२ ॥
जा तत्थ बप्पभट्टी । आमनरिंदस्स कुणइ गुणग्गहणं ।
तो धम्मनिवो पुच्छइ । भयवं सो केरिसो आमो ॥ १२३ ॥
जस्स सया वि सयं चिअ । गुणगहणपरा तुम्हे सया दिट्ठा ।
जइ जस्स समो इत्थत्थि । को इता मज्झ दंसेह ॥ १२४ ॥
सव्व सहामज्झेणं । दिट्ठिं भामित्तु दंसए सूरी ।
जो मंति उड्ढबाहो । पच्चक्खो एस आम त्ति ॥ १२५ ॥
जंपइ धम्मनरिंदो । हं हो आमस्स निरुवमं रुवं ।
रुवपमाणेण गुणा । संभाविज्जंति सव्वे वि ॥ १२६ ॥
अह उट्ठइ आमनिवो । एगिं उज्झेइ अंगुलिं नमिओ ।
जह लग्गइ पहरेगो । तह वक्खाणं विहेअव्वं ॥ १२७ ॥
इअ भावत्थं नाउं । सूरिंदो अंगुलाउ उज्झेइ ।
दो जामे य करिस्सं । वक्खाणं सुत्थओ जाहि ॥ १२८ ॥

आमनरिंदे चलिए । सूरी तह कहवि कुणइ वक्खाणं ।

ससहो धम्मनरिंदो । जह जाओ चित्तलिहिय व्व ॥ १२९ ॥

सिरिबप्पट्टिसूरी । जा वक्खाणं मुएइ सहसत्ति ।

तो धम्मनिवो जंपइ । दिणस्स जामो वि न हु पत्तो ॥ १३० ॥

हसिऊण भणइ सूरी । संवुत्तो नरवरिंदं पुरिमट्टो ।

घडिहरए राया । जा जायइ ता तह च्चेव ॥ १३१ ॥

जंपेइ बप्पभट्टि । अम्हे गोवालगिरिवरो जामो ।

तुम्हे समएणं धम्म । निवो विन्नवइ एवं ॥ १३२ ॥

सुमरह निययपइन्नं । सूरी पभणेइ आगओ आमो ।

नरवइ भणेइ किमहं । न साहिओ इत्थ संपन्नो ॥ १३३ ॥

परिहा तीरे कहिअं । वारतिगं इत्थ अत्थि दो राया ।

इत्थे वयपच्चक्खो । हत्थेणं दंसिओ आमो ॥ १३४ ॥

धम्मनरिंदे इत्थंतरंमि । देसालिएण विन्नतो ।

तंबोलग्गालिंमि । चिट्ठइ कंचनमय सिलाया ॥ १३५ ॥

ताहे ससंभमेणं । आइट्ठो दंडनायगो रन्ना ।

सिग्घं वच्चह आणह । बंधेवि आमनिवं ॥ १३६ ॥

पभणइ बप्पभट्टी । गयस्स आमस्स दो गया जामा ।

पुव्वगयस्स सप्पस्स । कह णु पिट्ठिज्जए पसणी ॥ १३७ ॥

सेणावई वि सबलो । चलिओ आमस्स पिट्ठओ झत्ति ।

गंतूण देससीमं । जह गओ आगओ स तहा ॥ १३८ ॥

चउरंगबलसमेओ । धम्मनिवो बप्पभट्टिणा सद्धिं ।

पतो बहुभत्तिजुओ । सीमाए नियथदेसस्स ॥ १३९ ॥

नियमंतिराणए पुण । पेसइ अह सूरिणा समं सव्वे ।

सूरी वि तेहिं सहिओ । गोवालगिरिंमि संपत्तो ॥ १४० ॥

आमनरिंदो नाउण । बप्पभट्टिस्स संमुहो चलिओ ।

वंदेऊण दाउण । बाहिं पविसिय नयरंमि ॥ १४१ ॥

लेवमयं कप्पडियं । तप्पुरओ दो पयाइं गाहाए ।

करवत्तिअं गलंतो । पुव्वं जं ठावियं आसि ॥ १४२ ॥

तं दंसिअं तह च्चिय । आमनरिंदेण बप्पभट्टिस्स ।

गाहद्धं दट्ठूणं । सिग्घं तं पूरए सूरी ॥ १४३ ॥

तइआ मह निग्गमणे । पियाइ घोरंसुएहिं जं रुन्नं ।

करवत्ति बिंदु निवडण । मिं णेत्तं तस्स संभरिअं ॥ १४४ ॥

तप्पूरणाओ रन्नो । विलीअमद्धं गयं च हियाओ ।

नासंतो तमपसरं । सूरीवि उवस्सए पत्तो ॥ १४५ ॥

बीयदिणे मज्झन्ने । तंमि गवक्खंमि सूरिणा सद्धिं ।

उवविट्ठो नरनाहो । वित्तपयं कहइ सूरिस्स ॥ १४६ ॥

तद्यथा ।

सनेउरो पव्वइयस्स पाओ । पूरह मित्त समस्सं । एवं महहियय भावसंजुत्तं ।

सिरिबप्पभट्टिणा वि अ । सिग्घं तं पूरिअं मिमं ति ॥ १४७ ॥

कवाडमासज्ज वरंगणाए । अज्झत्थिओ जुव्वणगव्वियाए ।

न इच्छिअं तेण जिइंदिएण । सनेउरो पव्वरो पव्वइयस्स पाओ ॥ १४८ ॥

एवं सच्चा रन्नो । नीसेसं वियलियं विलीयं तं ।

तत्थ ठिआणं ताणं । सुहेण वच्चंति दियहाइं ॥ १४९ ॥

देसंतराओ केणवि । तत्थेगा आणिआ वरसमस्सा ।

दीज्जइ वंकगीवाओ । दीवओ पज्जइ न केण ॥ १५० ॥

पिअसंभरण पल्लुट्ठं । तं बाहधारा निवाहमीयाए ।

दिज्जयइ वंकगीवाओ । दीवओ पहियजायाए ॥ १५१ ॥

एअं सुणित्तु राया । लोओ सयलो वि विम्हिओ भणई ।

सिरिबप्पभट्टि सरिसो । संपइ न हु पंडिओ अन्नो ॥ १५२ ॥

आमनरिंदेण समं । सहोवविट्ठो । अ बप्पभट्टि वि ।

जोएइ एगदिट्ठी । पवरनडिं तत्थ नच्चंति ॥ १५३ ॥

रायावि सूरिदिट्ठिं । खुत्तं दट्ठूं नडीइ चिंत्तेइ ।

नूणं मह मित्तस्स य । नडीइ उवरिम्मि अणुराओ ॥ १५४ ॥

सत्तंगमिमं रज्जं । विहलं मन्ने समिद्धिमवि सयलं ।

जं मह वयंसवंछा । न वि पुज्जइ मज्झपासाओ ॥ १५५ ॥

इय चिंतिऊण रन्ना । सूरिसयासे पओससमयंमि ।

सिक्खविउं पट्ठविया । सा वि नड़ी विहिअसिंगारा ॥ १५६ ॥

वसहि दुवारमुहंमी । पविसंती तं नडिं निएऊण ।

तो बप्पभट्टिसूरी । विसज्जए सावए सव्वे ॥ १५७ ॥

सूरिसयासंमि नडी । आगंतूणं तुहत्ति उवविट्ठा ।

कवडेणं सा जंपइ । करेमि संवाहणं तुम्हं ॥ १५८ ॥

पभणेइ बप्पभट्टी । एवं होउ त्ति इत्थ को दोसो ।

संवाहणं कुणंती । अ उरेण संमद्दए सूरीं ॥ १५९ ॥

सुद्ध भूमीइ सूरी । उवविसिउं रोयए य सहसत्ति ।

तीए भणिए किं पहु । सोओ हरीसस्स ठाणंमि ॥ १६० ॥

सूरी भणेइ अम्हे । विस्सामणयं गुरूण कुव्वंता ।

तो ताणमवाणसमो । फरिसो तुह जुव्वस्सावि ॥ १६१ ॥

संजाओ मज्झकरे । तेणं ते सुमरिया मए गुरुणो ।

भद्दे रोयणकज्जं । एयं जाणेहि ज विअप्पं ॥ १६२ ॥

तो लज्जिउण गणिया । गया य पासंमि आम नरवइणो ।

विन्नवइ देव पत्थर । पासे हं पेसिआ कह णु ॥ १६३ ॥

जंपेइ नरवरिंदो । भद्दे सो पत्थरं कह कहसु ।

तो तीए कुत्तंतो । नरवइणो साहिओ सव्वो ॥ १६४ ॥

अह बीयंमि दिणंमि । सूरि सयासम्मि नागओ आमो ।

सूरी गओ सयं चियं । मज्झन्हे आमनिवगेहे ॥ १६५ ॥

लज्जावनमवयणो । आमो जा वज्जेरइ न हु किंपि ।

तो बप्पभट्टीसूरी । भासइ नरवर किमेअं ति ॥ १६६ ॥

वागरइ नरवरिंदो । अम्हेहिं अविणओ कओ आसि ।

सूरी भणइ तमेव य । पुच्छामो तुम्ह पासंमि ॥ १६७ ॥

आमो जंपइ कल्ले । एगा दिट्ठी नडीइ उयरिंमि ।

तुम्हाण मए दिट्ठा । तओ मए सावि पट्ठविया ॥ १६८ ॥

अक्खरनिरिक्खणाओ । अम्हाणं आसि तरलिआ दिट्ठी ।

तो तीए नीलवत्थइ । लोयणविस्साणमयं विहिअं ॥ १६९ ॥

अइरत्त लीलजोगो । तरलिअ दिट्ठी हवेइ जइ ठाणे ।

सूरी भणइ न अन्नो । अभिप्पाओ नत्थि अम्हाणं ॥ १७० ॥

मज्झ अवन्ना एसा । तुम्हेहिं सव्वहा खमेयव्वा ।

पाएसु लग्गिऊणं । सूरिं खामेहिं नरनाहो ॥ १७१ ॥

पारद्धा धम्मकहा । निवपुरओ बप्पभट्टिणा ताहे ।

आमो तस्सवणाओ । धम्माभिमुहो य संजाओ ॥ १७२ ॥

अह जंपइ नरनाहो । भयवं जिणसासणस्स मज्झंमि ।

तुम्हे च्चिअ सव्वाणवि । पहाणया वरमुणिंदाणं ॥ १७३ ॥

ते के वि अत्थि जिणसासणंमि । सव्वुत्तमा य अणगारा ।

सूरी भणेइ जाणं । पयरेणुसमाण अम्हे वि ॥ १७४ ॥

विन्नवइ आमएवो । भयवं अत्थित्थि कोइ सन्निहिओ ।

तुम्हाण वि गुरुतुल्लो । ता मं साहेह पसिऊण ॥ १७५ ॥

सूरी साहेइ तओ । नरवइ इत्थे वरायवाडंमि ।

अम्ह गुरु विमलसूरी । संपइ चिट्ठइ अइमहप्पा ॥ १७६ ॥

चिंतेइ नइ नरवरिंदो । निरुवमचारित्त चंचइअगत्तो ।

सिरिबप्पभट्टिसूरी । परोवयारी अ वयजुत्तो ॥ १७७ ॥

एअस्स वि अत्थि गुरू । जाया तद्दंसणंमि उक्कंठा ।

जस्स गुणे अम्ह गुरू । गिन्हेइ सो केरिसो होइ ॥ १७८ ॥

पुन्निमरत्तीइ तओ । अंधारपडेण पिहिअसव्वंगो ।

पिक्खेइ विमलसूरिं । कुड्डंतरिओ आमनिवो ॥ १७९ ॥

पंडिअजणाण पुरओ । कहाइ वक्खाण इयं कुणइ सूरी ।

नारीइ रूववन्नण । पत्थाओ वहइए तइआ ॥ १८० ॥

संभोगविओगा । हावभाव हेलाविलासबिव्वोआ ।

महिलाणं सविसेसा । भावत्थजुआ कहइ सूरी ॥ १८१ ॥

तो विम्हिइओ राया । चिंतइ सिंगारिणो अइवम्हे ।

पुण सुरि कहिअभावा । न याणिमो इच्चिरं कालं ॥ १८२ ॥

एयं पुण साणुभावं । सव्वं साहइ अईव सिंगारी ।

तो कामुयाण पढमा । रेहा एयस्स जियलोए ॥ १८३ ॥

तो बीअदिणे सिरिबप्पभट्टिणा । तस्स जाणिओ भावो ।

एसो जेहिं सलेहिं । मुक्को न हु संपयं तेहिं ॥ १८४ ॥

ता मन्ने रत्तीए । निसुयं सिरिविमलसूरिवक्खाणं ।

तद्दोसओ एसो । धम्मे ढिल्लायरो जाओ ॥ १८५ ॥

ता तेहिं चिय एसो । ठाणे आगच्छइ न अन्नेण ।

निअ - साहूण मुहाओ । एयं जाणावियं ताणं ॥ १८६ ॥

कविअरवेसं काऊण । तेवि सिरिबप्पभट्टिणो मलिया ।

तेण वि निवपासाओ । दवाविओ अवसरो ताणं ॥ १८७ ॥

अक्खेवपुव्वयं चिय । लोअं दत्तावहाणयं काउं ।

तेहिं वि नरिंदपुरओ । पारद्धो बाहुबलिविजओ ॥ १८८ ॥

सच्चविओ सो को वि हु । वयण - पवंचे ण तेहिं वीररसो ।

जह रणरसिओ आमो । खग्गं कढितु संचलिचलिओ ॥ १८९ ॥

सहसच्चिय ताव करे । घित्तूण भणइ बप्पभट्टी वि ।

नरनाह-कहा एसा । संगामो वट्टए नेय ॥ १९० ॥

जा विम्हिओ नरिंदो । दिसावलोउं करेइमारुद्धो ।

ताव सिरिविमलसूरी । मुणिवेसं गिन्हए सहसा ॥ १९१ ॥

नरवइणा विन्नत्तं । किं एयं कहह इंदियालं त्ति ।

तो भणइ विमलसूरि । जं एयं तं तहा जाण ॥ १९२ ॥

आबालकालओ वि हु । गहियवया मुक्कसव्व सावज्जा ।

अम्हे नरवर जाणसु । जाया य आदिट्ठ रणरणया ॥ १९३ ॥

तुम्हेहिं अणेगा च्चिअ । संगामे साहिआ नरवरिंदा ।

वयणाओ अम्हेहिं। तुम्हाणं विम्हओ विहिओ ॥ १९४ ॥

जह एयं तह जाणसु । नरवर सिंगारीवन्नणं सव्वं ।

जाणामो वयणाओ । अनुभवदाराओ किं पि ॥ १९५ ॥

जं किंपि सयं दिट्ठं । तं परिभावित्तु सद्धहिअव्वं ।

अविभाविअकज्जयरो । हणइ नरो गुरूयरं कज्जं ॥ १९६ ॥

उक्तं च ।

मोहोह सुयग्गाही । पच्चक्खं जं न होइ किल दिट्ठं ।

पच्चक्खे वि य दिट्ठे । जुत्ताजुत्तं वियारिज्जा ॥ १९७ ॥

भवनिव्वेयपहाणं । सूरीहिं देसणं विहेऊण ।

पडिबोहिओ य आमो । जाओ जिणधम्मधुरधवलो ॥ १९८ ॥

तो तेण कारवियं । वीरजिनंदस्स भवणमइतुंगं ।

मेरुगिरिस्स व सिगं । अच्छरियकरं तिहुयणस्स ॥ १९९ ॥

जिणभवणे अम्हाणं । काउण वए अहुद्धकोडीओ ।

नणु देहे रोमाणं । अहुद्धकोडीओ सुज्झविया ॥ २०० ॥

कारित्तु जिणपइट्ठं । विविहपयारं करित्तु जिणपूअं ।

रोमंचं चिअ गत्तो । आमनिवो भणिउमाढत्तो ॥ २०१ ॥

तद्यथा ।

कर्मारिकाननं देहे । शुक्लध्यानानलेन ते ।

जिनाख्या जा श्रु चित्रं । चित्राचेविपल्लवं ॥ २०२ ॥

धाराधरस्य धारायां । लोलालोलाललौ जलं ।

सा सारंगस्य किं लेढि । पयःपानं सगोष्पदे ॥ २०३ ॥

चिक्रीड राजहंसो यो । मानसानंदमानसे ।

न सो ऽ न्यत्र रतिं धत्ते । कुकासारकुशेशये ॥ २०४ ॥

रेमे यः स्वेच्छया भृंग । श्चित्तानंदननंदने ।

निर्गंधा ऽ रसपुष्पाणा । मा ददाति स किं रसं ॥ २०५ ॥

येन त्वं दट्टसे देव । चंद्रोज्वला क्षरालय ।

रागद्वेषाद्यदेवेषु । स कथं कुरुते रतिं ॥ २०६ ॥

अह बप्पभट्टीसूरी । चउविहसिरिसमणसंघपरियरि ।

मंडलिय मंतिसामंत । संजुओ तत्थ जत्ताए ॥ २०७ ॥

आमनिवो वियप्वक्को । गोवालगिरिंमि बिंबमित्तोओ ।

जो को वि निययलोओ । सूरिसमं पेसिओ सव्वो ॥ २०८ ॥

पइगामं पइनगरं । जिनभवणे सुविहिअवरमहिमो ।

मोढेरपुरो पत्तो । संघो सिरिवीरनमणट्ठा ॥ २०९ ॥

तयणंतरं च पत्तो । सुरट्ठविसयंमि वामणव्वलीए ।

नेमिजिणवंदत्थं । तित्थे उज्जितसेलं ति ॥ २१० ॥

जा बप्पभत्ति चलिओ । तत्तो उज्झिंतगिरिवराभिमुहं ।

तो नरवरस्स आणा । एरिसरूवा य संजाया ॥ २११ ॥

जो सेयंबरसाहू । सो वच्चउ खवणयस्स वेसेण ।

कंबलयं मूत्तूणं । अज्जाविय जंतु सव्वावि ॥ २१२ ॥

तो जनपरंपराए । नायं सिरिबप्पभट्टिणा एयं ।

नरनाहअग्गमहिसी । जा सा खवणाण भत्तत्ति ॥ २१३ ॥

तव्वयणेणं रन्ना । कहावि अहव खवणए वाए ।

जिणिऊण सेयंबर । वेसेणं नमह नेमिजिणं ॥ २१४ ॥

तो बप्पभट्टिसूरी । वाएण दिगंबरा जिया सव्वे ।

निवघरणी भणइ पुणो । जिणकप्पेणं इमं तित्थं ॥ २१५ ॥

तो बप्पभट्टिणा विय । अक्खाविक्खेवणाउ तद्देहे ।

दाहजरेणसमं चिय । जलंतफोडीओ निम्मविया ॥ २१६ ॥

सूरि चलणेसु सीसं । काऊण विन्नवेइ नरनाहो ।

कह वि हु भक्खइ साणो । पुनरवि किं सो य खायव्वो ॥ २१७ ॥

अहवा नियय अवच्चं । उच्चारं करेइ जइ वि उच्छंगे ।

ता किं बालस्सोवरि । रूसीयव्वं कह वि पिअरेहिं ॥ २१८ ॥

तो करूणाए सिरिबप्पभट्टि । सज्जीकया खणेणावि ।

पुनरवि दुट्ठा जंपइ । तित्थमिणं न उण अम्हाणं ॥ २१९ ॥

अह तुम्हे देव वंदण । मज्झे जइ तित्थमत्थि भणियमिणं ।

आबालवुड्ढसंघो । सव्वं दाउं गिरिं चडओ ॥ २२० ॥

सूरी भणइ पहाए । सव्वं तुम्हाण दाहिही संघो ।

इय भणिऊणं सूरी । मज्झे संघस्स संपत्तो ॥ २२१ ॥

तो रयणीए सूरी । गाहं काऊण पाढए संघं ।

अग्गमहिसीपुराओ । तप्पाढं देइ संघोवि ॥ २२२ ॥

उज्झिंतसेलसिहरे । दिक्खानाणं निसीहिया जस्स ।

तं धम्मचक्कवट्टिं । अरिट्ठनेमिं नमंसामि ॥ २२३ ॥

तीए वि विलक्खाए । मुक्का आणा वि झत्ति नरवइणो ।

सूरी वि संघसहिओ । आरूढो रेवगिरिंमि ॥२२४ ॥

संघो करेइ तत्थ वि । महिमहियं नेमिजिणवरिंदस्स ।

अइसंतुट्ठो चिट्ठइ । कयवियदियहाइं तत्थेव ॥ २२५ ॥

सत्तुंज्जयमि तत्तो । भरुयच्छेत्तं भणेमि गंतूणं ।

नमिऊणं तिच्छपणगं । गोवालगिरिमिं संपत्तो ॥ २२६ ॥

मेलेऊणं संघं । पभणइ सूरी विवायमज्झंमि ।
उज्जिंतसेलसिहरे । एसा गाहा मए विहिआ ॥ २२७ ॥

देववंदणमज्झाओ । एयं मिल्लेउ संपयं संघो ।
संघो भणेइ चिट्ठउ । एसा इत्थेव वयणंमि ॥ २२८ ॥

जह बप्पभट्टिणा विय । उवयरियं आमनरिंदस्स ।
तह तुम्हाण वि जुज्जइ । वत्तुं कुमरस्स उवगरणं ॥ २२९ ॥

तो उदयणेण गुरुभत्तिभारभरिएण तं तहत्ति कयं ।
जह लोओ न वियाणइ । बहुकालं कुमरपालस्स ॥ २३० ॥

॥ इति बप्पभट्टिकथा ॥

प्रकरण तिसरे

बप्पभट्टिसूरिकहाचा मराठी अनुवाद

बप्पभट्टिसूरिकहाचा मराठी अनुवाद

१. एकमात्र परोपकारामध्ये तत्पर असलेल्या श्री. हेमचंद्रसूरींनी उदयनाला असे सांगण्यास प्रारंभ केला.

२. पृथ्वी दोन पुरुषांना धारण करो अथवा (ह्या) दोन पुरुषांकडून पृथ्वीचे धारण केले जावे. (एक) ज्याची बुद्धी परोपकारामध्ये (मग्न असते) व (दोन) जो उपकृत झाला असता (उपकारकर्त्याला) विसरत नाही.

३. विशेषतः कपटी झालेल्या (किंवा ज्याच्या बाबतीत उपकार निष्फळ होतात अशा) राजपुत्रावरही (उपकार) करावा.

४. श्री मोढेरपुरामध्ये आमकुमार कष्टी असा असतानाही (किंवा त्याच्या बाबतीत उपकार निरर्थक ठरले असतानाही) वर्धमानसूरींनी त्याच्यावर उपकार केले.

५. तेव्हा उदयनाने विचारले, 'हे भगवान ! हा आमकुमार कोण ? सूरींनी त्याच्यावर कसा उपकार केला, हे आपण विस्ताराने सांगावे'

६. गुर्जरदेशात मोढेरपुर नावाचे श्रेष्ठ नगर होते. तेथे ब्रह्मशक्तीने भक्तिभावाने महावीर जिनप्रभूंचे मंदिर बांधविले होते.

७. तेथे विशिष्ट संयमगुणांनी परिपूर्ण आणि अज्ञानरूपी अंधकाराचा समूह ज्यांनी दूर केला आहे असे कविसम्राट श्री वर्धमानसूरी रहात होते.

८. ज्यांचा देह गुरु वर्धमानसूरींविषयीच्या विनयाने सुशोभित झाला आहे, ज्यांनी उत्कृष्ट ब्रह्मचर्य धारण केले आहे, जे सकल पृथ्वीतलावर सुप्रसिद्ध आहेत, असे बप्पभट्टी त्यांचे शिष्य होते.

९. गोपालगिरीनगरीच्या राजाचा पुत्र आम नावाचा कुमार पित्याकडून अपमानित होऊन फिरत तेथे (मोढेरपुरास) येऊन पोहोचला.

१०. आम सूरींना नमस्कार करून बप्पभट्टींजवळ बसला. सूरींकडून विचारपूस झाली असता त्याने स्वतःचा वृत्तांत सांगितला.

११. तेव्हा सूरी म्हणाले, 'आमच्या.जवळ (राहून तू) निश्चिंतपणे अभ्यास कर. पुरुषांची विद्या हा असा अलंकार आहे की ज्याचे चोरदेखील अपहरण करू शकत नाही.

१२. बप्पभट्टींना नभ (आकाशगमन), मसी (डोळ्यात अंजन घालून अदृश्य होणे), इत्यादी सिद्धी प्राप्त झाल्या. आमकुमारालाही सूरींच्या पहिल्या दर्शनाने अत्यंत शुद्धी प्राप्त झाली.

१३, १४. सूरींनी स्वतः त्या दोघांना अत्यंत परिपूर्ण, शेकडो प्रकारचे सारस्वत (म्हणजे विद्या, कला इत्यादींचे ज्ञान) दिले. बप्पभट्टींना एकाशन, ब्रह्मचर्य, भूमिशयन, सम्यक्प्रकारे आराधना ह्यांनी सरस्वती प्रसन्न झाली. यथास्थित काव्य येणाऱ्यांमध्ये ते संपूर्ण कवी झाले.

१५. क्रियाहीनत्वामुळे राजपुत्र आम अर्धकवी झाला. अत्यंत प्रेमासक्त अशा त्या दोघांचे दिवस जाऊ लागले.

१६, नंतर गोपालगिरीहून पित्याने आमकुमाराला आणण्यासाठी सैन्यामार्फत त्याला निरोप दिला; 'पुत्रा, राज्यासाठी परत ये.'

१७. आमकुमाराने वर्धमानसूरींच्या चित्तामध्ये (?) पुढील वचनाने काळजी निर्माण केली (?), 'प्रभो, आज माझ्या पित्याकडून मला तातडीचा निरोप आला आहे.'

१८. हे प्रभो, सांप्रत (आपण) कृपा करून माझ्या मित्राची (म्ह. बप्पभट्टींची) स्वतःच्या पदावर (म्ह. सूरिपदावर) स्थापना करून (त्याला) माझ्या समवेत पाठवावे जेणे करून माझ्या मनाचे समाधान होईल.

१९. तेव्हा सूरींनी म्हटले, 'मुला तू जा. (तुझे) वडील अत्यवस्थ आहेत. येथे कालक्षेप करणे योग्य नाही. नंतर आम्ही तुझ्या इच्छेप्रमाणे करू.'

२०. आम गोपालगिरीस पोहोचला. स्वतःच्या वडिलांना भेटला. पित्याने त्याची राज्यावर स्थापना केली. आणि म्हटले, '(तू) राज्यकारभार न्यायपूर्वक करावास.'

२१. सुमुहूर्तावर गुरूंनी बप्पभट्टींची आचार्यपदावर स्थापना केली आणि त्यांना गोपालगिरीपुरास आमाकडे पाठविले.

२२. श्री बप्पभट्टीसूरी मुमुक्षूरूपी (भव्यरूपी) कमळांना प्रतिबोधित करत आपल्या परिवारासह गोपालगिरीला आले.

२३. बप्पभट्टींच्या आगमनाप्रीत्यर्थ (प्रजेकडून) राजाचे अभिनंदन झाले. अभिनंदित राजाने संतोषपूर्वक दानधर्म केला.

२४. राजा अत्यंत वैभवाने युक्त होऊन राजमंडल व प्रचुर लोकांसमवेत चिरस्नेहजन्य उत्कंठेने सूरींजवळ आला.

२५. राजाने बप्पभट्टीसूरींचे उपकार मानत, ध्वजा उभारल्या जात असताना, नगरीत आनंदाने प्रवेश करायला प्रारंभ केला.

२६. राजाने सूरींना थाटामाटाने आपल्या प्रासादात आणले व अर्धासनावर बसविले आणि पुढील विनंती केली.

२७. 'हे स्वामी ! इहलोकातील सुखाचे साधन असलेल्या या राज्याचा स्वीकार करावा आणि उपकाराच्या भाराने भग्न झालेल्या अशा मला विसावा द्यावा.'

२८. सूरिवरांनी म्हटले, 'आम्हांला राज्याशी काही कर्तव्य नाही. कारण आम्ही सर्वसंगपरित्याग केला आहे.'

२९. अहो! सूरिवरांचे निर्लोभित्व व एकमात्र परोपकाराची आवड पाहून राजाने आपले मस्तक नत केले.

३०. एक श्रेष्ठ निवासस्थान राजाने सूरींना समर्पित केले. या दोन मित्रांचे दिवस अत्यंत आनंदाने व्यतीत होऊ लागले.

३१,३२. इंद्रियांच्या चपलतेमुळे, जीवांच्या विषयपरवशतेमुळे आणि मदनाच्या दुर्धरतेमुळे डुंबी गावातील मधुर गायनकलाविलासभवनामध्ये राजाच्या मनामध्ये तीव्र शृंगारभाव जागृत झाला.

३३. आजवर राजाच्या हातून डुंबीगावातल्याप्रमाणे कर्तव्यहानी झाली नाही, हे बप्पभट्टींनी यथायोग्यपणे जाणले.

३४. असे म्हटलेच आहे की, 'सूचक हावभाव, हालचाली, बोलणे, नेत्रात व मुखावर प्रतिबिंबित होणारे विकार ह्यावरून अंतरंगाचा पत्ता लागतो.'

३५. 'कोण कसे बोलते ? कसा नेत्रकटाक्ष टाकते, कसे उसासे टाकते, हे खेडवळ लोकांनी भरलेल्या गावामध्ये कोण कसे बरे जाणू शकेल ?'

३६. सूचक हावभाव जाणण्यामध्ये कुशल व गुणनिधी असलेल्या सूरींनी आपल्या मित्राचे (म्हणजे राजाचे) अपकीर्तीपासून रक्षण करण्यासाठी त्याला असे म्हटले.

३७. १.(हाराच्या संदर्भातला सरळ अर्थ)

'भरगच्च (गोल), चांगल्या दोऱ्याने युक्त असलेला, मूल्यवान, पूज्य, तेजस्वी आणि स्त्रीच्या पुष्ट उरोजांना शोभून दिसावा अशी सुरेख रचना असलेल्या हारा, खेडवळ स्त्रीच्या कठीण कंठात पडण्याने तू भग्न होऊन अरेरे, तुझ्या दोऱ्याचा नाश झाला!'

(राजाला लागू पडणारा श्लिष्ट अर्थ)

'सदाचारी, सद्गुणी, अत्यंत मूल्यवान, अत्यंत पूज्य आणि सुंदर पत्नीच्या / स्त्रीच्या पुष्ट उरोजांना समसमा असा सुंदर देह असलेल्या हे राजा, खेडवळ स्त्रीच्या कठीण कंठाच्या स्पर्शाने (आलिंगनाने) तुझी दुर्दशा होऊन तुझ्या सद्गुणावर पाणी पडले!'

३८. केवळ त्या वचनमात्राने (म्हणजे ह्या श्लोकाच्या श्रवणाने) राजाचा कुग्रह (म्हणजे शृंगाराचा प्रभाव) नाहीसा झाला. 'माझे अपकीर्तीपासून रक्षण झाले,' असे समजून तो सूरींचे उपकार मानू लागला.

३९. यांच्या उपकाराची फेड करणे मला शक्य नाही. कारण की लोकांमध्ये असे ऐकले जाते की पुष्कळ ऋण हे ऋणच नव्हे. (म्हणजे एखाद्याचे आपल्यावर खूप उपकार झाले तर ते फेडण्यापलीकडचे असतात).

४०. तसेच कथा, काव्य, संकथा, समस्यापूर्ती इत्यादीमध्ये दिवस जात असताना सूरी राजवाड्यात येऊन पोहोचले.

४१. (समोरून) येणाऱ्या सूरींना पाहून राणी राजाच्या अर्धासनावरून दूर झाली. सूरी तेथेच (म्हणजे अर्धासनावर) बसले.

४२. 'मंदगतीने चालत असताना पदोपदी कोण त्रासिक मुद्रा करते ?' असे म्हणून राजाने बप्पभट्टिसूरींस अर्थपूर्ण समस्यापूर्ती करण्यास सांगितले.

४३. नंतर राजाच्या पाठोपाठ ज्यांच्यावर सरस्वती प्रसन्न झाली आहे अशा मुनिवरांनी हजरजबाबीपणे म्हटले, 'खरोखर, (राणीच्या) कटिप्रदेशावरील नखक्षतांच्या पंक्तींना मेखला स्पर्श करते, (म्हणून तिची मुद्रा त्रासिक झाली आहे).'

४४. हे ऐकून राजाचे मन एकदम बेचैन झाले. 'माझ्या अंतःपुरामध्ये याचा (म्ह. बप्पभट्टींचा) कधी संचार झाला होता की काय!' असा विकल्प राजाच्या मनात आला.

४५. त्या रात्री राजाने राणीबरोबर काही काळ व्यतीत केला आणि नंतर भल्या पहाटे प्रथम जागा होऊन तो तेथून निघाला.

४६. अत्यंत गाढ झोपेत (वस्त्राचे) भान हरपलेल्या स्वपत्नीला पाहून राजाने वळून तिला वस्त्राने आच्छादिले व तेथून निघाला.

४७. अचानक ती (म्हणजे राणी) जागी झाली. (व म्हणाली), 'माझा देह राजाने सावरला! अरेरे, प्रमाद झाला! पतीला जाग येत असताना मला समजलेच नाही.'

४८. नंतर राजाने वळून पाहिले असताना तिचा मनोभाव त्याच्या लक्षात आला. राजा अर्धकवी असल्याने द्विपदीमध्ये समस्यापूर्तीसाठी (अर्ध) गाथा रचली.

४९. नंतर सूरी तेथे आले. ते राजाच्या अर्धासनावर बसले. राजाने म्हटले, 'या गाथेची त्वरित पूर्ती करा.'

५०. तेव्हा बप्पभट्टिसूरी म्हणाले, 'हे राजा, ऐक. ती कमलमुखी (म्हणजे राणी) स्वतःच्या प्रमादामुळे अजूनही उद्विग्न होते.'

५१. सूरीने असे म्हणताच राजाने कान टवकारले. इतक्यात सूरी पुढे म्हणाले, 'प्रथम जागे झालेल्याने (म्हणजे राजाने) जिचे अंग झाकले.'

५२. ते ऐकून राजा मनामध्ये एकदम चमकला. (त्याला वाटले), 'हे खरोखर माझ्या अंतःपुरातीलच जणू रहिवासी आहेत.'

५३. तिच्या वळण्याने तिचा पार्श्वभाग हा पहिल्या समस्यापूर्तीचाच विषय झाला, हे जाणून राजाच्या मनामध्ये सूरींविषयी लज्जा निर्माण झाली.

५४. राजाने विचार केला, 'हा माझा जिवलग मित्र आहे. माझ्या अंतःपुरामध्ये हा माझ्या सावलीप्रमाणे विहार करतोय.'

५५. जरी राजाच्या मनामध्ये बप्पभट्टींविषयी उपकाराची भावना वसत असली तरी या जगात वैर एकदा निर्माण झाले की ते दृढतर होते.

५६. राजाचा आदरभाव कमी झाल्याचे पाहून बप्पभट्टींनी विचार केला, 'असे अपमानित होऊन राहणे कितपत योग्य आहे ?'

५७. म्हटलेच आहे की - Th 11032

'कावळे, क्षुद्र माणसे व पशू हे आपापल्या देशातच (असहाय्यपणे) मरतात; शूर व विद्यावान व्यक्ती मात्र (संकटकाळी स्वदेश त्याग करून) कोठेही आश्रय घेतात,'

५८. 'क्षुद्र माणसाला आपला देशच प्रिय वाटतो, सांगा बरे, अत्यंत अडाणी (म्हणजे जंगली) मनुष्य वनावर प्रेम करतोच ना!' Th.

५९. असा विचार करून सूरी राजाला न सांगताच निघाले आणि कान्यकुब्ज नगरीस त्वरित आले.

६०. तेथे आमराजाचा शत्रू धर्मनामक राजा रहात होता. त्याने बप्पभट्टीसूरी तेथे आल्याचे जाणले.

६१. स्वतःच्या परीवारासह तो (स्वागतासाठी) सूरींना सामोरे गेला. जगात हे प्रसिद्ध आहे, की पूजार्हांची पूजा केली जाते.

६२. (धर्म) राजाने मोठ्या वैभवाने सूरींचा नगरात प्रवेश करविला आणि एका प्रासादामध्ये अज्ञातपणे (त्यांना) उतरविले, (तो म्हणाला) -

६३. 'आमराजाच्या सभेमध्ये ज्याप्रमाणे तुम्ही धर्मोपदेश देत होता, तसेच आमच्या उपस्थितीतही आपण नित्य करावे.'

६४. धर्मराजाच्या सभेमध्ये बप्पभट्टिसूरी धर्मोपदेश देत असत. ते ऐकून धर्मराजा श्रेष्ठ श्रावक बनतो.

६५. नंतर एकदा राजाने सूरींना म्हटले, 'येथे तुमचे चांगले चालले आहे. परंतु तुम्ही येथे पाहुणे आहात. म्हणून गोपालगिरीला परत जाऊन रहावे.'

६६. ज्या अर्थी आमाबरोबर तुमचा निरुपम स्नेह आहे, त्याअर्थी आज किंवा उद्या तुम्ही तेथे जाणे श्रेयस्कर.

६७. बप्पभट्टी म्हणाले, 'हे राजा, तुम्ही जसे म्हणाल तसे करेन; तथापि जर आम राजा मला नेण्यास स्वतः येईल तरच मी तेथे जाईन.'

६८. धर्मराजाने प्रत्युत्तर दिले, 'आमराजा येथे आल्यावर तुम्ही मला सांगावं,' सूरींनी ते मान्य केले.

६९. एकदा (आम) राजा चतुरंगसेनेसह गोपालगिरीस आला; त्याने एका मृत भिकाऱ्याला पाहिले. त्याच्या पुढे अर्धी गाथा लिहिलेली होती.

७०. ती अशी -

'तेव्हा मी निघालो असताना प्रियेने घोर आकांत मांडला.' राजा अर्धकवी असल्याने ही गाथा पूर्ण करू शकला नाही.

७१. ती अर्धी गाथा त्याने आपल्या पदरी बाळगलेल्या पाचशे पंडितांना समस्यापूर्तीसाठी सोपविली. त्यांनी आपापल्या शक्तीनुसार समस्यापूर्ती करून राजाला निरोप दिला.

७२. या पंडितांच्या काव्याचा राजाच्या मनावर प्रभाव पडत नाही. 'राजहंसाला सांडपाणी (शब्दशः घरचे खारे पाणी) आवडेल काय' ?

७३. ज्याने बप्पभट्टींचे सरस काव्य ऐकले आहे त्याला बहुजनांना नीरस (कर्णकटू) वाटणारे अन्य काव्य आवडणार नाही.

७४. तेव्हा त्या राजास सूरींच्या दर्शनाची उत्कंठा निर्माण झाली. जे अंतःकरणापासून काव्यमय अर्थाचे प्रतिपादन करतात ते बप्पभट्टीसूरी कोठे आहेत ? (म्हणजे ज्यांचे काव्य उत्स्फूर्त व अर्थपूर्ण असते ते बप्पभट्टी कोठे आहेत ?)

७५. नेमके त्यावेळेस बप्पभट्टीसूरींकडून राजाला पत्र आले. त्याने ते आनंदाने वाचले. व त्या मजकुराखाली एक गाथा पाहिली.

७६. ती अशी - 'तू जरी त्यांचा त्याग केलास तरी हे तरुवरा, पर्णांचे पर्णत्व नाहीसे होत नाही; पण सावली अशी काही तुला हवी असेल तर ती त्या पानांशिवाय प्राप्त होणार काय ?'

७७. त्या गाथेच्या उत्तरार्धासाठी (म्हणजे प्रतिगाथेसाठी) राजाने त्या श्रेष्ठ नगरात दवंडी देवविली की, 'जो कोणी सुंदर गाथा करेल, त्याला राजा अभीष्ट वर देईल.'

७८. श्री वर्धमानसूरींचे गुरुबंधू श्री विमलसूरी तेथे होते. त्यांनी गाथा रचून राजाकडे पाठविली.

७९. संतुष्ट झालेल्या राजाने ती गाथा बप्पभट्टींच्या पत्रामध्ये समाविष्ट करून मंत्र्याबरोबर कान्यकुब्जाला पाठविली.

८०. बप्पभट्टींच्या हातात ते पत्र पडले. त्यांनी ते वाचले. ती प्रतिगाथा (म्हणजे उत्तरार्ध) बघून ते मनात त्वरित संतुष्ट झाले.

८१. 'हे तरुवरा ! छायेसाठी मस्तकावर धारण केलेली पाने कंपायमान होऊन जमिनीवर पडतात. त्या पर्णांच्या पर्णत्वाचा तुला काय उपयोग ?'

८२. नंतर मंत्रिवरांनी सूरींना कळविले, 'आपण गोपालगिरीस त्वरित चलावे; तुम्हांला आमराजा बोलावत आहे.'

८३. सूरींनी स्वतःची प्रतिज्ञा सचिवास सांगितली. तेव्हा मंत्री म्हणाले, 'आमदेव राजा स्वतः कसा काय बरे शत्रूच्या घरी येईल ?'

८४. बप्पभट्टिसूरी म्हणाले, 'जर आमच्याशी कर्तव्य असेल तर राजाने येथे यावे; आम्ही येथे असताना राजाला भय कोणते ?'

८५. धर्मराजाला भेटून सचिव गोपालगिरीला परत आला. आणि त्याने आमराजाला सूरींची प्रतिज्ञा सांगितली.

८६. मूल्यवान पालखीमध्ये आरूढ झालेल्या आमराजाने एका विधवेच्या (किंवा जिचा पती परगावी गेला आहे अशा स्त्रीच्या) घरी भिक्षेसाठी आलेल्या साधूला पाहिले.

८७. तिने म्हटले, 'महाराज, घरात चला जेणेकरून मी (आपणांस) भिक्षा देते.' स्वभावाने सरळ असलेले साधू (तिच्या) घरात गेले.

८८. नंतर यौवनाने उन्मत्त झालेल्या त्या स्त्रीने प्रार्थना केली, 'हे स्वामी, भोगाने माझे यौवन सफल करा.'

८९. तिला इष्ट असलेल्या गोष्टीची साधूंना इच्छा नसल्याने त्यांनी विचार केला, 'हा कसा बरे मला अनुकूल उपसर्ग झाला ?'

९०. चिरकाल पालन केलेल्या व्रताचा भंग करण्यापेक्षा जळत्या अग्नीत प्रवेश करणे बरे ! ज्याचे आचरण पवित्र आहे, त्याला चारित्र्यहीन होऊन जगण्यापेक्षा मृत्यू परवडला.'

९१. असा विचार करून साधू त्वरेने उंबरठ्याबाहेर जातो न जातो तोच रागाच्या भरात तिने त्याच्या पार्श्वभागावर लत्ताप्रहार केला.

९२. तिच्या पायातून पैंजण निसटून त्वरित युगशमिलान्यायाने (म्हणजे आकस्मितपणे) मुनींच्या पायात प्रविष्ट झाले.

९३. एका पायात पैंजण असूनही मुनी भरभर चालू लागले. पैंजणाचा त्याग न केल्याने त्यांच्या महाव्रतामध्ये हे विघ्न (उद्भवले).

९४. हा सर्व वृत्तांत जाणून राजाने त्वरित समस्यायुक्त पदांची रचना करून समस्यापूर्तीसाठी ती (रचना) पाचशे पंडितांना दिली.

९५. सर्व पंडितांनी मन लावून समस्यापूर्तीचा प्रयत्न केला; पण राजाच्या मनातील भाव कोणीही स्पष्ट करू शकला नाही.

९६. नंतर राजाने मनात बप्पभट्टिसूरींचे स्मरण केले. त्याने असा विचार केला, 'अरेरे माझ्या मनासारखी समस्यापूर्ती करणारा माझा मित्र किती दूर आहे बरे !'

९७. 'एकेकाळी मी अपरिचित आणि कफल्लक असा मित्र असताना ह्या विद्यासंपन्न बप्पभट्टिसूरींनी जो उपकार केला तो वाया गेला. (म्हणजे मी वाया घालविला.)'

९८. 'अरेरे, निर्दयी अशा माझ्याकडून बप्पभट्टिसूरींच्या (शब्दशः नाथांच्या) बाबतीत निर्दयीपणा कसा बरे उद्भवला ? त्यांनी माझ्यासाठी जे काही केले ते तप्त लोहावर पडलेल्या जलबिंदूप्रमाणे वाया गेले!'

९९. 'बप्पभट्टिसूरींसारख्या सज्जनाकडून माझ्यासारख्या दुर्जनावर जो उपकार केला जातो, तो फेडणे मी जाणतो. त्याचे आजही मला स्मरण होते. मी तेथे (बप्पभट्टिसूरींकडे) उत्साहाने जाऊन उपकाराची फेड करेन.'

१००. 'अथवा त्या महानुभावाने माझा असा काय अपराध केला की, जेणेकरून युवतिविषयक घटनेपासून त्या प्राणप्रिय मित्राविषयी माझा आदर शिथिल झाला ?'

१०१. 'अभिमान हेच ज्यांचे धन आहे अशा बप्पभट्टिसूरींविषयी माझा आदर कमी झाल्यावर ते परदेशी गेले आणि तेथे राजगुरू म्हणून त्यांचा मोठा सत्कार झाला.'

१०२. 'म्हटलेच आहे की, शूर व्यक्ती, विद्वान लोक व रूपवती स्त्रिया जेथे जेथे जातात तेथे तेथे (स्वपराक्रमावर) आपले घर करतात.'

१०३. 'त्यांना किंचितही दुःख झाले नाही. मला मात्र त्यांच्या वियोगजन्य दुःखामुळे तप्त शिलेवर पडलेल्या माशाप्रमाणे चैन पडत नाही.'

१०४. 'जर मी कान्यकुब्जास गेलो तर शत्रूच्या हातून नक्कीच मरेन. येथे पर्वताचे (गोपालगिरीचे) किंवा प्रव्रज्येचे सेवन केले तर सांप्रत (विरहाने) माझे प्राण जातील.'

१०५. 'म्हणून मित्राच्या भेटीने जर माझे प्राण जाणार असतील तर जावोत,' असा मनात विचार करून तो कान्यकुब्जाकडे निघाला.

१०६. ठिकठिकाणी तीन प्रकारच्या सेनेला (म्हणजे पायदळ, घोडदळ, व हत्तीचे दळ यांना) (स्वतःच्या संरक्षणासाठी) (मागे) ठेवून आमराजा मोजक्या लोकांसह सूर्योदयाच्या सुमारास त्वरित (कान्यकुब्जास) येऊन पोहोचला.

१०७. तो संध्याकाळी गुप्तपणे श्री बप्पभट्टिसूरींना भेटला. चिरकालिक मैत्री असलेल्या त्या दोघांना अत्यानंद झाला.

१०८. आमदेवाने श्री बप्पभट्टिसूरींना विनंती केली की, 'एखाद्या व्यक्तीच्या लक्षात येण्यापूर्वीच आपण गोपालगिरीस जावे. आपल्या प्रतिज्ञेची पूर्ती झालेली आहेच.'

१०९. 'माझ्या शत्रूच्या राज्यात माझ्या जीवाला धोका आहे म्हणून विलंब करू नका. श्वास घ्यायलाही मला फुरसत नाही. (म्हणजे भीतीमुळे मला धड श्वासही घेता येत नाही).'

११०. बप्पभट्टी म्हणाले, 'मी येथे असताना तुला भीती कसली ? श्री धर्म नरेंद्राचा दरबार पाहून स्वस्थ चित्ताने जाऊ.'

१११. नंतर धर्मराजाच्या सेवकाने प्रभातकाळी सूरींना विनंती केली, 'राजा खंदकाजवळ भेटीसाठी बोलावतोय.'

११२. (मंत्रिवेषात असलेल्या) आम नरेंद्राचा हात धरून बप्पभट्टिसूरी निघाले. त्या पाण्याने भरलेल्या खंदकाला पाहून सूरी धर्मराजाला म्हणाले,

११३. 'कानामध्ये कर्णभूषण (पवित्रक) घातले असता लोक त्याला दोरा समजतात. विरहाने जो माणूस मरत आहे, त्याला कोण बरे अडवणार ? प्रेयसी उतावळी व प्रियकर बेताचेच प्रेम असलेला असा असेल तर त्यांचे मीलन कसे होणार ? तप्त व शीतल यांचा मिलाप कसा होईल ?'

(ही गाथा श्लिष्ट व चमत्कृतिपूर्ण असून **प्रभावकचरितकार** बप्पभट्टिसूरींनी हिचे एकशे आठ अर्थ केले होते असा उल्लेख करतात. पहा - **प्रभावकचरित,** श्लोक २४९)

११४. बप्पभट्टींनी हे कवन तीन वेळा म्हटले व असा विचार केला की हा धर्म राजा आणि हा (आम) राजा जणू माझे प्रतिबिंब आहेत. (दोघेही मला सारखेच जवळचे आहेत; दोघांनाही मी हवा आहे.)

११५. धर्मनरेंद्राने त्या सूरींना नमस्कार करून निरोप दिला; व म्हटले, 'लवकर. जा. व्याख्यानाची वेळ झाली आहे.'

११६. आमराजासह सूरी स्वतःच्या निवासस्थानी गेले व आमाला शिकवून (पढवून) ते पुन्हा राजभवनात आले.

११७,११८.सर्वांना मुक्त प्रवेश असलेल्या दरबारामध्ये राजसिंहासनावर श्री बप्पभट्टिसूरींना बसवले गेले. सामंत, मंडलेश्वर, मंत्री, महामंत्री, श्रेष्ठी यांनी वेढला गेलेला धर्मराजा त्यांच्या शेजारी बसला आणि श्री बप्पभट्टिसूरींकडून धर्मोपदेश ऐकू लागला.

११९. तेथे आमराजाचा मंत्री नजराणा घेऊन आला. त्यांच्या पाठोपाठ इतर मंत्र्यासह आमराजा तेथे आला.

१२०. तेथे सूरींना पाहून आमराजाने एक हात वर केला. त्यातून आमराजाला हे सूचित करावयाचे होते की आपण (म्हणजे बप्पभट्टिसूरी) खरे राजे.

१२१. नंतर बप्पभट्टिसूरींनी आपल्या मस्तकाजवळ दोन्ही हात नेऊन उंचावले. त्याचा भावार्थ असा की, 'राजाच्या मस्तकावर काय शिंगे असतात ?' (म्हणजे आचार्यपदापुढे राजवैभवाची काय मातब्बरी ?)

१२२. त्याच्या मंत्र्याने श्री बप्पभट्टिसूरींच्या हातामध्ये पत्र दिले आणि त्यांना विनंती केली, 'तुम्हाला आमराजा बोलावतोय.'

१२३. जेव्हा बप्पभट्टिसूरी आमराजांचे गुणगान करायला लागतात तेव्हा धर्मराजा म्हणतो, 'भगवन, तो आमराजा कसा आहे ?'

१२४. 'ज्याचे.तुम्ही स्वतःच सतत नेहमी गुणग्रहण करताना दिसता, असा त्याच्यासारखा जर येथे (या सभेत) कोणी असेल तर तुम्ही मला दाखवा.'

१२५. सर्व सभेवर दृष्टी टाकून सूरींनी पाहिले, तेव्हा (त्यांना असे दिसून आले की) ज्या मंत्र्याने दोन्ही बाहू उंच केले होते तो मंत्री नसून प्रत्यक्ष आमराजाच होय.

१२६. धर्मराजा म्हणाला, 'अहो काय आमाचे निरुपम सौंदर्य ! रूपाप्रमाणेच सर्व गुण येथे संभवतात.'

१२७. नंतर आमराजा उठला. त्याने एक बोट सोडून नमस्कार केला. 'एक प्रहर लागेल असे व्याख्यान करावे,' असे आमाने सूरींना त्या कृतीने सुचविले.

१२८. त्याचा हा भावार्थ जाणून सूरींनी दोन बोटे सोडली आणि त्यातून आमाला सूचित केले, 'मी दोन प्रहर भर व्याख्यान करेन. तू स्वस्थपणे जा!'

१२९. आमराजा निघून गेला. सूरींनी असे काही व्याख्यान केले की सर्व सभेसह धर्मराजा चित्रात रेखाटल्याप्रमाणे (निःस्तब्ध) झाला.

१३०. श्री बप्पभट्टिसूरींचे व्याख्यान संपते न संपते तोच धर्मराजा म्हणाला, 'दिवसाचा एक प्रहर देखील लोटला नाही (म्हणजेच काळ कसा गेला हे समजले नाही).'

१३१. हसून सूरी म्हणाले, 'राजा, दिवसाचा पूर्वार्ध संपून देखील गेला. राजा, गेलेली घटिका जाते ती जातेच. (म्हणजे ती परत येत नाही.)'

१३२. बप्पभट्टी म्हणतात, 'तुझ्या समवेत आम्ही गोपालगिरीस जाऊ.' तेव्हा धर्मराजा अशी विनंती करतो, 'तुमच्या प्रतिज्ञेचे स्मरण करा.'

१३३. सूरी म्हणाले, 'आमराजा येऊन गेला.' नरपती (म्हणजे धर्मराजा) म्हणतो, 'आमराजा येथे असताना (आपण) मला कसे सांगितले नाही ?'

१३४. 'खंदकाच्या किनाऱ्यावर तीनदा सूचित केले की येथे दोन राजे आहेत. येथेही दोन हात वर करून आमाची उपस्थिती सूचित केली.'

१३५. एवढ्यात द्वारपालाने धर्मराजाला खबर दिली की पानदानामध्ये सुवर्णशलाका आहे.

१३६. तेव्हा राजाने बेचैनीने कोतवालाला आदेश दिला की, 'ताबडतोब.जा व आमराजाला कैद करून आण.'

१३७. बप्पभट्टिसूरी म्हणतात, 'आम.जाऊन दोन प्रहर झाले. आधीच निघून गेलेला साप फाश्यामध्ये कसा बरे अडकेल ?'

१३८. धर्मराजाच्या सेनापतीने आमराजाचा ससैन्य त्वरित पाठलाग सुरू केला. (परंतु) देशसीमेपर्यंत जाऊन जसा गेला तसा हात हलवत परतला.

१३९. धर्मराजा चतुरंग सैन्य व बप्पभट्टींसह अत्यंत भक्तियुक्त होऊन आपल्या देशाच्या सीमेला पोहोचला.

१४०. धर्मराजा आपल्या सर्व मंत्र्यांना (सूरींच्या स्वागतासाठी) पाठवून देतो. सूरीदेखील त्याच्यासह गोपालगिरीला येतात.

१४१. आमराजा बप्पभट्टी (येऊन पोहोचल्याचे) जाणून (स्वागतासाठी) सामोरे जातो. त्यांना वंदन करून, त्यांचा हात धरून त्यांचा नगरामध्ये प्रवेश करवितो.

१४२,१४३.गाथेमध्ये, 'धुळीने माखलेला पथिक' या (शब्दांपुढे) 'पात्रातून गळणारे (जलबिंदू)' ही जी दोन पदे आधीच ठेवली होती; तीच नंतर आमराजाने बप्पभट्टींना दाखविली. त्या गाथार्धाला पाहून सूरींनी (त्याची) त्वरित पूर्ती केली. (ती अशी -)

१४४. तेव्हा मी प्रवासाला निघालो असताना प्रियेने जे अश्रुपातपूर्वक घोर रूदन केले, त्याचे स्मरण मला जलपात्रातून स्रवणाऱ्या जलबिंदूच्या मिषाने होते.

१४५. त्या समस्यापूर्तीने राजाच्या अंतःकरणातील अहंकार पार नाहीसा झाला. सूर्य ज्याप्रमाणे अंधकाराचा प्रभाव नाहीसा करतो, त्याप्रमाणे (राजाच्या) अज्ञानाचा प्रभाव नाहीसा करत सूरी उपाश्रयाला येऊन पोहोचले.

१४६. दुसऱ्या दिवशी दुपारी खिडकीमध्ये सूरींसह राजा बसला असताना, सूरींना उद्देशून त्याने वृत्तबद्ध गाथेचे निवेदन केले. ती पुढीलप्रमाणे -

१४७. 'मित्रहो, माझ्या मनातील भाव ओळखून 'परिव्राजकाचा पाय नूपुरयुक्त' ह्या समस्येची पूर्ती करा.' श्री बप्पभट्टींनी तात्काळ समस्यापूर्ती केली. ती अशी -

१४८. दाराआड उभे राहून त्या सुंदर यौवनगर्वितेने वासनापूर्तीचा प्रस्ताव त्या परिव्राजकापुढे मांडला असताना त्या जितेंद्रियाने नकार दिला, म्हणून त्याचा पाय पैंजणयुक्त झाला.

१४९. ते ऐकून राजाच्या मनाची अस्थिरता पूर्णपणे नाहीशी झाली. तेथे एकत्र राहणाऱ्या अशा त्या दोघांचे दिवस सुखाने जाऊ लागले.

१५०. परदेशातून कोणा एकाने एक उत्तम समस्या आणली. ती अशी - 'वक्रग्रीव (कमानदार) दिव्याला पेय कोणाकडून दिले जात असताना तो पीत नाही ? '

१५१. 'पतीच्या स्मरणाने ओघळणाऱ्या अश्रुधारांना ढाळणाऱ्या प्रोषितपतिकेकडून वक्रग्रीव दिव्याला (अश्रूरूपी पेय) दिले जाते.'

१५२. हे ऐकून राजा व सर्व लोक विस्मित होऊन म्हणू लागले, 'श्री बप्पभट्टीसूरींसारखा कोणी विद्वान सांप्रत नाही.'

१५३. एकदा आमनरेंद्रासह बप्पभट्टी सभेत बसले असताना तेथे नृत्य करणाऱ्या एका श्रेष्ठ नर्तिकेकडे टक लावून पाहू लागले.

१५४. राजाने सुद्धा सूरींची दृष्टी नर्तिकेवर खिळलेली बघून विचार केला की खरोखरच माझ्या मित्राचे या नर्तकीवर प्रेम जडलेले दिसते.

१५५. 'जर माझ्या मित्राची इच्छा माझ्याकडून पुरी झाली नाही तर हे समृद्ध असलेलेल सगळेच्या सगळे सप्तांग राज्य विफल आहे असे मी मानतो.'

१५६. असा विचार करून राजाने त्या रात्री त्या नटीला पढवून राजशृंगारासह सूरींकडे पाठविले.

१५७. उपाश्रयाच्या दारातून प्रवेश करणाऱ्या त्या नर्तकीला पाहून बप्पभट्टिसूरींनी इतर सर्व श्रावकांना निरोप दिला.

१५८. 'मी तुमचीच आहे' असे म्हणून ती नर्तकी सूरींच्या जवळ येऊन बसली व ती कपटाने म्हणाली. 'मी तुमचे अंग रगडते.'

१५९. बप्पभट्टी म्हणाले, 'ठीक आहे. याने काय बिघडते!' ती संवाहन करता करता आपल्या वक्षःस्थलाने सूरींचे देहमर्दन करू लागली.

१६०. शुद्ध (म्हणजे प्रासुक) भूमीवर बसून सूरी अचानक रडू लागले. तिने म्हटले, 'हे. प्रभो, हर्षाच्या ठिकाणी शोक कशासाठी!'

१६१. सूरी म्हणाले, 'आम्ही गुरूंचे संवाहन करीत असू. त्यांच्या नितंबाच्या स्पर्शासारखा तुझ्या यौवनाचा स्पर्श आहे.'

१६२. 'माझ्या हाताला तसा स्पर्श झाला. म्हणून मला गुरूंचे स्मरण झाले. हे भद्रे, माझ्या रडण्याचे कारण हेच आहे; हे तू निश्चितपणे जाण.'

१६३. लज्जित होऊन गणिका आमराजाकडे गेली. ती म्हणाली, 'महाराज,.आपण मला दगडाकडे (म्हणजे अरसिकाकडे) का पाठविले ?'

१६४. राजा म्हणाला, 'तो दगड कसा ते सांग!' मग तिने राजाला सर्व वृत्तांत सांगितला.

१६५. मग दुसऱ्या दिवशी आमराजा सूरींजवळ गेला नाही; परंतु मध्यान्ही सूरी आपण होऊनच आमराजाच्या प्रासादात गेले.

१६६. लज्जेने मान खाली घातलेला आमराजा जेव्हा काहीच बोलेना, तेव्हा सूरी म्हणाले, 'राजा, हा काय प्रकार आहे ?'

१६७. राजा म्हणाला, 'आम्ही तुमचा अनादर केला आहे.' सूरी म्हणाले, 'तेच विचारण्यासाठी मी तुमच्याकडे आलो आहे.'

१६८. आम म्हणाला, 'काल एका नर्तकीवर तुमची दृष्टी खिळलेली पाहिली म्हणून मी तिला तुमच्याकडे पाठविले.'

१६९. 'अक्षरे वाचून आमची दृष्टी तरलित झाली आहे. (म्हणजे थकली आहे). तेव्हा तिच्या निळ्या वस्त्रांनी आमच्या श्रांत डोळ्यांना विश्रांती दिली.'

१७०. 'अत्यंत आसक्त होऊन किंवा रात्र संपेपर्यंत रतिक्रीडा केल्यास डोळे जसे तरळतात (थकतात), तसे सांप्रत माझे डोळे झाले आहेत; (म्हणूनच) माझी नजर नटीवर खिळली होती. आमचा दुसरा काही उद्देश नव्हता,' असे सूरी म्हणाले.

१७१. 'मी आपली अवज्ञा केल्याबद्दल क्षमा असावी,' असे राजाने सूरींच्या पाया पडून म्हटले. सूरींनी राजाला क्षमा केली.

१७२. नंतर राजाच्या पुढे बप्पभट्टींनी धर्मकथेस आरंभ केला. तिच्या श्रवणाने आमराजा धर्माभिमुख झाला.

१७३. तेव्हा राजा म्हणाला, 'हे भगवान! जिनशासनातील सर्वश्रेष्ठ मुनींमध्ये आपणच प्रमुख आहात.'

१७४. सूरी म्हणाले, 'जिनशासनामध्ये सर्वोत्तम असणारे साधू दुसरेच कोणी होत. आम्ही केवळ त्यांच्या चरणरजाप्रमाणे आहोत.'

१७५. आमदेवाने विनंती केली, 'भगवन! जर येथे जवळपास कोणी तुम्हांला गुरुसमान असलेली व्यक्ती असेल, तर कृपा करून मला सांगावे.'

१७६. 'येथे वरायवाड गावामध्ये (?) अत्यंत महान असे आमचे गुरू सांप्रत रहातात.'

१७७. राजाने खरोखर विचार केला की, 'श्री बप्पभट्टिसूरी अनुपम अशा चारित्र्याने ज्यांची गात्रे अलंकृत झाली आहेत असे असून परोपकारी व व्रतसंपन्न आहेत.'

१७८. 'यांनाही गुरू आहेत तर! त्यांच्या दर्शनाची माझ्यात उत्कंठा निर्माण झाली आहे. ज्यांच्या गुणांचे ग्रहण आमचे गुरू (बप्पभट्टी) करतात ते कसे असतील बरे !'

१७९. भिंतीच्या छायारूपी वस्त्राने ज्यांचे सर्वांग झाकले आहे अशा विमलसूरींना आमाने पौर्णिमेच्या रात्री भिंतीआडून पाहिले.

१८०. विदग्ध रसिकांपुढे विमलसूरी कथाकथन करीत होते. तो स्त्रीसौंदर्य वर्णनाचा प्रसंग होता.

१८१. महिलांच्या वैशिष्ट्यपूर्ण, शृंगारभावयुक्त, मीलन, विरह, हावभाव, शृंगारविषयक चेष्टा, विलास इत्यादींचे विवेचन सूरी करीत होते.

१८२. नंतर राजाने विस्मित होऊन विचार केला, 'आम्ही अतिशय शृंगारभावयुक्त आहोत. तथापि सूरींनी शृंगारभावाच्या ज्या छटा सांगितल्या त्या आजवर आम्हांला ठाऊकच नव्हत्या.'

१८३. 'हे सूरी अतिशय शृंगारिक असून हे सर्व ज्याअर्थी अभिनयपूर्वक सांगत आहेत त्या अर्थी हे ह्या जगातील कामुकांचे मुकुटमणी असले पाहिजेत.'

१८४. दुसऱ्या दिवशी बप्पभट्टिसूरींनी त्याच्या मनातील भाव ताडला. बप्पभट्टिसूरी विचार करतात, 'अजून हा शल्यापासून मुक्त झालेला दिसत नाही!'

१८५. 'मला असे वाटते, रात्री ह्याने विमलसूरींचे व्याख्यान ऐकले असावे. त्या दिवसापासून धर्माचरणाबाबत याची श्रद्धा कमी झाली आहे.'

१८६. 'हा त्याच ठिकाणापासून (विमलसूरींजवळून) परतलेला दिसतोय. अन्य ठिकाणाहून नव्हे.' बप्पभट्टिसूरींनी स्वतःच्या गुरूंच्या तोंडून याची सर्व खात्री करून घेतली.

१८७. कविवराचा वेष धारण करून ते (म्हणजे विमलसूरी) श्री बप्पभट्टिसूरींना भेटले. त्यांनी विमलसूरींना राजाच्या पुढे (काव्यवाचनाची) संधी देवविली.

१८८. लोकांचे अवधान आकर्षक रितीने वेधून घेऊन त्यांनी राजापुढे **बाहुबलिविजयाचे** कथाकथन सुरू केले.

१८९. आपल्या कथनशैलीने त्यांनी वीररस अशा प्रकारे आविष्कृत केला की, युद्धप्रिय आम तलवार उगारून जणू (लढायला) तयार झाला.

१९०. त्वरित त्याचा हात धरून बप्पभट्टी म्हणाले, 'राजा, ही कथा आहे, हे युद्ध नव्हे.'

१९१. जेव्हा विस्मित झालेल्या राजाने इकडे तिकडे बघण्यास सुरुवात केली, तेव्हा विमलसूरींनी त्वरित मुनिवेष धारण केला.

१९२. राजाने विचारले, 'सांगा! ही काय जादू आहे ?' तेव्हा विमलसूरी म्हणाले, 'हे, जसे आहे, तसेच जाण.'

१९३. 'आम्ही लहानपणापासूनच दीक्षा घेतली असून सर्व हिंसामय आचारांचा त्याग केला आहे. राजा, आमच्या मनात अपूर्व वैराग्य निर्माण झाले आहे.'

१९४. 'तू युद्धामध्ये अनेक राजांना पराभूत केले आहेस. (तथापि) केवळ आमच्या शब्दांनी तू विस्मित झालास (आणि युद्धाला तत्पर झालास).'

१९५. 'हे जसे, तसेच तू जाण. राजा! सर्व शृंगारवर्णन आम्ही केवळ साहित्यिक वर्णनाच्या आधारे अनुभवून जाणतो.'

१९६. 'जे.काही स्वतः पाहिले असेल, त्यावर विचार करूनच विश्वास ठेवावा. विचार न करता कार्यास आरंभ केला, तर मोठ्यात मोठ्या कार्याचाही विनाश होतो.'

१९७. 'केवळ ऐकीव माहितीचे ग्रहण करणारा होऊ नकोस. जे खरोखर पाहिलेले असते, तेच प्रत्यक्ष होय. प्रत्यक्ष पाहिल्यावरही (योग्यायोग्यतेचा) ग्राह्याग्राह्यतेचा विचार करावा.'

१९८. संसाराविषयी विरक्तिप्रधान असा उपदेश सूरींकडून दिला गेल्याने आमराजा प्रतिबोधित झाला. बैल ज्याप्रमाणे गाडीची धुरा धारण करण्यास समर्थ असतो, त्याप्रमाणे जिनधर्माची धुरा पेलण्यास तो समर्थ झाला.

१९९. नंतर त्याने जणू मेरू पर्वतावर उपस्थित असल्याप्रमाणे उत्तुंग व त्रिभुवनाला आश्चर्यचकित करून सोडणारे असे महावीर जिनेंद्राचे मंदिर करविले.

२००. आपल्यासाठी अर्धकोटी रक्कम खर्च करून जिनभवन निर्माण केले, जणू देहावरील अर्धकोटी रोमांच शुद्ध केले. (म्हणजे देहावरील कोट्यवधी रोमांचांइतकी आमची पापे शुद्ध केली गेली.)

२०१. जिनबिंबाची प्रतिष्ठा करून व विविध प्रकारे जिनपूजा करून ज्याची गात्रे रोमांचित झाली आहेत, अशा आमराजाने (जिनेंद्राच्या) स्तवनास प्रारंभ केला.

२०२. 'आपण जिननामक जमिनीवर सुंदर पर्णांनी युक्त असलेले व शरीरात वास करणारे कर्मरूपी शत्रूंचे अरण्य शुक्लध्यानरूपी अग्नीने (दग्ध केले आहे.)' (दुसऱ्या चरणाचा पाद अशुद्ध असल्याने अर्थ संदिग्ध आहे.)

२०३. 'धाराधीश भोजाच्या धारानगरीत सर्वत्र खळखळ वाहणारे पाणी असते. त्या नगरीरूपी हत्तीला गोष्पदासारख्या लहान डबक्यातले जलपान आस्वाद्य होऊ शकेल काय ?'

२०४. 'मनाला आनंद देणाऱ्या अशा मानससरोवरामध्ये जो राजहंस जलक्रीडा करतो, तो राजहंस इतर क्षुद्र तळ्यात कसा आनंद मिळविणार ?'

२०५. '(सुगंधी व सरस पुष्पामुळे) चित्ताला आनंद देणाऱ्या नंदनवनामध्ये भ्रमर स्वेच्छेने रममाण होत असताना गंधहीन व रसहीन फुलांमध्ये कसा बरे आसक्त होईल ?'

२०६. 'हे प्रभो, तुमचे निवासस्थान चंद्राप्रमाणे उज्ज्वल व अजरामर आहे. ज्याने एकदा तुम्हाला पाहिले, तो तुम्हांला सोडून रागद्वेषांनी युक्त असलेल्या अन्य देवांची कशी भक्ती करेल ?'

२०७. नंतर बप्पभट्टसूरी चतुर्विध श्रमण संघासह तसेच मांडलिक, मंत्री व सामंत यांच्याबरोबर यात्रेला निघाले.

२०८. (पहिला चरण संदिग्ध असल्याने समाधानकारक अर्थ लागत नाही. दुसऱ्या चरणाचा अर्थ पुढीलप्रमाणे आहे.) -

जे काही थोडे लोक उरले होते, त्या सर्वांना सूरींच्या बरोबर पाठविण्यात आले.

२०९. नंतर श्रमणसंघ प्रत्येक गावातील, प्रत्येक नगरीतील, प्रत्येक जिनमंदिरातील जिनबिंबाची विधीप्रमाणे पूजा करीत पुढे तो मोढेरपुराला महावीर तीर्थंकराच्या मूर्तीचे वंदन करण्यासाठी आला.

२१०. पुढे तो संघ सौराष्ट्र देशातील 'वामनवल्ली'. गावी उज्जयंत पर्वतावरील नेमिनाथ तीर्थंकरांच्या मूर्तीची वंदना करण्यासाठी आला.

२११. बप्पभट्टी उज्जयंत पर्वताकडे निघाले असताना आमराजाने पुढील स्वरूपाचा हुकूम काढला.

२१२. 'जे श्वेतांबर साधू आहेत, त्यांनी क्षपणकाच्या वेषाने जावे आणि ज्या सर्व आर्यिका आहेत, त्यांनी कांबळ्याचा त्याग करून जावे.'

२१३. नंतर लोकांकडून मौखिक परंपरेने बप्पभट्टिसूरींनी असे जाणले की, आमराजाची पट्टराणी दिगंबर जैनमुनींची भक्त आहे.

२१४. पट्टराणीच्या विनंतीवरून राजाकडून बप्पभट्टींना सांगितले गेले की, 'दिगंबर जैनांना वादामध्ये जिंकून श्वेतांबरवेषाने तुम्ही नेमिनाथांना वंदन करा.'

२१५. तेव्हा बप्पभट्टिसूरींनी वादामध्ये सर्व दिगंबर जैनांना जिंकले; पुन्हा पट्टराणी म्हणते, 'हे तीर्थ दिगंबर जैनांचे आहे.'

२१६. नंतर बप्पभट्टिसूरींनी तिच्या देहावर नेत्रकटाक्ष टाकून, तापाने अंगाची लाही लाही व्हावी, तशी आग ज्याच्यामुळे होते, असा फोड निर्माण केला.

२१७. बप्पभट्टिसूरींच्या पायावर मस्तक ठेवून आमराजा विनवू लागला, 'जर कुत्र्याने अन्न उष्टे केले असेल तर पुन्हा ते खावे काय ?'

२१८. 'अथवा स्वतःच्या अपत्याने जर मातापित्याच्या मांडीवर मलविसर्जन केले तर त्यांनी काय बालकावर रागवावे ?'

२१९. नंतर बप्पभट्टींनी करुणेने क्षणातच तिला पूर्ववत केले. तेव्हा ती दुष्टा पुन्हा म्हणाली, 'हे तीर्थ आमचे आहे.'

२२०. ' देवाची वंदना जेथे केली जाते, अशा तीर्थक्षेत्रामध्ये या तीर्थाचा समावेश होतो असे जर तुमचे म्हणणे असेल तर आबालवृद्धांनी युक्त असलेल्या सर्व संघाला हा पर्वत चढू द्यावा.'

२२१. सूरी म्हणाले, 'सकाळी तुमच्याबरोबर सर्व संघ देईन.' असे म्हणून सूरी संघामध्ये आले.

२२२. रात्री सूरींनी एक गाथा रचून संघाला शिकविली. संघाने आमराजाच्या पट्टराणीपुढे त्या गाथेचा उच्चार केला.

२२३. ती गाथा अशी -

'उज्जयंत पर्वताच्या शिखरावर ज्यांची दीक्षा, ज्ञान आणि निर्वाण अशी तीन (कल्याणके) झाली, त्या धर्मचक्रवर्ती अरिष्टनेमींना मी वंदन करतो.'

२२४. तिने (म्ह. पट्टराणीने) लज्जित होऊन राजाची आज्ञा अमलात आणली. बप्पभट्टिसूरी संघासह रेवागिरी (उज्जयंतगिरी) वर आरूढ झाले.

२२५. संघाने तेथे नेमिजिनांची पूजा केली. संघ अत्यंत संतुष्ट होऊन काही दिवस तेथेच राहिला.

२२६. तेथून शत्रुंजय पर्वतावर आणि भरूचक्षेत्राला जाऊन महिमा गायली. अशा रितीने (बप्पभट्टिसूरी संघासह) गोपालगिरीस आले.

२२७. संघाला एकत्रित करून सूरी म्हणाले, 'उज्जयंत पर्वताच्या शिखरावर वादविवादाच्या दरम्यान ही गाथा मी रचली होती.'

२२८. 'देववंदनापर पूजापाठामध्ये संघाने या गाथेचा समावेश करावा.' संघ म्हणाला, 'ही गाथा नित्य (पूजा) पाठामध्ये असू द्या.'

२२९. (हेमचंद्रसूरींनी उदयनास म्हटले), 'ज्याप्रमाणे बप्पभट्टींनी आमराजाला उपकृत केले, त्याप्रमाणे तुम्ही देखील कुमारपाल राजाच्या उपकारांचे स्मरण करणे योग्य आहे.'

२३०. नंतर उदयनाने गुरुभक्तिभाराने युक्त होऊन व 'ठीक आहे.' असे म्हणून तसे केले.

विभाग पाचवा : परिशिष्टे

परिशिष्ट १
श्री प्रभाचंद्राचार्यविरचित प्रभावकचरितातील बप्पभट्टिसूरिचरित

परिशिष्ट २
श्री राजशेखरकृत प्रबन्धकोशातील बप्पभट्टिसूरिप्रबन्ध

परिशिष्ट ३
बप्पभट्टिसूरिचरिताचे पं. व्ही. कृष्णम्मास्वामींनी केलेले संस्कृत गद्य रूपांतर

परिशिष्ट ४
श्री बप्पभट्टिसूरिविरचित तारागण

परिशिष्ट ५
श्री बप्पभट्टिसूरिविरचित चतुर्विंशतिका

परिशिष्ट ६
श्री बप्पभट्टिसूरिविरचित शारदास्तोत्र

परिशिष्ट ७
श्री बप्पभट्टिसूरिविरचित साधारणजिनस्तवनस्तोत्र

परिशिष्ट ८
बप्पभट्टिसूरिकहाच्या हस्तलिखित संहितेतील मूळ पाठ व सुधारित पाठ

परिशिष्ट ९
बप्पभट्टिसूरिकहाचा गाथानुक्रम

११. श्रीवप्पभट्टिसूरिचरितम् ।

§१. **बप्पभट्टिः** श्रिये श्रीमान् यद्वृत्तगगनाङ्गणे । खेलति स्म गतायाते राजा सूरः[1] कविर्बुधः ॥ १ ॥
पीत्वा यद्गोरसं तृप्ता दृप्यन्तः[2] कवितर्णकाः* । भ्रिभ्राणाः शृंगितां विज्ञगोपालैरपि[3] दुर्दमाः ॥ २ ॥
तस्यैव चरितं किञ्चित् कीर्तयिष्ये यथाश्रुतम् । मत्प्रज्ञामुकुरी(रो ?)णोति साधुशृङ्गारभूषणम् ॥ ३ ॥
अस्ति स्वस्तिनिधिः श्रीमान् देशो **गूर्जर**संज्ञया । अनुत्सेकविवेकाढ्यलोकः शोकाचलस्वरुः[4] ॥ ४ ॥
यदेकांश[5]प्रतिच्छन्दस्वःप्रमुकुरस्थितम् । गौरीशमुनिबाहुल्यात् तत्पुरं **पाटला**भिधम् ॥ ५ ॥
जितशत्रुर्महीनाथः पाथःपतिगभीरिमा । तत्रास्ति [6]त्रासिताशेषबाह्यान्तररिपुव्रजः ॥ ६ ॥
चित्रशास्त्ररहस्यालिकन्दकन्दलनाम्बुदः । आश्लिष्टपरमब्रह्मामन्दपीयूषसागरः ॥ ७ ॥
मोढाख्यप्रौढगच्छश्रीविवोढानूढमूढतः । श्री**सिद्धसेन** इत्यासीन्मुनीन्द्रस्तत्र विश्रुतः ॥ ८ ॥–युग्मम् ।
विश्वविद्यावदातश्रीर्मान्यः क्षितिभृतामपि । **मोढेरे** श्रीमहावीरं प्रणन्तुं सोऽन्यदाययौ ॥ ९ ॥
प्रणम्य विधिवत् तीर्थं पृथगाश्रयसंश्रितः । निशायां योगनिद्राभृद् ददर्श स्वप्नमीदृशम् ॥ १० ॥
उन्मीलँल्लीलया नेत्रे यत्केसरिकिशोरकः । आरूढश्चैत्यशृङ्गाग्रमुत्फालः सत्त्वशालितः ॥ ११ ॥
इति दृष्ट्वा जजागारानगारपतिरद्भुतम् । प्रीतश्च श्रावयामास प्रातर्मुनिमतल्लिकाः ॥ १२ ॥
कल्याणानामुपादानं हेतुत्वं विनयस्य तैः । ख्यापयद्भिर्नतैः पृष्ट आख्यादर्थं च तत्पुरः ॥ १३ ॥
शिष्योऽन्यवादिकुम्भीन्द्रकुम्भनिर्भेदनोद्यमः । भाग्यैः संघस्य कोऽप्यद्य समेष्यति महामतिः ॥ १४ ॥
भाविप्रभावसंसूचिस्वप्नानन्दाभिनन्दितैः । तैः समं सूरिरागच्छज्जैनालयमनालयः ॥ १५ ॥
त्रिः प्रदक्षिणयित्वा च यावन्नाथं विवन्दिषुः । तावत्षड्वार्षिको बाल एकस्तत्पुर आगमत् ॥ १६ ॥
कस्कः कौतस्कुतस्त्वं भो ! असौ पृष्टस्तदा[7]ऽवदत् । [8]**पञ्चालदेश्य-बप्पाख्य**पुत्रोऽहं **भट्टि**देहभूः ॥१७॥
सूरपालाख्यया शत्रून् निघ्नन् पित्रा निवारितः । अजानतेति वात्सल्यादहेतुर्विक्रमे वयः ॥ १८ ॥
एकोऽम्बामप्यनापृच्छ्यानुशयातिशयात्ततः । आगमं प्रभुपादान्ते प्रान्ते स्वस्नेहतः स्थितः ॥ १९ ॥
अस्यामानुष्यकं तेजो ध्यात्वेति गुरुभिस्ततः । किं त्वं नोऽन्तेऽवतिष्ठासुरित्यजल्प्यत हर्षतः ॥ २० ॥
मद्भाग्यैः फलितं पूज्या इत्युक्त्वा सोऽप्यवस्थितः[9] । अलिः किं नाम नो तिष्ठेद् विकाशिनि सरोरुहे ॥२१॥
एकशः श्रुतमात्रेणावधारयति निश्चलम् । अनुष्टुभां सहस्रं तु प्रज्ञायां तस्य का कथा ॥ २२ ॥
जडदुस्तर्कसंक्लिष्टा देवी वागधिदैवतम् । दुर्बोधशास्त्रहृद्वेदि मुहूर्त्तं यस्य वाञ्छति ॥ २३ ॥
प्रेक्षाभियोगसन्तुष्टाः प्रभवस्तस्य पैतृके । गत्वा **डुंबाउधी**ग्रामे[10] पितरौ प्रार्थयन्त ते ॥ २४ ॥
स प्राह यातयामो[11]ऽहमेतदेवैकपुत्रका[12] । आशाधारोऽयमावाभ्यां कथं मोक्तुं हि शक्यते ॥ २५ ॥
निर्बन्धो यदि पूज्यानां तदा नामभिधां[13] यदि । विश्रुतां **बप्पभट्टी**ति कुरुध्वे तत्सुतोऽस्तु वः ॥ २६ ॥
ओमित्युक्ते जगत्पूज्यैः श्रद्धालुनिवहस्तयोः । आजन्मकसि(शि)पु[14] प्रादान्महदास्था न निष्फला[15] ॥२७॥
शताष्टके च वर्षाणां गते विक्रमकालतः । सप्ताधिके राधशुक्लतृतीयादिवसे गुरौ ॥ २८ ॥
मोढेरे ते विहृत्यामुं दीक्षित्वा नाम चादधुः । स्वाख्या त्रिकैकादशकाद् **भद्रकीर्ति**रिति श्रुतम् ॥ २९ ॥

---

1 A B °शूरः । 2 N B अप्यन्तः । * 'वाछडा' इति B टिप्पणी । 3 A गोपालैरिव । 4 A शोकाचलस्वरुः; N °चलस्तरुः ।
5 A यदेकांशे । 6 N नाशिता° । 7 A तथावदत् । 8 B C पाञ्चाल° । 9 A C °प्यत्रास्थित । 10 N डुंबातिग्रीग्रामे ।
11 N याचयामो । 12 A °पुत्रिका; N पुत्रकः । 13 A नवविधां । 14 A C °कशिपुः । 15 A निर्मला ।

तत्पित्रोः प्रतिपन्नेन पूर्वाख्या तु प्रसिद्धिभूः । शिष्यमौलिमणेरस्य कलासद्मनवेश्मनः ॥ ३० ॥
संघश्च तद्गुणग्रामरामणीयकरञ्जितः । विदधेऽभ्यर्थनां तेषामत्रावस्थानहेतवे ॥ ३१ ॥
योग्यतातिशयं चास्य ज्ञात्वा सद्गुरवस्ततः । सारस्वतं महामन्त्रं तत्रस्थास्तस्य ते ददुः ॥ ३२ ॥
परावर्त्तयतस्तस्य निशीथे तं सरस्वती । स्वर्गङ्गास्रोतसि स्नान्त्यनावृतासीद् रहोभुवि ॥ ३३ ॥
तन्मन्त्रजापमाहात्म्यात् तादृग्रूपा[1] समाययौ । ईषद्दृष्ट्वा च तां वक्त्रं परावर्त्तयति स्म सः ॥ ३४ ॥
स्वं रूपं विस्मरन्ती च प्राह वत्स ! कथं मुखम् । विवर्त्तसे भवन्मंत्रजापात् तुष्टाहमागता ॥ ३५ ॥
वरं वृणिष्वेति तत्प्रोक्तो बप्पभट्टिरुवाच च । मातर् ! विसदृशं रूपं कथं वीक्षे[2] तवेदृशम् ॥ ३६ ॥
स्वां तनुं पश्य निर्वस्त्रामित्युक्ते स्वं ददर्श सा । अहो निबिडमेतस्य ब्रह्मव्रतमिति स्फुटम् ॥ ३७ ॥
उचैश्च मन्त्रमाहात्म्यं येनाहं गतचेतना । ध्यायन्ती दृढतोषेण त्वत्पुरः समुपस्थिता ॥ ३८ ॥
वरेऽपि निस्पृहे त्वत्र दृढं चित्रातिरेकतः । गत्यागत्योर्मम स्वेच्छा त्वदीया निर्वृतो भव ॥ ३९ ॥

§ २. अन्यदा तत्र संस्थानां (°नो ?) भद्रकीर्त्तिर्बहिर्गतः । वृष्टौ देवकुलं श्रित्वा तस्थौ स स्थैर्यसुस्थितः ॥ ४० ॥
तत्रस्थस्य पुमानेको नाकिपाकविडंबकः । समगंस्त प्रशस्तश्रीर्वृष्टिव्याकुलितस्तदा ॥ ४१ ॥
श्यामाश्मोत्कीर्णवर्णौघा सहारहृदिवांगना । स्वस्तिप्रशस्तिरत्रास्ति विहस्तितजडस्थितिः ॥ ४२ ॥
काव्यानि वाचयामास महार्थानि सुधीरसौ । सख्याद् व्याख्यापयामास [3]प्रत्यग्राद् बप्पभट्टितः ॥ ४३ ॥
तदाख्यारंजितस्वान्तः शान्ते वर्षेऽतिहर्षतः । ययौ सहैव वसतौ वसतौ तत्र च स्थितः ॥ ४४ ॥
ततो गुरुभिराशीर्भिरानन्द्य समपृच्छ्यत । आमुष्यायणतां स्वस्याचख्यौ व्रीडावशानतः[4] ॥ ४५ ॥
वयं मौर्यमहागोत्रसंभूतस्य महाद्युतेः । श्रीचन्द्रगुप्तभूपालवंशमुक्तामणिश्रियः ॥ ४६ ॥
कान्यकुब्जयशोवर्म्मभूपतेः सुयशोऽङ्गभूः । पित्रा शिक्षावशात् किंचिदुक्तः कोपादिहागमम् ॥ ४७ ॥
अलेखीद् आमइन स्वं क्षितौ खटिकया ततः । स्वनामाग्रहणेनास्य विवेकात् ते चमत्कृताः ॥ ४८ ॥
व्यमृशन् सूरयस्तत्र नखच्छोटन[5]पूर्वकम् । पूर्वं श्रीरामसैन्येऽसौ दृष्टः षाण्मासिकः किल ॥ ४९ ॥
पीलुवृक्षमहाजाल्यां वस्त्रान्दोलकसंस्थितः । अचलच्छाययाऽस्माभिर्विज्ञातः पुण्यपूरुषः ॥ ५० ॥
ततस्तज्जननी वन्यफलवर्गं विचिन्वती । अस्माभिर्गदिता वत्से ! का त्वं किं वा भवत्कुलम् ॥ ५१ ॥
कथमीदृगवस्था च सर्वमाख्याहि नः पुरः । विश्वस्ता[6] यद्वयं त्यक्तसंगा[7] मुक्तपरिग्रहाः ॥ ५२ ॥
साऽवादीत् तातपादानां किमकथ्यं ततः प्रभो ! । श्रीकन्यकुब्जभूपालयशोवर्मकुटुम्बिनी ॥ ५३ ॥
अहं सुतेऽत्र गर्भस्थे सपत्न्या मत्सरोदयात् । पुरा लब्धवरं प्रार्थ्य नृपान्निर्वासितास्म्यहम् ॥ ५४ ॥
ततोऽनुशयतो हित्वा पितृ-श्वशुरमन्दिरे । स्थाने व आगमं वन्यवृत्त्या वर्त्ते प्रभोऽधुना ॥ ५५ ॥
श्रुत्वेति सान्त्विताऽस्माभिश्चैत्यशुश्रूषया स्थिरा । तिष्ठ बालं प्रवर्द्धस्व जनकस्येव वेश्मनि ॥ ५६ ॥
तत्सपत्नी च केनापि कालेन व्यनशत् स्वयम् । सा च राज्ञा चरैः शोधयित्वा पश्चादनीयत[8] ॥ ५७ ॥
प्राच्यासंख्यगुणेनाथ मानेन बहुमानिता । वयं चात्र ततो देशाद् भूमावस्यां विजह्मिम ॥ ५८ ॥
इति श्रुतश्च वृत्तान्तस्तद्देश्यपुरुषव्रजात् । अनेन सांप्रतं भाव्यं तत्पुत्रेणैव धीमता ॥ ५९ ॥
यदाकृतिः शरीरस्य लक्षणानीदृशानि च । नर्त्ते नृपसुतं पुण्या इति ध्यात्वाभ्यधुस्ततः ॥ ६० ॥
तत्रास्स्व वत्स ! निश्चिन्तो निजेन सुहृदा समम् । शीघ्रं गृहाण शास्त्राणि संगृहाणामलाः कलाः ॥ ६१ ॥

---

1 N °तद्रूपा सा । 2 A B C वीक्ष्ये । 3 N प्रत्यगाद् । 4 N वशाननः । 5 C °छोदन° । 6 A विश्वस्था । 7 A संगाव । 8 N °दनायिता ।

ताश्चेमाः—

पठितं लिखितं सम्यग्गणितं गीत-नर्त्तने । वाद्यं व्याकरणं छन्दो ज्योतिषं शिक्षया सह ॥ ६२ ॥
निरुक्तं च तथा कात्यायनं च सनिघंटुकम् । पत्रच्छेद्यं नखच्छेद्यं सह रत्नपरीक्षया ॥ ६३ ॥
आयुधाभ्याससंयोगश्च गजारोहणमेव च । तुरगारोहणं शिक्षा तयोः प्रत्येकमद्भुता ॥ ६४ ॥
5 मन्त्रवादो रसवादः खन्यवादस्तथैव च । रसायनं च विज्ञानवादो मतिविबोधकः ॥ ६५ ॥
तर्कवादश्च सिद्धान्तो विषनिग्रह-गारुडे । शाकुने वैद्यकं चैवाचार्यविद्या तथागमः ॥ ६६ ॥
प्रासादलक्षणं चैवं सामुद्रिकमथ स्मृतिः । पुराणं इतिहासश्च तथा वेदविधिर्वरः ॥ ६७ ॥
विद्यानुवाद-दर्शनसंस्कारौ खेचरी कला । अमरीकरणं चेन्द्रजालं पातालसिद्धिभृत् ॥ ६८ ॥
धूर्तानां शंबलं गन्धयुक्तिः वृक्षचिकित्सया । कृत्रिममणिकर्माणि सर्ववस्तुकृतिस्तथा ॥ ६९ ॥
10 वंशकर्म पुष्पकर्म चित्रकर्म कलाद्भुतम् । काष्ठ-पाषाणयोः कर्म लेपकर्म तथापि च ॥ ७० ॥
चर्मकर्म यन्त्रकर्म तथा रसवतीविधिः । काव्यालंकार-हसिते संस्कृत-प्राकृते तथा ॥ ७१ ॥
पैशाचिकं अपभ्रंशः कपटं देशभाषया । धातुकर्म प्रयोगाणामुपायाः केवलीविधिः ॥ ७२ ॥
एवंविधकलानां च द्वासप्ततिमधीतवान् । अनन्यसदृशः कोविदानां पर्षदि सोऽभवत् ॥ ७३ ॥
तथा चाभ्यस्यतस्तस्य प्रज्ञादर्पणबिम्बितः । ययौ लक्षणतर्कादिशास्त्रव्रातः स्ववश्यताम् ॥ ७४ ॥
15 सब्रह्मचारितासख्याद् राजपुत्रः प्रपन्नवान् । बप्पभट्टे ! प्रदास्यामि प्राप्तं राज्यं तव ध्रुवम् ॥ ७५ ॥
कालेन केनचित् तस्यातंकिना जनकेन च । प्रधानाः प्रेषिताः पट्टाभिषेककृतिहेतवः (ल्वे ?) ॥ ७६ ॥
कृच्छ्रादाप्रच्छ्य तं प्राप्तपुरं राज्येऽभ्यषिच्यत[1] । पित्रा स स्वर्गतेरस्य कृतवानौर्ध्वदेहिकम् ॥ ७७ ॥
लक्षद्वितयमश्वानां चतुर्दशशतानि च । रथानां हस्तिनां पत्तिकोटी राज्यमसाधयत् ॥ ७८ ॥
§ ३. स्वकीयसुहृदः प्रेषीदाह्वानाय नरानथ । आमनामा नृपः श्रीमानतिमानपवि*मः ॥ ७९ ॥
20 तेषां चात्यादरान् संघानुमत्या गुरवस्ततः । प्राहिण्वन् बप्पभट्टिं तं गीतार्थैः परिवारितम् ॥ ८० ॥
तीर्थप्रभावनोन्नत्यै शनैः संयमयात्रया । जगामाध्यामधामश्रि पुरमाममहीशितुः ॥ ८१ ॥
तदागमलसद्वर्णाकर्णनादर्णवो यथा । द्विजराजसमुद्योतादुद्वेलः स तदाऽभवत् ॥ ८२ ॥
भूपः समग्रसामग्र्या संमुखीनस्ततोऽगमत् । कुञ्जरारोहणे 'विद्वत्कुञ्जरस्यार्थनां व्यधात् ॥ ८३ ॥
बप्पभट्टिरुवाचाथ भूपं क्षमवतां पतिः । सर्वसङ्गमुचां नोऽत्र प्रतिज्ञा हीयतेतमाम् ॥ ८४ ॥
25 राजोचे वः पुरा पूर्वं यन्मया प्रतिशुश्रुवे । राज्यमात्रं प्रदास्यामि तल्लक्ष्म वरवारणः ॥ ८५ ॥
काममेवागुमाप्त[3] चेद् यूयं तन्मम प्रभो ! । 'उपदेशापार्तिदानेनामुख्यं कर्तुं न साम्प्रतम् ॥ ८६ ॥
इत्यारोप्य बलात् पट्टकुञ्जरे धरणीधरः । जितक्रोधाद्यभिज्ञानधृतच्छत्रचतुष्टयम् ॥ ८७ ॥
विश्वस्य दर्शयन्तं सदामरैर्वीजितं[5] प्रभुम् । प्रावेशयत् शमिश्रेणीश्वरमत्युत्सवात् पुरम् ॥ ८८ ॥—युग्मम् ।
राज्यचिह्नमिदं धुर्यमिति सिंहासनासनम्[6] । सौधान्तरमनुत्याह भूपं मुनिरथावदत् ॥ ८९ ॥
30 जातं सूरिपदेऽस्माकं कल्प्यं सिंहासनासनम् । इति तस्य वचः श्रुत्वा खिन्नोऽन्यासन्यवीविशत् ॥ ९० ॥
दिनानि कतिचित्तत्रावस्थाप्य गुरुसन्निधौ । प्राजीहयत् प्रधानौघैः[7] समं मुनिपतिं नृपः ॥ ९१ ॥
मोढेरकस्थितं[8] श्रीमत्सिद्धसेनमुनीश्वरम् । प्रणम्य प्रह्ववाणीभिरथ व्यज्ञपयन्नमी ॥ ९२ ॥

1 N °ऽभिषिच्यताम्; A ऽभिषिच्यत । 2 N विद्वान् । 3 A काममेवाममा° । 4 N उपदेशार्ति° । 5 B N वीजितुं । 6 A °सनासनी । 7 N प्रधानाद्यैः । 8 N °स्थिति ।

चकोरवदचन्द्रेऽभ्रे मराल इव पल्वले। वने मृगवदेकाकी स्तोकाम्भसि च मीनवत्॥ ९३॥
मयूर इव घर्मर्तौ[1] वर्षासु जलधिर्यथा। संग्रामे कातरो यद्वद् विद्वान् वैधेयमण्डले॥ ९४॥
चन्द्रवत् कृष्णपक्षान्तः[2] क्षीयते विरहातुरः। स्वामी नः प्रत्यहं पूज्या! अनेन मुद्गदा विना॥ ९५॥
—त्रिभिर्विशेषकम्।

आचार्यत्वे प्रतिष्ठाप्य [3]निष्ठाधिष्ठातृदैवतम्। अमुं प्रेषयतास्माभिः सह नः स्वामिनो मुदे॥ ९६॥ 5
अस्योपदेशतो जैनमन्दिर-प्रतिमादिभिः। निर्मितैः सुकृते राजा भवाब्धिं लंघयेद् यथा॥ ९७॥
श्रुत्वेति तत्पुरोऽवोचद् वाचंयमपतिस्तदा। चारित्राचारधौरेयः सुधामधुरया गिरा॥ ९८॥
रत्नदीपो यथागारे बाह्यान्तरतमोपहः। तेजस्वी निश्चलस्थेमा तथा वार्लर्पिरेप नः॥ ९९॥
भानुनाम्भोरुहं यद्वत् शशिनेव विभावरी। शिखण्डीव पयोदेन मन्त्री मुद्रां विना यथा॥ १००॥
स्तम्भेनेवोज्झितं गेहं देहं च प्राणधारिणाम्। म्लायत्येव मनोवृत्तिस्तथास्माकममुं विना॥ १०१॥—युग्मम्। 10
इत्याकर्ण्य प्रभोर्वाचं प्राहुः कृतधियोऽथ ते। सन्तः परोपकारार्थे नात्मार्तिं गणयन्ति यत्॥ १०२॥
तरवस्तरणेस्तापं स चाभ्रोल्लंघनक्रमम्। पाथोधिर्नौश्रमं सोढा वोढा कूर्मः क्षितेर्धुरम्॥ १०३॥
वारिदो वर्षणक्लेशं क्षितिर्विश्वासुमत्क्रमम्[4]। उपकाराद् ऋतेऽमीषां न फलं किंचिदीक्ष्यते॥ १०४॥—युग्मम्।
ततः प्रसादप्रावीण्यात् प्रेषयध्वं कृतीश्वरम्[5]। एवं कृत्वा प्रभुत्वेऽस्मत्स्वामिवाग्गिरेः पविम्[6]॥ १०५॥
तेषां निर्बन्धसम्बन्धादित्यभ्युपगते गुरुः। श्रीमन्तं संघमाहूय तत्प्रतिष्ठार्थमादिशत्॥ १०६॥ 15
अथोत्सवेच्छुभिः स्वच्छैः[7] श्रावकैर्गच्छवत्सलैः। सद्यः समग्रसामग्र्यां विहितायां जिनालये॥ १०७॥
लग्नेऽथ सौम्यषड्वर्गाधिष्ठितो परमाक्षरम्। सप्तग्रहबलोपेते श्रुतोक्तविधिपूर्वकम्॥ १०८॥
शिष्यस्य विश्वशिष्यस्य कर्णे चन्दनचर्चिते। गर्जत्सु तूर्यसंघातेष्वर्हत्तत्त्वं न्यवीविशत्॥ १०९॥
—त्रिभिर्विशेषकम्।

बप्पभट्टिस्ततः श्रीमानाचार्यः कोविदार्यमा। दुर्वादिसिंहशरभोऽभवद् विश्वस्य विश्रुतः॥ ११०॥ 20
अथानुशिष्टो विधिवद् गुरुभिर्ब्रह्मरक्षणे। तारुण्यं राजपूजा च वत्सानर्थद्वयं ह्यदः॥ १११॥
आत्मरक्षा तथा कार्या यथा न च्छल्यते भवान्। वामकामपिशाचेन यत्नं तत्र पुनःपुनः॥ ११२॥
भक्तं भक्तस्य लोकस्य विकृतीश्चाखिला अपि। आजन्म नैव भोक्ष्येऽहममुं नियममग्रहीत्॥ ११३॥
तुङ्गतूर्यध्वनिः श्राद्धाङ्गना[8]सङ्गीतमङ्गलः। गौरवाभ्यर्थितः संघेनाथ प्रायादुपाश्रये॥ ११४॥
एकादशाधिके तत्र जाते वर्षशताष्टके (८११)। विक्रमात् सोऽभवत्सूरिः कृष्णचैत्राष्टमीदिने॥११५॥ 25

§४. श्रीमद्राममहाभूपश्रेष्ठामात्योपरोधतः। अनिच्छतोऽपि संघस्य प्रैषीत् तैः सह तं गुरुः॥ ११६॥
प्रयाणैः प्रवणैः प्राप कन्यकुब्जपुरं ततः। प्रासुके वहिरुद्देशेऽवतस्थे स वनाश्रिते॥ ११७॥
उद्यानपालविज्ञप्तेः[9] परिज्ञाय समागतम्। मुनीशमवनीशोऽभूद् बद्धरोमाञ्चकञ्चुकः॥ ११८॥
ततः प्रत्यापणं हट्टशोभाशोभितरथ्यकम्। प्रतिगेहं प्रतिद्वारं बद्धवन्दनमालिकम्॥ ११९॥
उद्यद्धूपघटीधूमस्तोमैः कृष्णाभ्रविभ्रमम्। कुर्वाणमाहितोल्लोचैरेकच्छायं महीतलम्॥ १२०॥ 30
कश्मीरजद्रवैः सिक्तधरं काश्मीरभूमिवत्। नगरं नगभिद्रङ्गतुल्यं भूपतिरातनोत्॥ १२१॥
—त्रिभिर्विशेषकम्।

प्ररूढप्रौढसौहार्दवसुधाधीशसंस्तुतः। पुरं पौरपुरन्ध्रीभिराकुलाट्टालकं ततः॥ १२२॥

1 N घर्मार्तो। 2 N °पक्षान्ते। 3 N °धिष्ठान°। 4 °विश्वभरक्रमं। 5 B कृतीश्वरः। 6 A पविं; N पतिं। 7 N स्वस्थैः।
8 N श्रद्धांगना। 9 N B विज्ञप्ते।

प्रविवेश विशामीश इव सच्छत्रचामरः । अभ्रंलिहद्विपारूढो विबोढोपशमश्रियः ॥ १२३ ॥–युग्मम् ।
सौधे राजा ततः सिंहासने गन्द्रिका(कया ?)स्तृते[1] । उपावेशयदानन्दात् सुहृदं मुनिनायकम् ॥ १२४ ॥
प्रांशुप्रभावनोद्भूतरङ्गः संघः प्रभोरथ । परिचर्यां परां चक्रे वक्रेतरमनाः सदा ॥ १२५ ॥
शश्वद्राजसभायामपि निर्धूतकल्मषः । बप्पभट्टिः[2]प्रभुः श्रीमान् भूपाग्रे सुकृतं जगौ ॥ १२६ ॥
5 कल्याणपादपारामजलवाहजलप्लवः । धर्म एव निराधाराधारः[3] परपदप्रदः ॥ १२७ ॥
तस्यादौ प्रथितं दानं तच्च क्षेत्रेषु सप्तसु । तेषु च प्रथमं विद्धि सिद्धिकृज्जिनमन्दिरम् ॥ १२८ ॥
अपरं बिम्बनिर्माणमथ सिद्धान्तलेखनम् । चातुर्वर्ण्यस्य संघस्याभ्यर्चैतानि किल क्रमात् ॥ १२९ ॥
तदन्तरा च सर्वेषामाधारो जैनमन्दिरम् । जिनाः श्रुतधराश्चात्र[4] स्थिताः संघप्रबोधकाः ॥ १३० ॥
श्रीमतां सति सामर्थ्ये विधेयं विधिवच्च तत् । बहवो यत्प्रभावेन भव्याः सद्गतिमाप्नुयुः ॥ १३१ ॥
10 इति तद्वाक्यमाकर्ण्य प्रकर्णानां शिरोमणिः । अवोचदामभूपालः प्रालेयांशुस्फुरद्यशाः ॥ १३२ ॥
पृथ्वी देशः पुरं हर्म्यं तिथिर्मास ऋतुः समाः । धन्यान्येतानि भास्वन्ते यानि त्वद्देशनांशुभिः ॥ १३३ ॥
इत्युक्त्वाऽदात् तदादेशं भूमिलक्षणवेदिनाम्[5] । कोशकर्मनराध्यक्षपुंसां च श्रीजिनौकसे ॥१३४॥–युग्मम् ।
विश्वकर्मविदस्तत्र विश्वकर्मसु कर्मठाः । प्रारेभिरे महाभूत्या प्रासादं सुकृतोत्सवैः ॥ १३५ ॥
दिनैः कतिपयैः सैकशतहस्तोन्नतस्थितिः । प्रासादः परिनिष्पेदे सर्वलोकमुदा समम् ॥ १३६ ॥
15 पूर्णवर्णसुवर्णाष्टादशभारप्रमाणभूः । श्रीमतो वर्द्धमानस्य प्रभोरप्रतिमानभूः ॥ १३७ ॥
निरमाप्यत संप्राप्यागण्यपुण्यभरैर्जनैः । धार्मिकाणां संचरन्ती प्रतिमा प्रतिमानसम् ॥ १३८ ॥–युग्मम् ।
श्रीबप्पभट्टिरेतस्या निर्ममे निर्ममेश्वरः । प्रतिष्ठां स[6] प्रतिष्ठासुः परमं पदमात्मनः ॥ १३९ ॥
तथा गोपगिरौ लेप्यमयबिम्बयुतं नृपः । श्रीवीरमन्दिरं तत्र त्रयोविंशतिहस्तकम् ॥ १४० ॥
सपादलक्षसौवर्णटङ्कनिष्पन्नमण्डपम् । व्यधापयन्निजं राज्यमिव सन्मत्तवारणम् ॥ १४१ ॥–युग्मम् ।
20 एवमभ्यर्हितो राज्ञा गच्छन् सच्छत्रचामरः । राजकुञ्जरमारूढो मुख्यसिंहासनासनः ॥ १४२ ॥
मिथ्यात्वध्यामलाभोगान् लोकान् मत्सरपूरितान् । बप्पभट्टिप्रभुश्चक्रे वक्रेतरनरस्तुतः ॥१४३॥–युग्मम् ।
राजा पूज्यद्विजातीनां[7] संसर्गादनुवर्त्तकः । अन्यदान्यन्महीपालासनमाधत्त सूरये ॥ १४४ ॥
ततस्तदाशयं ज्ञात्वा विगताकारवैकृतः । जगाद प्रतिबोधाय तस्यागाधैकसत्त्वभृत् ॥ १४५ ॥
कृतप्राकृतसत्त्वानां मदादीनां जनद्विपाम् । दम्भस्तम्भादियुक्तानां कथं लक्ष्या भवादृशाः ॥ १४६ ॥
25 ततः यदुक्तं–

मर्दय मानमतंगजदर्पं विनयशरीरविनाशनसर्पम् ।
क्षीणो दर्पाद् दशवदनोऽपि यस्य न तुल्यो भुवने कोऽपि ॥ १४७ ॥

इत्याकर्ण्य गिरं धीरां बुद्ध्वा सूरिं व्यजिज्ञपत् । प्रभो! त्वद्वाक्यमश्रेमेंऽत्रलेपगरलं हृतम्[8] ॥ १४८ ॥
प्रभवः प्रभवः क्षेत्रे मम धान्यं हि सौहृदम् । स्वादतामत्र संपन्नभक्तपाकादिसंस्कृतम् ॥ १४९ ॥
30 § ५. अन्तःपुरेऽन्यदा म्लानवक्त्राभां वल्लभां तदा । राजा दृष्ट्वाह गाथार्धं स्वेच्छयेति प्रभोः पुरः ॥ १५० ॥

तद्यथा–

'अज्जवि सा परितप्पइ कमलमुही अत्तणो पमाएण ।'
सारसारस्वतोद्गारसिद्धयाथ गुरुर्गिरा ॥ १५१ ॥

---

1 N गद्दिकयास्तृते । 2 N बप्पभट्टिप्रभुः, C °भट्टिः प्रभुश्रीमान् । 3 B N °धाराधारं । 4 N °धरा यत्र । 5 A °वेदिना । 6 C N सुप्रति° । 7 N राजा प्रद्विजजातीनां । 8 N हृतम् ।

गाथोत्तरार्धमाचख्यौ सख्यौ स्नेहं वहन् नृतम्।
'सुत्तविउद्धेण[1] तए जौसे पच्छाइयं अंगं' ॥ १५२ ॥

इन्द्रेदिवचसा तुष्टः प्रशंसन् कविकर्म तत्। तस्थौ किञ्चिदिव भ्रान्तः पुनरभ्रान्तलोचनः ॥ १५३ ॥
नृपो निरुपमप्रेमनिधिः शमभृता सह। अन्यदा ददृशे देवीं संचरन्तीं[2] पदे पदे ॥ १५४ ॥
व्यथ्यमानामिव कापि मुखभङ्गविकारिणीम्। कृपापरिष्कृतस्वान्त[3] इव गाथार्धमब्रवीत् ॥ १५५ ॥ 5

तद् यथा–
'बाला चंकंमंती पए पए कीस[4] कुणइ मुहभंगं।'
ततः सत्यवचोवीचिबन्धुरं प्रावदत् प्रभुः ॥ १५६ ॥
असूनृतं न जल्पेत कल्पान्तेऽपि हि सिद्धवाक्।
'नूनं रमणपएसे मेहलया छिवइ नहपंती[5]' ॥ १५७ ॥ 10

श्रुत्वेति भूपतिः किंचित् सभ्रान्तो विकृतं मुखम्। चक्रे हिमोर्मिसंक्लिष्टसरोरुहमिवाद्युति ॥ १५८ ॥
इत्यालोक्य समुत्थाय प्रतिश्रयगतो मुनीन्। विहारहेतुं संवाह्य स्नेहमोहापराजितः ॥ १५९ ॥
काव्यमेतद् विलिख्याथ बहिर्द्वारकपाटयोः। श्रीसंघमप्यनापृच्छ्य निरगान्नगराद् बहिः ॥१६०॥–युग्मम्।

तद्यथा–
यामः स्वस्ति तवास्तु रोहणगिरेर्मत्तः स्थितिप्रच्युता 15
वर्तिष्यन्त इमे कथं कथमिति स्वप्नेऽपि मैवं कृथाः।
श्रीमंस्ते मणयो वयं यदि भवल्लब्धप्रतिष्ठास्तदा
ते शृङ्गारपरायणाः क्षितिभुजो मौलौ करिष्यन्ति नः ॥ १६१ ॥

§ ६. विनैः कतिपयैर्गौडदेशान्तर्विहरन् गुरुः। श्रीलक्षणावतीपुर्याः प्रापारामावनीतलम् ॥ १६२ ॥
तत्र वाक्पतिराजोऽस्ति श्रीधर्मक्ष्मापपर्षदि। विदुषां मौलिमाणिक्यं प्रबन्धकविरद्भुतः[6] ॥ १६३ ॥ 20
प्रभोरागमनं ज्ञात्वा जलदस्येव चन्द्रकी[7]। तदागमनगीर्भिः स भूपालं पर्यतोषयत् ॥ १६४ ॥
यशो वाग्देवता यस्य कविर्मे प्राच्यसंस्तुतः। स इहागात् प्रभोः पुण्यैर्बप्पभट्टिर्मुनीश्वरः ॥ १६५ ॥
ज्योत्स्नाप्रिय इवैणाङ्कोदयादेष विशांपतिः। अजल्पदुद्धुपद्रोमा विद्वन्मण्डलमण्डनम् ॥ १६६ ॥
विश्वकोविदकोटीरमेष जैनमुनीश्वरः। ध्रुवं यत्र[8] समभ्येति कृतपुण्यः स वासरः ॥ १६७ ॥–युग्मम्।
परं मेऽस्त्यामराजेन दुर्ग्रहो विग्रहाग्रहः। तदाह्वानाद् यदा पश्चाद् याति तन्मे तिरस्कृतिः ॥ १६८ ॥ 25
प्रष्टव्यस्तन्मुनिस्वामी स चेदागत्य मां नृपः। साक्षादापृच्छते[9] प्रस्थातव्यं तन्नान्यथा त्वया ॥ १६९ ॥
सुधीभिः कथितेऽर्थेऽस्मिन् सूरिणांगीकृते सति। तज्ज्ञात्वा धर्मभूपालः परमानन्दमाप्तवान् ॥ १७० ॥
आमराजप्रवेशाच्च सहस्रगुणितं ततः। प्रवेशोत्सवमाधत्त पुर्यामाचार्यभूपतेः ॥ १७१ ॥
धर्मभूपे तदा साक्षादिव धर्मे पुरःस्थिते। चक्रवर्ती सुधीवृन्दे प्रोचे वृत्तमिदं तदा ॥ १७२ ॥

तद् यथा*– 30
रुचिरचरणारक्ताः सक्ताः सदैव हि सद्गतौ
परमकवयः काम्याः सौम्या वयं धवलच्छदाः।

---

1 A विउद्धेण; B विउद्देण। 2 A B संचरंती। 3 A °स्वांग। 4 N चंकमती पए कीस°। 5 A नहपंती। 6 N कवि-स्सरः। 7 N चन्द्रिका। 8 A यत्रः। 9 N °दापृच्छयते। * केवलं A आदर्शे लभ्यते पदमिदम्।

गुणपरिचयोद्धर्षाः सम्यग्गुणातिशयस्पृशः
क्षितिप ! भवतोऽभ्यर्णं तूर्णं सुमानससंश्रिताः[1] ॥ १७३ ॥

तत्रापि काव्यवक्तृत्वलीलानन्दितपार्षदाः[2] । अवतस्थे सुखं सूरिर्दोगुन्दग इवामरः ॥ १७४ ॥
§७. तत्रश्चामनृपः प्रातरनायाते प्रभौ तदा । नगरान्तर्बहिर्ग्रामाकरादिष्वगवेषयत् ॥ १७५ ॥
5 अप्राप्तौ बालमित्रस्य पारवश्यं गतः शुचः । वैलक्ष्यमक्षतं भेजे च्यवनोन्मुखनाकिवत् ॥ १७६ ॥
अन्येद्युर्बहिरारामे गच्छन्नेकं ददर्श सः । बभ्रुं* बभ्रुं भुजङ्गेन हतं [3]चित्रीयितस्ततः ॥ १७७ ॥
अस्य मौलौ मणिं तत्रालुलोके सम्यगीक्षया । संस्तभ्य तुण्डमादत्त[4] फणीन्द्रमपमीर्नृपः ॥ १७८ ॥
तमाच्छायाथ संवृत्या संगृह्य निलये नृपः । आगत्य श्लोकशल्कं स जजल्प[5] विदुषां पुरः ॥ १७९ ॥

'शस्त्रं शास्त्रं कृषिर्विद्या अन्यो यो येन जीवति ।'

10 तैः पूरिता समस्येयमभिप्रायैर्निजैर्निजैः । विभेद हृदयं नैव तेषामेकोऽपि भूपतेः[6] ॥ १८० ॥
सस्मार भारतीपुत्रं बप्पभट्टिं तदा दृढम्[7] । मालतीकुसुमामोदमसौ रोलम्बबालवत् ॥ १८१ ॥
खद्योता इव चन्द्रस्य बालेया इव दन्तिनः । मम मित्रस्य विद्वांसः कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥ १८२ ॥
टंकलक्षं ददे हेम्नस्तस्य यः किल पूरयेत् । समस्यां मदभिप्रायात् प्रादात् पटहमीदृशम् ॥ १८३ ॥
अथो दुरोदराजीव एकः सर्वस्वनाशतः । श्रुत्वेति स धनोपायममुं श्लोकार्धमाददे ॥ १८४ ॥
15 ज्ञात्वा कुतोऽपि गौडेषु पुर्यां [8]तत्रागमच्च सः । बप्पभट्टिप्रभुं नत्वा कथयामास तत्पुरः ॥ १८५ ॥
अपराद्धं स चाह स्म क्लेशलेशं विना यतः । सरस्वतीप्रसादो हि विश्वक्लेशाब्धिकुम्भभूः ॥ १८६ ॥

तच्च—

'सुगृहीतं हि कर्तव्यं कृष्णसर्पमुखं यथा' ॥ १८७ ॥

नागावलोक इत्याख्यां [9]राज्ञस्तत्र प्रभुर्ददौ । ततः प्रभृत्यनेनापि नाम्ना विख्यातिमाप सः ॥ १८८ ॥
20 स द्यूतकृत् तदादायागमद् आमनृपाग्रतः । मुदा निवेदयामास तच्चमत्कारकारणम् ॥ १८९ ॥
केनापूरीति राज्ञा च पृष्टः प्रोवाच स प्रभो ! । श्रीबप्पभट्टिनेत्युक्ते ददौ तस्योचितं नृपः ॥ १९० ॥
विरहस्य विनोदायान्येद्युर्भूपो बहिर्ययौ । मृतं न्यग्रोधवृक्षस्य तले पान्थं ददर्श च[10] ॥ १९१ ॥
शाखायां लम्बमानां च तथा करकपत्रिकाम् । श्च्योतन्तीं विप्रुषां व्यूहं गाथार्धं लिखितं तथा ॥ १९२ ॥

तच्च—

25 'तइया मह निग्गमणे पियाइ थोरंसुएहिं जं रुन्नं ।'

प्राग्वत् तदपि नापूरि भूपालस्य मनोहरा[11] । केनापि विदुषा कोऽर्कं विना विश्वप्रकाशकः ॥ १९३ ॥
अस्यामलक्ष्यलक्ष्यायां समस्यायां स देवनी‡ । पुनर्ययौ च श्रीबप्पभट्टिपार्श्वेऽवदच्च ताम् ॥ १९४ ॥
स चानायासतो विद्वन्मौलिः प्रभुरपूरयत् । गृहीत्वा स पुनः प्रायादुत्तरार्धं नृपाग्रतः ॥ १९५ ॥

तच्च—

30 'करवत्तियविंदुनिवडणमिहेण तं अज्ज संभरिअं' ॥ १९६ ॥

अन्येन विदुषा केनचिद्ध्वन्येन तत्र तत् । सर्वं दृष्ट्वा दोधकार्धमभण्यत[12] यथामति ॥ १९७ ॥

---

1 N °संमिताः । 2 C N °पर्षदः; C °पार्षदं । * 'पिंगं नकुलं' इति C टिप्पणी । 3 A चिचित्रीयित° । 4 N °माचत्त । 5 N श्लोकशकलं जजल्प । 6 N भूपतिः । 7 N तदाहतम् । 8 N पुर्यंत आगमच्च । 9 N राज्ञे । 10 N सः । † 'स्थूराश्रुभिः' इति C टिप्पणी । 11 A B मनोहराम्; N मनोहरम् । ‡ 'द्यूतकृत्' इति C टिप्पणी । 12 N °मभाष्यत ।

तथा हि–

करवत्तयजलबिंदुआ[1] पंथिय हियइ निरुद्ध ।–पथिकोक्तिः ।
सा रोअंती संभरी नयरि ज मुंकी मुद्ध ॥ १९८ ॥–श्रीबप्पभट्टेरुक्तिः ।

इति पाठान्तरम् ।

राजा श्रुत्वेति दध्यौ च रसपुष्टिममूदृशीम् । मम मित्रं मुनिस्वामी कविर्भ्राति नापरः ॥ १९९ ॥ 5
प्रधानान् भूपतिः प्रैषीदाह्वानाय मुनीशितुः । तदुपालम्भगर्भाणि दोधकं वृत्तमार्यया ॥ २०० ॥
तेऽप्योपान्तं प्रभोराप्याप्राप्य विगतचेतनैः । वाचिकं कथयामासे कुशलप्रश्नपूर्वकम् ॥ २०१ ॥

तद्यथा–

छायह कारणि सिरि धरिअ पचि वि भूमि पडंति ।
पत्तहं इहु पत्तत्तणु वरतरु कांइं करंति ॥ २०२ ॥ 10
न गङ्गां गाङ्गेयं सुयुवतिकपोलस्थलगतं
न वा शुक्तिं मुक्तामणिरुरसिजास्वादरसिकः ।
न कोटीरारूढं स्मरति च सवित्रीं वसु भुवं
ततो मन्ये विश्वं स्वसुखनिरतं स्नेहविरतम् ॥ २०३ ॥
पांशुमलिनांघ्रिजंघः कार्पटिको म्लानमौलिमुखशोभः । 15
यद्यपि गुणरत्ननिधिस्तथापि पथिकः पथि वराकः ॥ २०४ ॥

इत्याकर्ण्य गुरुस्तेषां पुरः प्राह वचः स्थिरम् । सौहृदे दौर्हृदे वापि संसृजेन्मनसा मनः ॥ २०५ ॥
आमनाममहीभर्तुर्भवद्भिर्वाचिकं हि नः । निवेदनीयमार्यस्य दृढं गाथाकदम्बकम् ॥ २०६ ॥

तथा हि–

गय माणसु चंदणु[3] भमरु रयणायरु सिरि(ससि?)खंडु । 20
जड उच्छु य[4] बप्पभट्टि किउ सत्तय[5]गाहासंडु ॥ २०७ ॥
विंझेण विणा वि गया नरिंदभुवणेसु हुंति गारविया ।
विंझो न होइ अगओ गएहिं बहुएहिं वि गएहिं ॥ २०८ ॥
माणसरहिएहिं [6]सुहाइं जह न [7]लब्भंति रायहंसेहिं ।
तह तस्स वि तेहि[8] विणा तीरुच्छंगा न सोहंति ॥ २०९ ॥ 25
परिसेसियहंसउलं वि माणसं माणसं न संदेहो ।
अन्नत्थ वि जत्थ गया हंसा वि बया न भवंति ॥ २१० ॥
हंसा जहिं गय तहिं जि गय महिमंडणा हवंति ।
छेहउ ताहं महासरह जे हंसिहि मुच्चंति ॥ २११ ॥
मलओ सचंदणो च्चिय [9]नइमुहहीरंतचंदणदुमोहो । 30
पब्भट्ठं पि हु[10] मलयाओ चंदणं जायइ[11] महग्घं ॥ २१२ ॥
अग्घायन्ति महुयरा विमुक्ककमलायरा वि मयरंदं ।
कमलायरो वि[12] दिट्ठो भुओ व किं महुअरविहीणो ॥ २१३ ॥

---

1 A करवत्तजलबिंदुआं । 2 C गमिचय । 3 A चंदण । 4 A उच्छुय; C उच्छुय । 5 A B सत्तह । 6 A माणसरहिं ।
7 A न लब्भंति; C नब्भंति । 8 A तेण । 9 A नयमुह° । 10 A ह । 11 A जाइ । 12 A पि ।

एकेण कोत्थुहेणं विणावि रयणायरु च्चिय समुद्दो ।
कोत्थुहरयणं पि उरे जस्स ठिओ सो वि हु महग्घो ॥ २१४ ॥
खंडं विणा वि असंडमंडलो चेव पुण्णिमायंदो ।
हरसिरि[1]गयं पि सोहइ न नेय विमलं ससिक्खंडं ॥ २१५ ॥

5 तथा–

पईं मुक्काइ वि वरतरु फिट्टइ पत्तत्तणं न [2]पत्ताहं ।
तह पुण[3] छाया जइ होइ तारिसी तेहि पत्तेहिं ॥ २१६ ॥
जइ सव्वत्थ अह च्चिय उवरिं सुमणाणि सव्वरुक्खाणं ।
[4]वावे विवडंति गुणा पहुपत्तिय पावए कोडिं ॥ २१७ ॥

10 जे के वि पहू महिमंडलंमि ते उच्छुदंडसारिच्छा ।
सरसा जडाण मज्झे विरसा पत्तेसु दीसंति ॥ २१८ ॥
इय उज्जुयसीलालंकियाण पायपडिपवयणसोहाण ।
गुणवंतयाण पहुणो पहूण गुणवंतया दुलहा ॥ २१९ ॥

ततः–

15 अस्माभिर्यदि कार्यं वस्तदा धर्मस्य भूपतेः । सभायां छन्नमागत्य स्वयमापृच्छ्यतां द्रुतम् ॥ २२० ॥
जाते प्रतिज्ञानिर्वाहे यथा यामस्तवान्तिकम् । प्रधानाः प्रहिताः पूज्यैरिति शिक्षापुरस्सरम् ॥ २२१ ॥
कन्यकुब्जमहीनाथमुपाजग्मुश्च तेऽप्यथ । सम्यग् व्यज्ञपयन्[5] सूरेर्वचो माहात्म्यधाम तत् ॥ २२२ ॥
§ ८. अकुण्ठोत्कण्ठमानसैः करभैर्विगतारिभीः । गच्छन् गोदावरीतीरे ग्रामं[6] कंचिदवाप सः ॥ २२३ ॥
तस्य पर्यन्तभूपीठे खण्डदेवकुले तदा । चक्रे वासं कृतावासस्तद्देव्याश्चेतसि स्थितम्[7] ॥ २२४ ॥
20 निशीथे सा समागत्य रूपाक्षिप्ता नरेश्वरम् । बुभुजे प्रार्थनापूर्वं भाग्यं जागर्ति सर्वतः ॥ २२५ ॥
प्रातरुत्थाय सन्मित्रायत्तुक्केन तरंगितः । ययौ करभमारुह्यानापृच्छ्यैव तदाथ ताम् ॥ २२६ ॥
स प्राप प्रभुपादान्तं[8] प्रान्तं विरहरुक्शुचाम् । काव्यं जजल्प निर्वेदवह्निज्वालोपमं नृपः ॥ २२७ ॥

निद्राजागरणादिकृत्यनिवहे नित्यानुवृत्तिस्पृशां
स्वप्नेष्वप्यथ [9]योगिनां नयनवच्चेष्टासु सूक्ष्मास्वपि ।
25 तत्तादृक्[10] [11]स्वहृदामिवेह सुहृदां निष्ठेदृशी स्याद्यदा
मित्राशापरिहारमाचर ततश्चेतः प्रसीद प्रभो ! ॥ २२८ ॥

नृपो याथातथवचःप्रतीतोऽप्यथ कौतुकात् । गाथापरार्द्धमाचख्यौ पूर्वार्धं च गुरुस्ततः ॥ २२९ ॥

तद्यथा–

अज्जवि तं सुमरिज्जइ को नेहो एगराईए ।
30 गोलानईए खंडेउलमज्झे पहिअ जं न वसिओ सि ॥ २३० ॥

इत्युक्त्वा सूरिभिर्भूपो गाढं स परिषस्वजे । अविश्वास्यं मनस्तस्यान्तः प्रविश्येव वीक्षितुम् ॥ २३१ ॥
प्रकाममामभूपालस्तुष्टिं बिभ्रत्सवीक्षणे । इदं काव्यमुवाचाथ नाथः कविकुलेषु यः ॥ २३२ ॥

---

1 A सिर° । 2 A पत्ताह । 3 A पण । 4 B दावे; C वारे । 5 A विज्ञपयन् । 6 A ग्राममेकमवाप । 7 स्थिरम् ।
8 N पादानां । 9 A C स्वप्नेष्वप्ययोगिनां । 10 N तत्तद्वत् । 11 A B सुहृदा° ।

तद्यथा–

अङ्गैरुत्पुलकैः [1]प्रमोदसलिलप्रस्यन्दिभिर्लोचनै-
राकर्ण्योद्धुनसंकथास्तव सुधीभर्तुः प्रसन्नात्मनः।
सौजन्यामृतनिर्झरे सुमहति स्नातुं विपद्वारिधेः
पारं गन्तुमपारपौरुष! वयं त्वां द्रष्टुमभ्यागताः॥ २३३॥ 5

श्लोकं विचित्रबन्धेन लिलेख स खटीदलात्। कौतुकादामभूपालः शालिसौहार्दरञ्जितः॥ २३४॥

तथा हि–

अ ति अ ति अ न्म अ लं
प्री थ र थ ज थ प थ।
मे ला मे ला मे लं मे लं 10
फ स फ स फ स फ स॥ २३५॥

तं च गोमूत्रिकाबन्धं ज्ञात्वा गुरुरपि स्वयम्। वाचयामास लोपज्ञैरपि ज्ञातं परैर्नहि॥ २३६॥

तथा हि–

अद्य मे सफला प्रीतिरद्य मे सफला रतिः।
अद्य मे सफलं जन्म अद्य मे सफलं फलम्॥ २३७॥ 15

विद्वद्गोष्ठ्या विनिद्रं तं विश्रमय्य क्षपाक्षणे। प्रगेऽशङ्को नृपास्थानं सूरिः प्राप यथास्थितिः॥ २३८॥

आमराजोऽप्यथ श्रीमानभ्रच्छन्न इवांशुमान्। विशिष्टैः स्वार्थनिष्ठोऽगात् स स्थगीधरकैतवात्॥ २३९॥

आमविज्ञप्तिकां धर्मराजस्यादर्शयद् गुरुः। आगमिष्यद्वियोगाग्निज्वालामिव सुदुःसहाम्[2]॥ २४०॥

वाचयित्वा च तां पृष्टो दूतस्ते कीदृशो नृपः। स प्राहास्य स्थगीभर्तुस्तुल्यो देव! प्रबुध्यताम्॥ २४१॥

मातुलिंगं करे बिभ्रत् सैष पृष्टश्च सूरिणा। करे ते किं स चावादीद् 'बी ज उ रा" इति स्फुटम्॥ २४२॥ 20

दूतेन चाढकीपत्रे दर्शिते गुरुराह सः। स्थगीधरं पुरस्कृत्य 'तू अ रि प त्त' मित्ययम्॥ २४३॥

प्राकृतेनोत्तरं प्रादाच्छ्लेषेण ज्ञापनोपमम्[4]। अवबोधाय[5] यदृच्छा तु[6] धर्मस्यर्जुचेतसः॥ २४४॥

अथोवाच प्रधानश्च सूरिरेष श्लथादरः। अस्मास्विति प्रतिज्ञां य[7] दुस्तरां विदधे ध्रुवम्॥ २४५॥

विहितेऽत्रापि चेत् पूज्य आयाति [8]प्राज्यपुण्यतः।
अस्माभिः सह तद्देवाः प्रतुष्टा नो विचार्यताम्॥ २४६॥–युग्मम्। 25

यतः–

तत्ती सीअली मेलावा केहा,
धण उत्तावली प्रिय मंदसिणेहा।
विरहिहिं माणुसु[9] जं मरइ तसु कवण निहोरा,
कंनि पवित्तडी जणु जाणइ दोरा॥ २४७॥ 30

राज्ञोचे वस्तुकस्यास्य कीदृगर्थः प्रभुस्ततः। बप्पभट्टिर्नृपस्याग्रे व्याख्यात्[10] ख्यातधीनिधिः॥ २४८॥

तथाहि—एका लोहपिण्डी वह्निना तप्ता। अर्थात् ज्ञेया। एका शीतला। अनयोर्मीलकः संसर्गः कीदृशः। उभयोरपि तप्तयोरेव सम्बन्धो भवति। इत्यनेन किमुक्तम्–यद्वयं रणरणकतप्ताः, अयं च औदासीन्याज्जितें-

1 N प्रसाद°। 2 A C °दुःसहम्। 3 N द्विजराज°। 4 A ज्ञापनोत्तमम्। 5 A अवबोधये; B C अवबोधे। 6 A B नु। 7 N प्रतिज्ञाय दुःपूरां। 8 A प्राप्य°। 9 C माणुस। 10 N व्याख्यादाख्या°।

द्रियत्वान्निर्लोभत्वाच्च शीतस्तदस्माकमनेन सह कथं मीलक इति। तथा, धना देशीशब्देन पत्नी, सा उत्सुका; प्रियश्च मन्दस्नेहः। ततः कथं मीलको भवति। विरहेण यन्मानुषं म्रियते मृततुल्यं प्राणशेषं भवति, तस्य को निहोरक उपरोधः, तत्र कृतेऽपि न जीवति। मिलित एव प्रणयिनि जीवति। तथा कर्णे पविश्रिकेयं जनो जानाति दोरकं द्वित्रिगुणावलिततन्तुरूपं स्वगीधरस्येति वास्तवार्थः ॥ १ ॥

5 तथा — तप्तं तपस्तदिच्छतीत्येवं शीलस्तपश्चरणेच्छुः स तप्तंपी। तथा, अली भूषाप्रिय एको लक्षणया सकामः। 'नाकामी मंडनप्रियः' इति वचनात्। अनयोर्मीलकविषये का ईहा चेष्टा, किंतु न कापि। तथा उप्तं धनं यैस्ते धनोप्ताः, आहिताग्न्यादित्वात् क्तांतपरनिपातः, तेषामावली श्रेणिर्दानेश्वरसमूहस्तस्य प्रियो वल्लभः। दानेश्वराणां हि सत्पात्रेच्छा विशेषतो भवति। स चार्थादाचार्यः। स मन्दस्नेहो निर्मोह इत्यर्थः। तथा, विरहे विशिष्टैकान्ते तद्धेतोर्म्रियते, लक्षणया तदर्थं सन्तप्यत इत्यर्थः। तस्य का न होरा मुहूर्त्तरूपाः। स सर्वदा तस्य विरहे सन्तप्त

10 एवास्ते। स [2]क इति प्रश्नाध्याहारे, [3]कश्चि-कान्यकुब्जे, पवितडित्समानः-विद्युत्समस्तेजस्वी, जनो विद्वज्जनो मल्लक्षणः, स जानाति 'दो रा' द्वौ राजानौ। 'वास्तवेऽर्थे-द्वावेव राजानौ धर्म आमश्च विद्वत्प्रियाविति मच्चित्ते। गूढार्थस्तु-एतावता[5] राजन्! त्वया ज्ञेयम्, यद्गुरुप्रतिज्ञानिर्वाहाय आमोऽत्रायातोऽस्तीति द्वितीयोऽर्थः ॥ २ ॥

तथा — तप्तिः-सारा शीतला यत्र, श्लथ आदर इत्यर्थः। स तप्तिशीतलः। 'स्वराणां स्वराः प्रायोऽपभ्रंशे' इतीकारः। तत्र मीलकः कीदृशः। यतः-धनयुक्तावली, चमत्कारिकाव्यश्रेणिर्वल्लभा यस्य, अर्थादाचार्यः। सोऽस्मासु

15 मन्दस्नेहः। स उपरोधेन न गृह्यत इत्यर्थः। तथा, विरहे अर्थाद् विषयवियोगे सर्वसंगपरित्यागे सति योऽमरति मानुषः पुरुषः, देववत्सुखीभवति, तस्य कः स्नेहः सम्बन्धादिषु। निहोरक उपरोधः, स उपरोधेन न गृह्यत इत्यर्थः। करणप्रवृत्तिर्दानेश्वरत्वात्कर्णरीतिः। दोरा-दोषा राजते महाबाहुः स आम एव[6]। एवंविधमपि सूरिर्जनमिव प्राकृतमिव जानाति न किंचिदित्यर्थः ॥ ३ ॥

तथा — तत्त्वानि ईष्टे तत्त्वेशी, अत एव अली संगनिषेधी, तस्य मेलः संसर्गः तस्य अथोऽधास्थिः। 'स्वराणां

20 स्वरा' इत्याकारः। तथा, के ब्रह्मणि, ईहा चेष्टा, यस्य स केहः-परमब्रह्मेच्छः। दीर्घः प्राग्वत्। धनयुक्तानामावली श्रेणिः। प्रिया अमन्दस्नेहा अत्यर्थप्रीतिर्भवति। विगतरागेषु हि सर्वः प्रीतिमान्। धनवन्तोऽपि तत्रैव रतिं विदधति। तथा, विः पक्षी गरुडः, स रथो यस्य स विरथो-विष्णुस्तस्मिन्नर्थात् चित्तस्थे, यो म्रियते तस्य को निभः सदृशः। स च रा राजेव एवं भवति। गुरौ चित्तस्थे मृत्युरपि श्लाघ्यः। तथा, जह्नुनद्या गंगायाः सकाशात् का अन्या पवित्रा। अयमेव भगवान्[7] पूज्यः। तथा, 'दोरा' द्वौ राजानौ संगतौ यस्य स द्विराट्, सर्व-

25 सामर्थ्ययुक्तो भवानेव यदुचितं तद्विधेहीति चतुर्थोऽर्थः ॥ ४ ॥

॥ तत्तीसीभलीटीकायां ग्रंथाग्रं ३२; अ० ८ ॥

श्रीबप्पभट्टिना चैवमर्थानां साष्टकं शतम्। व्याख्यातं मतिमान्द्येन न जानीमो वयं पुनः ॥ २४९ ॥
तत उत्थाय रात्रौ च वारवेश्यागृहेऽवसत्। अमूल्यं कङ्कणं दत्वाऽस्याः प्रातर्निरगाद् गृहात् ॥ २५० ॥
द्वितीयं राजसौधस्य द्वारि त्यक्त्वा खरांशुरुक्[8]। इन्द्रकीले ययौ तस्माद् बहिरस्थाद् रहोवने ॥ २५१ ॥
30 ततः प्रातर्मुनिस्वामी संगत्य नृपतेः सभाम्। आपप्रच्छे नृपः कन्यकुब्जप्रस्थानहेतवे ॥ २५२ ॥
तेन पूर्णप्रतिज्ञायामज्ञातायां कथं त्विति। राज्ञा पृष्टः समाचख्यावाम भूप इहागमत् ॥ २५३ ॥
विद्वत्कथनतस्तेन कथितं यथदीदृशः। ज्ञायतां सैष एवेति 'दो रा' शब्दात् तथा पुनः ॥ २५४ ॥
द्वौ राजानौ इति स्पष्टं मातुलिंगस्य दर्शनात्। इदं किमिति पृष्टे च 'बी ज उ रा' त उत्तरात् ॥ २५५ ॥
तथा 'तू अ रि प त्तं' ति तवारिपत्रमित्यथ। संस्कृताद्भवतीत्येतत् तवाग्रे जगदे स्फुटम् ॥ २५६ ॥
35 ततो विप्रतिसारो*ऽस्य प्रससार प्रकर्षतः। धिगस्ति मम मूर्खत्वं न ज्ञातं कथितेऽपि यत् ॥ २५७ ॥
ततोऽवसर एतस्मिन् वारवामा प्रभोः पुरः। कङ्कणं मुमुचे रत्नरोचिरस्ततमस्ततिः ॥ २५८ ॥
क्षत्ताऽपरं समर्प्याथ भूपालाय व्यजिज्ञपत्। द्वारेन्द्रकीले केनापि मुक्तं नाथ! न वेद्म्यहम् ॥ २५९ ॥

---

1 N वा एतत्रार्थः। 2 N स वा इति। 3 N नास्ति 'कश्चि-'। 4 N वा एवाऽर्थे। 5 N नास्ति 'एतावता'। 6 N नास्ति 'एव'। 7 A भवान्। 8 N खरांशुरुक्। * 'पश्चात्तापः' इति C टिप्पणी।

यावत् पश्यति राजा तदामनामाथ दृष्टवान्। श्रीबप्पभट्टेरापृच्छय हेतुप्रत्यायकः प्रभुः ॥ २६० ॥
गृहागतो[1] नृपः शत्रुर्नार्चितो न च साधितः। द्विधापि चिरवैरस्य निर्वृत्तिर्न प्रवर्तिता ॥ २६१ ॥
तथा च विरहः पूज्यैरुपतस्थेऽतिदुःखदः। यावल्लभ्यं तु लभ्येत किं ब्रूमः सांप्रतं प्रभो! ॥ २६२ ॥
गुरुराह महाराज[2]! मा खेदोऽत्र विधीयताम्। हंसा इव वयं येनाप्रतिबद्धविहारिणः ॥ २६३ ॥
आम्रोऽसि महाबाहो[3] यामः स्वं नाम सार्थकम्। कुर्यान् यथा[3] परे लोका निर्मलाः स्युः सुहृत्तम! ॥२६४॥ 5

§ ९. इत्युक्त्वाऽसो निरीयागात् संगत्यामनृपेण च। करमीभिरमीपुंभिः सुरभिर्यशसा गुरुः ॥ २६५ ॥
मार्गे तदासनारूढः प्रभुणा सह संचरन्। पुलिन्दमेकं कासारे क्षिप्तास्यं वारिमध्यतः ॥ २६६ ॥
पिबन्तं च छगलवद्[4] दृष्ट्वा गुरुपुरस्तदा। आह प्राकृतकाव्यार्द्धमपूर्वेक्षासकौतुकः ॥ २६७ ॥

तथा हि–

पसु जेम पुलिंदउ पीअइ जलु पंथिउ कम्मणिहिं कारणिण[5]। 10

–इत्याकर्ण्य प्रभुः प्राहोत्तरार्द्धं तत्क्षणादपि ॥ २६८ ॥
विलम्बन्ते न काव्येषु सिद्धसारस्वताः क्वचित्।

तव–करयेवि करंयिय कज्जलिण मुद्धहि अंसुनिवारणिण ॥ २६९ ॥

प्रत्ययार्थं पुलीन्द्रश्च[6] समाकार्य स भूभुजा। पृष्टो लज्जानवास्योऽयं यथावृत्तमथावदत् ॥ २७० ॥
नाथ! प्रवसने युष्मद्वधूं सांत्वयतः सतः। सांजनाश्रुप्रमृष्टे[7] मेऽभूतां कज्जलितौ करौ ॥ २७१ ॥ 15
हर्षप्रकर्षमासाद्य वृत्तान्तेनामुना नृपः। सुरेन्द्र इव सौधर्मं द्राक् कन्याकुब्जमासदत् ॥ २७२ ॥
प्रविवेशोत्सवेनैष प्राच्यात्[8] सातिशयेन सः। कोटिकोटिगुणामर्चामकार्षीच्च गुरोस्तथा ॥ २७३ ॥

§ १०. इतश्च श्रीसिद्धसेनसूरयो जरसा भृशम्। आक्रान्ताः कृतकृत्यत्वात् सेच्छाः प्रायोपवेशने ॥२७४॥
बप्पभट्टेर्विधेयस्य विनेयस्य मुखाम्बुजम्। दिदृक्षवो मुनिं प्रैषुर्वृत्तं चाह्वानहेतवे ॥ २७५ ॥

तच्चेदम्– 20

सारीरं सयलं बलं विगलिअं दिट्ठी वि कट्ठेण मे
दड्ढव्वेसु पयट्टई परिगयप्पायं तहा आउगं।
पाणा पाहुणय व्व गन्तुमहुणा वट्टंति वंछा तुमं
मं दट्ठुं जइ अत्थि ता लहु लहु इज्जाहि निस्संसयं ॥ २७६ ॥

तं दृष्ट्वा बहुमानार्द्रो गुरौ द्रागाजगाम च। राजपुंभिः समं मोढेरके प्रभुपदान्तिके ॥ २७७ ॥ 25
प्रभोः स न्यासविन्यासं रुन्धन् प्रथमदर्शने। अतृप्तस्तस्य वात्सल्ये तेनासौ जल्पितः शमी ॥ २७८ ॥

तथा हि–

वपुः कुब्जीभूतं तनुरपि गुरोर्यष्टिशरणा
विशीर्णा दन्तालो श्रवणविकलं कर्णयुगलम्।
निरालोकं चक्षुस्तिमिरपटलध्यामलमहो 30
मनो मे निर्लज्जं तदपि विषयेभ्यः स्पृहयति ॥ २७९ ॥

ततो वत्स मतिस्वच्छ गच्छवात्सल्यतत्परः। भव त्वं [9]कुरु साहाय्यं प्रेत्य मे चानृणो भव ॥ २८० ॥

---

1 A गृहायातो। 2 A महाराज। 3 A कुर्यास्तथा। 4 C छगलक°। 5 C पसु जेम पुलिंदउ कम्मिहिं कारणिण। 6 N पुलिंदस्य। 7 A प्रमृष्टोर्मे°; B प्रमृष्टेमैभूं°; N प्रमृष्टो मा°। 8 N प्राच्याशाति°। 9 A गुरुसाहाय्यं।

..त आराधनां कृत्वा परलोकं समाधिना । ते[1] ययुर्गणशास्तिं[2] च चक्रेऽसौ राजपूजितः ॥ २८१ ॥
श्रीमद्गोविन्दसूरेः श्रीनन्नसूरेश्च स प्रभुः । बप्पभट्टिः[3] समर्प्याथ गच्छं संघं च सोद्यमः[4] ॥२८२॥
अनुज्ञाप्य क्षितिस्वामिप्रधानैरादृतैर्वृतः । पुनरप्यायययावामधाम निर्ग्रन्थनायकः ॥ २८३ ॥–युग्मम् ।

§ ११. सभासीनोऽन्यदा राज्ञः सूरिः प्रेक्षणकक्षणे । प्रवीणपुस्तिकाहस्तः पुंरूपेव सरस्वती ॥ २८४ ॥
द्विधाक्षरे* पदे स्यात्तुर्दृष्टिस्तत्क्लेशनाशिनी[5] । तदा कदाचिदाधासीन्नीलचण्डातके† दृशम् ॥२८५॥–युग्मम् ।
तं दृष्ट्वा भूपतिस्तत्र जातरागविकल्पतः । चित्ताभिसन्धिसम्बद्धां गाथामेनामचिन्तयत् ॥ २८६ ॥

तथा हि–

सिद्धंततंतपारंगयाण जोईण जोगजुत्ताणं ।
जइ ताणं पि मयच्छी जयंति[6] ता ति[7]च्चिय पमाणं ॥ २८७ ॥

अमूदृक्कार्यनिर्वाहज्ञानहेतुं ततस्तदा । स्नेहादेव निशि प्रैषीत् तां पुंवेषां तदाश्रये ॥ २८८ ॥
सा निलीना क्वचिद् भव्यगणे स्वस्थानगे ततः । रहः शुश्रूषितुं सूरिं प्रारेभे धैर्यभित्तये ॥ २८९ ॥
स्त्रीकरस्पर्शतो ज्ञात्वाऽत्रोपसर्गमुपस्थितम् । विममर्श नृपाज्ञानतमसश्चेष्टितं ध्रुवम् ॥ २९० ॥
स सज्जः [8]सज्जयसज्जमनोभूविजये ततः । अष्टाङ्गयोगसद्धर्मसंवर्म्मिततनुर्मुदा ॥ २९१ ॥
शुभध्यानाश्वमारूढः सन्तोषप्रक्षराश्रवम्[9] । दृढसंयमकोदण्डावष्टब्धतपआशुगः ॥ २९२ ॥
सद्बोधपुष्टिरिष्टिगीःशक्तिशक्तिस्फुरत्करः । अनास्थया समुत्तस्थावन्तरङ्गद्विपज्जये ॥२९३॥–त्रिभिर्विशेषकम् ।
अब्रवीद् ब्रूहि काऽत्र त्वं किमर्थं समुपस्थिता । [10]ब्रह्मवर्मवतामेषा स्यान्न भूमिर्भवादृशाम् ॥ २९४ ॥
अध्वन्येषु यथा व्याली हारहूरं[11] द्विजालये । पलं दर्शनशालासु हलं राजकुले यथा ॥ २९५ ॥
धर्मे प्राणवधो[12] यद्वद् वेदोच्चारे यथान्त्यजः । नालिकेरं कपौ[13] यद्वद् द्विके दधिफलं यथा ॥ २९६ ॥
चन्दने मक्षिका यद्वद् रामठं[14] कुङ्कुमे यथा । कर्पूरे लशुनो यद्वत् तथाऽत्र त्वं न चित्तहृत् ॥ २९७ ॥
–विशेषकम् ।
विश्वश्रोतःश्रवद्विस्र[15]जंबालकलुषाकृतौ । लज्जास्थाने[16]ऽवलादेहे रज्यन्ते[17] के कृमीन् विना ॥ २९८ ॥
श्रुत्वेति तानुवाचासौ नाहं [18]पूज्याभिलाषिणी । आययौ भवतो मार्गभ्रष्टान् बोधयितुं स्फुटम् ॥ २९९ ॥
संपत्संपत्तये दानधर्म्मे लोकोऽनुरुध्यते । ऐश्वर्याय तपस्तप्यं तच्च राज्यं विना नहि ॥ ३०० ॥
स्वर्भुवोरपि[19] तत्रापि सारं सारङ्गलोचना । यया विना नृदेवानामवकेशीव पुंजनुः[20] ॥ ३०१ ॥

उक्तञ्च–

राज्ये सारं वसुधा वसुन्धरायां पुरं पुरे सौधम् ।
सौधे तल्पं तल्पे वराङ्गनानङ्गसर्वस्वम् ॥ ३०२ ॥

जगत्पथि[21] न वर्तन्ते विपरीताग्रहग्रहाः[22] । अवाप्तवांछया प्राप्तं त्यज्यन्तो जनहास्यदाः ॥ ३०३ ॥
दुर्बुद्धिगृद्धितो दैवदण्डिता इव ते प्रभो ! । अवधारय पाखण्डखेदितो मा स्म भूर्जडः ॥ ३०४ ॥–युग्मम् ।
महाभक्त्याऽऽमराजेन[23] प्रेष्यहं प्राणवल्लभा । विज्ञा मनोहरप्रज्ञा गुणरक्तधराधिपा ॥ ३०५ ॥

---

1 N तं । 2 N गुणशास्ति । 3 N °भट्टि । 4 N सोद्यमं । * 'क्षरे मोक्षे काञ्च्यादिके च' इति C टिप्पणी । † 'कंचुके' इति C टि० । 5 A नाशने । 6 N मणिम्मि । 7 N B तच्चिय । 8 N ससज्ज सज्जयः । 9 N संतोषयक्षराक्षसम् । 10 N ब्रह्मचर्म्म° । 11 'मद्यं' इति C टि० । 12 A प्राणिवधो । 13 N पपौ । 14 'हिंगु' इति C टि० । 15 A °द्विष°; B C °विश्र° । 16 N लज्जनीये । 17 N रजन्त्येके । 18 N पूज्या° । 19 N स्वर्भुवोपि च । 20 B N पुंजनः । 21 N जगत्यपि । 22 N °ग्रहग्रहम् । 23 A महाराजेन ।

प्रभो ! [1]यद्गूत्रे बीभत्सरसन्यासवशा तनुः । अशुश्रूणाकदर्थ्याङ्गभूतामेव कुयोपिताम् ॥ ३०६ ॥
वयं निरन्तरावासकर्पूरादिमया इव । वेधसा विहिता अज्ञा[2] दौर्गन्ध्यादिकथास्वपि ॥ ३०७ ॥
ततो नाथेय[3] नाथ ! त्वां सफलीकुरु मामकम् । भोगाभोगं हि भोगेन भोगिन्या भोगिराडिव ॥ ३०८ ॥
ततः प्राक् सिष्मिये सूरिस्तद्वाग्भिर्न विसिष्मिये । उवाच च गिरं धीरां धैर्याधारधुरन्धरः ॥ ३०९ ॥
हैम्री पाञ्चालिका गिकान्तरालाशुचिपूरिता । वहिश्चन्दनचर्चादिभूपासुरभिरस्तु[4] किम् ॥ ३१० ॥
मलमूत्रादिपात्रेषु गात्रेषु मृगचक्षुषाम् । रतिं करोति को नाम सुधीर्वर्चोगृहेष्विव ॥ ३११ ॥

चक्षुः संवृणु वक्रवीक्षणपरं वक्षः समाच्छादय
रुन्द्धि स्फूर्जदनेकभङ्गिकुटिलं रम्योपचारं वचः ।
अन्ये ते नवनीतपिण्डसदृशा वश्या[5] भवन्ति स्त्रियां
मुग्धे ! किं परिखेदितेन वपुषा पाषाणकल्पा वयम् ॥ ३१२ ॥

इत्याकर्ण्याप्यकर्णेव न बुद्धा प्रत्युत प्रभोः । स्वभावकठिनौ हस्तौ स्वगात्रेऽपत्रपा [6]न्यधात् ॥ ३१३ ॥
ताभ्यां च [7]सर्गपत्राभ्यामिव सा स्पर्शयेत् ततः । स्मरकुञ्जरकुम्भाभौ मृदुस्पर्शावुरोरुहौ ॥ ३१४ ॥
ततः[8] शृङ्गारशिखरिखादिरांगारभारवत् । [9]निर्दम्भशोकदम्भेन पूत्कार मुनीश्वरः ॥ ३१५ ॥
किं किमित्यूचिपी वक्षोजाग्रात् पाणिं विकृष्य सः । अवाष्पगद्गदाव्यक्तवाचोवाच कथञ्चन ॥ ३१६ ॥
अमूल्यातुल्यवात्सल्यवर्द्धितास्मादृशाङ्गिनाम् । गुरूणां स्मारिता अद्य निजाङ्गस्पर्शतस्त्वया ॥ ३१७ ॥
तया[10] कथमिति प्रश्ने कृते प्राह पुनः प्रभुः । रात्रौ स्वाध्यायकृत्यानन्तरं[11] विश्रामणां प्रभोः ॥ ३१८ ॥
अहं व्यरचयं[12] सर्वकालं[13] सर्वाङ्गसंगिनीम् । कटीं विश्राम्य तत्प्रोथयुगलं च समस्पृशम् ॥ ३१९ ॥–युग्मम् ।
तदद्य स्मृतिमानीतं वृत्त-मार्दवसाम्यतः । यादृक् तव कुचद्वंद्वं तादृक् तदपि चाभवत् ॥ ३२० ॥
श्रुत्वेति सा परावृत्तरसा भग्नाशतानिधिः[14] । दध्यौ विधूतकामान्ध्या[15] किं मे कर्मोदयं ययौ ॥ ३२१ ॥
ग्रावा लोहं कथं वर्ज्यं दुर्भिदोऽयं सिताम्बरः । वह्निटंकादिभिर्भेद्यो ग्रावा लोहश्च वह्निना ॥ ३२२ ॥
कुवलीकोमलफलक्षोदाद्यैर्वज्रमप्यथ । भिद्येतानन्यसामान्यं काठिन्यं किञ्चिदस्य तु ॥ ३२३ ॥
घृतपिण्डसमास्तेऽन्ये[16] वह्निकुण्डसमासु ये । महेलासु विलीयन्ते सृष्टिरेषापरस्य तु[17] ॥ ३२४ ॥
वेधायमश्मकावस्य पुरः कर्मोर्मिकिङ्करौ । कर्म्माप्यस्माद्[18] बिभेतीव तीव्रमक्षव्रतस्पृशः ॥ ३२५ ॥
रसे विरसमाधत्त मत्काममपि भग्नवान् । तिरश्चकार मां यस्तु तेन दैवं हि जीयते ॥ ३२६ ॥
ध्यायन्तीति निद्रां सा मुनिद्रोहे गताग्रहा । निद्रा हि विश्वदुःखाप्तौ विश्रामादुपकारिणी ॥ ३२७ ॥
प्रगे जागरिताचार्यं पर्यङ्कासनसंस्थितम् । प्रणम्य प्राह नाहंयुरहं त्वद्विकृतौ कृतीन् ॥ ३२८ ॥
वीतरागः पुरा स्मेरस्मरमुख्यारिजित्वरः । आसीत् त्वद्वृत्ततः सत्यमिदं ख्यातिं ययौ किल ॥ ३२९ ॥
तदापृच्छे प्रसाद्याशु पृष्ठे हस्तं प्रदेहि मे । तव शापेन शक्रोऽपि [19]भ्रश्यत्यन्यस्य का कथा ॥ ३३० ॥
अथाह गुरुरज्ञानवागेषा ते वयं पुनः । रोषतोषभरातीता[20] अज्ञाः शापादिगीर्ष्वपि ॥ ३३१ ॥
*इति श्रुत्वा ययौ भूपसमीपं वरवर्णिनी । उवाच तद्गुणव्रातक्षणविद्रुतवैकृता ॥ ३३२ ॥
नाथ ! पाथःपतिं बाहुदण्डाभ्यां स तरत्यलम् । भिनत्ति च महाशैलं शिरसा तरसा रसात् ॥ ३३३ ॥
पदे[21]द्वं(?) वह्निमास्कन्देत् सुप्तं सिंहञ्च बोधयेत् । श्वेतभिक्षुं तव गुरुं य एनं हि विकारयेत् ॥ ३३४ ॥

---

1 A N प्रभोर्यद्गूत्रे । 2 A अन्या । 3 'प्रार्थये' इति C टि० । 4 N सुरभि वस्तु । 5 A मर्त्या । 6 N व्यधात् । 7 'सागपत्र' इति C टि० । 8 N नमः । 9 A निर्दंभः । 10 A C 'तथा' । 11 N कृत्यानंतरं । 12 A व्यचरयं । 13 A सर्वं कालं । 14 A °निधेः । 15 A कामांधा । 16 N समास्त्वन्ये । 17 N च । 18 N कर्मांप्यस्य । 19 A स्त्रस्यति°; N नश्यति । 20 A B N °भयभीता । * A आदर्शे नोपलभ्यते श्लोक एषः । 21 N यथेच्छ ।

इत्याकर्ण्याचलापालः[1] प्राप्तरोमाञ्चकञ्चुकः । स्वगुरोर्गुरुसत्त्वेन प्राह नृत्यन्मनोनटः ॥ ३३५ ॥
न्युञ्छने यामि वाक्याय दृग्भ्यां याम्यवतारणे । बलिर्विधीये सौहार्दहृद्याय हृदयाय च ॥ ३३६ ॥
असौ मही धराधारा देशः पुरमिदं मम । भाग्यसौभाग्यभृद् यत्र बप्पभट्टिप्रभुस्थितिः ॥ ३३७ ॥
—त्रिभिर्विशेषकम् ।

5 स्वक्षेत्रभ्रंशिनः[2] कामं कामादिभि[3]र्विमर्शतः[4] । परक्षेत्र[5]गतास्तत्र लालसत्वं[6] हि तत्यजुः ॥ ३३८ ॥
पशवोऽपि गजास्तस्मादहासीत् सर्वथा[7] तु[8] तान् । योऽस्मै गजवरेत्याख्या ततः ख्याताऽस्तु मद्गुरोः ॥३३९॥
ततो गजवरो ब्रह्मचारी च विरुदद्वयम् । तस्याभूद् भूत-सद्भाव-भाविवेतुः श्रुतागमात् ॥ ३४० ॥
तथा किं विदधे तत्र त्वया पृष्टेति साऽवदत् । कटाक्षक्षेपवक्षोजतत्करस्पर्शनादिभिः ॥ ३४१ ॥
अजातबोधका चैकं तदा दोधकमभ्रुवम् । तत्र प्रज्ञानुमानेन कवित्वं हि प्रसर्पति ॥ ३४२ ॥

10 तथा हि—

गयवरकेरइ सत्थरइ पायपसारिउसुत्त ।
निबोरी गुजरात जिम्व[9] नाह न केणइ भुत्त ॥ ३४३ ॥

एवं नृपादिभिः सत्यगुणकीर्तनतः स्तुतः । महाप्रभावप्रागल्भ्याद् बप्पभट्टिः प्रभुर्जयी ॥ ३४४ ॥

§ १२. प्राकारबाह्यमन्येद्यू राजा राजाध्वना चरन् । पश्चाद्दोकसि गेहस्येक्षांचक्रे हालिकप्रियाम् ॥ ३४५ ॥
15 पञ्चांगुलबृहत्पत्रसंवृतस्तनविस्तराम् । वृणुत्रवृतिरन्ध्रेणार्पयित्वा प्रियहस्तयोः ॥ ३४६ ॥
लवित्रं विस्मृतं पश्चात् प्रयान्तीं गृहमन्तरा । उरोजबिम्बाकाराणि बहिःपत्राणि वीक्ष्य च ॥ ३४७ ॥
गाथार्द्धं प्रोचिवान् कौतूहलाकृष्टमनःक्रमः । दृष्टिमेरण्ड उद्दण्डरकन्धे न्यस्यन् चलाचलाम् ॥ ३४८ ॥
—त्रिभिर्विशेषकम् ।

तद्य—वइविवरनिग्गयदलो एरंडो साहइ व तरुणाण ।
20 तत्प्रातः स्वगुरोरग्रेऽवदत्संसदि संस्थितः ॥ ३४९ ॥
उत्तरार्द्धमवादीच तस्यानुपदमेव सः ।
इत्थघरे हलियवहू इहहमित्तत्थणी वसई ॥ ३५० ॥

इति श्रुत्वा[10] यथादृष्टपूरकं प्रभुमस्तवीत् । सिद्धसारस्वतः कोऽपि कलौ नो मद्गुरुं[11] विना ॥ ३५१ ॥
सायमैक्षत सोऽन्येद्युरेकां प्रोषितभर्तृकाम् । यान्तीं वासालये वक्रग्रीवां दीपकरां तदा ॥ ३५२ ॥
25 उत्तरार्द्धं विधायात्र गाथायाः सुहृदः पुरः । प्रातराह ततोऽसौ च प्राग्दलं प्राह सत्वरम् ॥ ३५३ ॥

तथा हि—

पियसंभरणपलुट्टंतअंसुधारानिवायभीयाए ।
दिज्जइ वंकग्गीवाइ दीवओ पहियजायाए ॥ ३५४ ॥

इत्यनेकप्रबन्धाढ्यकाव्यगोष्ठीगरीयसा । कालः सुखेन याति स्म गुरु-राज्ञोः[12] कियानपि ॥ ३५५ ॥
30 § १३. श्रीधर्मभूधनोऽन्येद्युर्दूतं प्रेषितवानथ । श्रीमदामस्य वामस्य दुष्कृतानां सुधीनिधिः[13] ॥ ३५६ ॥
ततः स भूपमानम्य सभायामुचितासनः । सम्यग् व्यजिज्ञपत् सभ्यैर्विस्मितैर्वीक्षिताननः ॥ ३५७ ॥

---

1 N °र्व्यावनीपालः । 2 N °भ्रंषिनं । 3 N कामादितिवि° । 4 A विमर्षितः । 5 A °क्षेत्रे । 6 A लाभसत्वे । 7 C सर्वथा । 8 N तु । 9 A जिमु । 10 A श्रुत्वा । 11 N नामगुरुं । 12 N गुरो राज्ञः । 13 A C सुधीनिधि ।

मम [1]नाथः प्रभो ! तावकीनच्छेकत्वभङ्गिभिः । सन्तुष्टः स्पष्टमाह स्म सविस्मयमनःक्रमः ॥ ३५८ ॥
भवत्कोविद्कोटीररत्नश्रीबप्पभट्टिना । सत्यानृतकवित्वस्य व्याख्यानाच्छलिता वयम् ॥ ३५९ ॥
यदायातोऽपि गेहात्र आतिथ्यार्होऽपि नार्हितः । आमो[2] रामो धिया भूपोऽनुतापातिशयः स नः ॥ ३६० ॥
हृल्लेखाधायि वैदग्ध्यं साहसं वाक्पथातिगम् । वयं चमत्कृतेर्दृष्टास्तद्ददाम किमप्यहो ॥ ३६१ ॥
राज्ये नः सौगतो विद्वान् नाम्ना वर्द्धनकुञ्जरः । महावादी दृढप्रज्ञो [3]जितवादिशतोन्नतः ॥ ३६२ ॥　5
देशसन्धौ समागत्य वादमुद्रां करिष्यति । सभ्यैः सह वयं तत्र समेष्यामः कुतूहलात् ॥ ३६३ ॥–युग्मम् ।
यः कोऽपि भवतां वादकोविदः सोऽपि तत्र च[4] । आयातु सह विद्वद्भिर्घनाघन इवोन्नतः ॥ ३६४ ॥
तद्वाक्संग्राम एवास्तु यस्य वादी विजीयते । जित एवापरेणासौ किं हतैर्बहुशस्त्रिभिः ॥ ३६५ ॥
भुजे [5]वाचि च शौर्यं ते वादिनो [6]ऽप्यपराजिताः । यद्यसौ सौगताचार्यो महावादी विजीयते ॥ ३६६ ॥
तस्मिन् जिते जिता एवायाराबाहं त्वया वयम् । घृतपिण्ड इव स्यानम् उदके हिमनिश्चयः ॥ ३६७ ॥　10
इति श्रुत्वाऽऽमभूपाल ऊचे संदेशहारकम् । श्रीधर्मोऽनुचितं ब्रूयात् किं कदापि नराधिपः ॥ ३६८ ॥
परं किञ्चिदुपालभ्यमस्ति नाहं सतां हि यत् । अस्मिन्नवसरे वाच्यं प्रस्तावो दुर्लभो ध्रुवम् ॥ ३६९ ॥
विदुषः सुहृदस्तस्याकारणव्याजतो ध्रुवम् । आयाम मिलितुं तत्र स्फुटं [7]चास्माभिरौच्यत ॥ ३७० ॥
तत्र 'वी ज उ रा–दो रा' वाक्याभ्यां वंधुरीवितः[8] । द्वितीयो राडिव द्वौ च राजानाविति संस्कृतात्[9] ॥३७१॥
दर्शिते चाढकीपत्रे व्याख्याते[10] बप्पभट्टिना । इदं 'तू अ रि प त्तं' ते अरिपत्राख्यसंस्कृते ॥ ३७२ ॥　15
त्रिराख्यातेऽपि न ज्ञातं भिया[11] वा न स्फुटीकृतम् । न [12]विद्मस्तत् तृतीयेऽपि वचसि प्रकटे नयत् ॥ ३७३ ॥
एतत्प्रकाशितं यस्मादज्ञानात् पुंनपुंसकम् । [13]ज्ञापितस्त्वत्प्रभुस्ते च विशिष्टा[14] विदिताः किल ॥ ३७४ ॥
तथापि चेज्जिगीषाऽस्ति मयि तु त्वदधीशितुः । श्रद्धां ते पूरयिष्यामि भवत्वेतद् भवद्वचः ॥ ३७५ ॥
परं विजयिनो राज्ञः पराभूतक्ष्माभुजा । सप्ताङ्गमपि राज्यं स्वमर्पणीयमदर्पिना[15] ॥ ३७६ ॥
ईदृशं भवतः स्वामी [16]यदूरीकुरुते तदा । एवमस्त्वन्यथा[17] किं नः प्रयासेन फलं विना ॥ ३७७ ॥　20
इत्याकर्ण्यावदद् दूत आमेत्याख्या त्वया निजा । सत्या कृता विशांनाथ ! मतेरपरिपाकतः ॥ ३७८ ॥
जडोऽपि को न वेत्तीति कथिते किं पुनःपुनः । अपरोऽपि गृहायातं नृपं शत्रुमपि ध्रुवम् ॥ ३७९ ॥
योजयेदातिथेये न भवांस्तु प्रकटीकृतः । सत्कारायापि नाम स्वं सत्यापयति चेत्क्रिया ॥ ३८० ॥
पलायमानो वाह्यानां हस्त्यारूढो[18] विनश्यति । [19]तदस्माकं प्रभोर्नामवैतथ्यं जायते स्फुटम् ॥ ३८१ ॥
–त्रिभिर्विशेषकम् ।　25
निग्रहे[20]ऽपि स एवास्यादोषो राज्ञस्ततो नृप ! । विमृश्यकारिता तत्र सैवास्यैकाऽपराध्यति ॥ ३८२ ॥
क्षमाङ्गीवस्य तस्य त्वं जितेऽस्मद्वादिना ततः । [21]पुमानप्यपमानस्य पात्रं सर्वस्वनाशतः ॥ ३८३ ॥
माङ्गीकृतप्रसादस्य नास्त्येवास्य पराजयः । वादिनो विमृशातस्त्वमविमर्शो हि नाशकृत् ॥ ३८४ ॥
श्रुत्वेति बप्पभट्ट्यास्ये सहास्ये नृपवीक्षिते । मुनीशेन सदानन्दनिर्भरं जगदे वचः ॥ ३८५ ॥
को हि धर्मस्य नोत्कण्ठी पूर्वं परिचितस्य च[22] । यदि रागिग्रहो न स्यादस्य श्रेयोबहिष्कृतः ॥ ३८६ ॥　30
अनित्यैकग्रहे रक्ते भिक्षौ कृतजयाग्रहः । क्षणं[23] तदेव चेद्रागे जयो मोक्षस्ततः कुतः ॥ ३८७ ॥

---

1 A N नाथ । 2 C आमोरामो' । 3 N जितवादि° । 4 N वा । 5 'वाचो वाचिवशौर्येते' इति भ्रष्टपाठः N पुस्तके । 6 N ऽय । 7 N वा° । 8 A °रीरितः । 9 N °तान् । 10 N व्याहयातं । 11 N तया । 12 N नविग्रहु । 13 C स्थापित° । 14 A विशिष्टो । 15 N °दर्पिता । 16 N यदोरी° । 17 A पवनस्त्व°; N पवनास्त्वपथा । 18 C N हस्त्यारूढो । 19 N तसमस्त् । 20 N विग्रहे । 21 N पुमानथाप° । 22 N वा । 23 A N क्षणं ।

वैराग्य एव मुक्तिः स्यात् सर्वदर्शनसंमतम् । कार्य्या नात्राधृतिर्भिक्षुर्जेनो मे तत्कृतोन्नतिः ॥ ३८८ ॥
धर्म्मराजस्य सम्यक् कुविचारादिदमादृतम् । मदाश्रितो यतो वादस्तस्यैवोपकरिष्यति ॥ ३८९ ॥
कुत्राप्यवसरे तस्मादस्तु वाक्पूरतो[1] रणः । संमान्य प्रेषय प्रेष्ठपुमांसं[2] **धर्म्मभूपतेः** ॥ ३९० ॥
आमराजेन कृत्वैतत् प्रहितः समयं[3] भुवम् । व्यवस्थाप्य जगामासौ प्रोचे तत्स्वामिनः पुरः ॥ ३९१ ॥
5 § १४. वाग्विग्रहाय वादीन्द्रं राजा[4] **वर्द्धनकुञ्जरम्** । **धर्मः**[5] संवाहयामास गीष्पतिं वासवो यथा ॥३९२॥
चतुर्दिगन्तविश्रान्तकीर्त्तयः सुहृदस्ततः । आहूयाभ्यर्च्य सभ्यत्वे वादेऽस्मिन् विहिता मुदा ॥ ३९३ ॥
परमारमहावंशसम्भूतः क्षत्रियामणीः । तस्य **वाक्पतिराजो**ऽस्ति विद्वान् निरुपमप्रभः ॥ ३९४ ॥
पूर्वं परिचितश्चासौ **बप्पभट्टि**प्रभोस्ततः । तस्य वाग्मर्मविज्ञानहेतो संवाहितो मुदा ॥ ३९५ ॥
व्यवस्थितदिने प्राप प्रदेशं देशसन्धिगम् । [6]सभाधीशमहासभ्यैः समं **वर्द्धनकुञ्जरः** ॥ ३९६ ॥
10 **कन्यकुब्जा**दपि **श्रीमानाम**ः कामं[7] सुधीनिधिः । **श्रीबप्पभट्टि**ना विद्वद्वृन्दसन्निधिना समम्[8] ॥३९७॥
भुवं तामेव संप्रापातपत्राच्छादिताम्बरः । आवासान् स्वःपुराभासान्[9] दत्वात्रस्थितवानथ ॥ ३९८ ॥–युग्मम् ।
आजन्म सर्वदा दृष्टशस्त्राशस्त्रिश्लथादरः । अदृष्टपूर्ववाग्युद्धप्रेक्षायै सकुतूहलः ॥ ३९९ ॥
अहंपूर्विकया सिद्ध-विद्याधरसुरव्रजः । समेतश्चाप्सरोवर्गैः स्वर्गवद्गगनाङ्गणे ॥ ४०० ॥
कौतुकाकृष्टचेतोभी राजसभ्यैर्बहुश्रुतैः । ईयतुः सङ्गतौ तत्र तौ वादि-प्रतिवादिनौ ॥ ४०१ ॥
15 उपविष्टेषु सभ्येषु श्रुत्यधीनमनस्सु च । स्तिमितात्र[10] सभा साऽभूदालेख्यलिखिता किल ॥ ४०२ ॥
निजं निजं नराधीशमाशिषाभिर्ननन्दतुः । स्वस्वागमाविरोधेन सभ्यानुमतिपूर्वकम् ॥ ४०३ ॥
ततः श्रीसौगताचार्य्यः पूर्वं **वर्द्धनकुञ्जरः** । आशीर्वादमुदाजह्रे व्यथकं द्वेषिपर्षदाम्[11] ॥ ४०४ ॥

तथा हि–

शर्म्मणे सौगतो धर्म्मः पश्य वाचंयमेन यः ।
20 **आदृतः साधयन् विश्वं क्षणक्षणविनश्वरम् ॥ ४०५ ॥**

अथ श्वेतांबराचार्य्यो **बप्पभट्टिः** सुधीपतिः । अभ्यधत्ताशिषं स्वीयां भूपालाय यथा तथा ॥ ४०६ ॥

अर्हन् शर्म्मोन्नतिं देयान्नित्यानन्दपदास्थितः[12] ।
यद्वाचा विजिता मिथ्यावादा एकान्तमानिनः ॥ ४०७ ॥

उभयोराशिषः श्लोकौ निरूचुः पार्षदास्तदा । असौ धर्म्मो गतः सम्यग् यमिता गीश्च वादिभिः ॥ ४०८ ॥
25 क्षणभङ्गि जगद्योक्तं भङ्गस्यैवानया गिरा । सौगतस्यानुमीयेत वाग्देवी सत्यवादिनी ॥ ४०९ ॥
नित्यानन्दपदश्रीदो देव एकान्तविग्रही । मिथ्यावादविजेत्री गीः श्वेतभिक्षोस्ततो जयः ॥ ४१० ॥
इति निश्चित्य ते तस्थुर्यावन्मौने सभासदः[13] । तावन् कस्तूरिकां हस्ते कृत्वा बौद्धोऽब्रवीदिदम् ॥ ४११ ॥
'कसु तूरी उपगंरइ' प्रोक्ते प्राकृत[14] ऊचिवान् । आचार्य उपकर्त्रीयं रजकस्येति[15] विद्यताम् ॥ ४१२ ॥
इति तत्प्रश्नसङ्कुतादुत्तरेणाधरीकृते । तावद् रक्ताम्बरः सर्वानुमतः पक्षमब्रवीत् ॥ ४१३ ॥
30 सर्वानुवादेनानूद्य ततस्तत्पक्षदूषकान् । उदाजहार व्याहारान् प्रामाणिकपतिर्मुनिः ॥ ४१४ ॥
उत्तरादुत्तरं चैवमुक्ति-प्रत्युक्तिरीतितः । षट् व्यतीयुस्तदा मासास्तयोर्विवदमानयोः ॥ ४१५ ॥
श्रीमानामनृपोऽन्येद्युरूचे सूरिं कदा प्रभो ! । व्याघातो[16] राजकार्याणां वादः संपूरयिष्यते ॥ ४१६ ॥

---

1 A वाक्यरतो । 2 A B प्रष्ठपुंमांसं । 3 N समयो । 4 N वादीन्द्रराजवर्द्धन° । 5 N धर्म । 6 N समाधीश° । 7 N काम° । 8 C सभम् । 9 N स्वःपुरापे । 10 A °ता तत्र । 11 B C पर्षदां । 12 A °स्थितं । 13 A सदं सदः । 14 A नास्ति 'प्राकृत' । 15 A रजस्येति । 16 B व्यापातो ।

तत आह तदाचार्यो वाग्विनोदसुखाय यः । इयत्कालं हि नास्त्रेतस्यासीदिति कृतिप्रभो ! ॥ ४१७ ॥
बाधाविधायी[1] यद्येप[2] भवतस्तद् विलोकय । प्रभाते निग्रहीष्यामि विद्वन्मन्यं हि भिक्षुकम् ॥ ४१८ ॥
प्राग्दत्तं गुरुभिर्मन्त्रं परावर्त्तयतः[3] सतः । मध्यरात्रे[4] गिरां देवी स्वर्गङ्गावेणिमध्यतः ॥ ४१९ ॥
स्नान्ती तादृशरूपा च प्रादुरासीद् गृहस्तदा । अहो मन्त्रस्य माहात्म्यं यद्देव्यपि विचेतना ॥ ४२० ॥—युग्मम् ।
अनावृतशरीरां च सकृदीपद् ददर्श ताम् । सूरिः सूर्य्यादिवास्यं च परावर्तयति स्म सः ॥ ४२१ ॥ 5
स्वं रूपं विस्मरन्ती च प्राह वत्स ! कथं मुखम् । विवर्त्तसे भवन्मन्त्रजापात् तुष्टाहमागता ॥ ४२२ ॥
वरं वृणिष्वेति तत्रोक्तो बप्पभट्टिरुवाच च । मातर् ! विसदृशं रूपं कथं वीक्षे तवेदृशम् ॥ ४२३ ॥
स्वां तनुं पश्य निर्वस्त्रामित्युक्ते स्वं ददर्श सा । अहो निबिडमेतस्य ब्रह्मव्रतमिति स्फुटम् ॥ ४२४ ॥
वीक्ष्य मामीदृशीं यन्न चेतोऽस्य विकृतिं ययौ । ध्यायन्तीति दृढं तोषात् तत्पुरः समुपस्थिता ॥—युग्मम् ।
वरेऽपि निस्पृहे त्वत्र दृढं चित्रादुवाच च । गत्यागत्योर्मम स्वेच्छा त्वदीया निर्वृतो भव ॥ ४२६ ॥ 10
ततः सूरिर्गिरां देवीं तुष्टुवे सुप्रवाग्भरैः । वृत्तैर'ध रि ते त्या'द्यै[5]श्चतुर्दशभिरद्भुतैः ॥ ४२७ ॥
इमां स्तुतिं सुवर्णाढ्यां कर्णकुण्डलरूपिणीम् । मानयन्त्यतिसन्तोषाद् भारती[6] वाचमूचुषी[7] ॥ ४२८ ॥
वत्स ! किं पृच्छसीत्युक्ते सूरिरूचे विवादसौ । सत्यं प्रज्ञाबलाज्जल्पेद्, विज्ञानमथ किञ्चन ? ॥ ४२९ ॥
देवी प्राहामुना सप्तभवा[8]नाराधिताऽस्म्यहम् । प्रदत्ता गुटिकाक्षय्यवचनाऽस्य मया ततः ॥ ४३० ॥
तत्प्रभावाद् वचो नास्य हीयते यतिनायक ! । सोपालम्भमिवाहासौ सूरिः श्रीश्रुतदेवताम् ॥ ४३१ ॥ 15
पुष्णासि प्रत्यनीकं किं शासनस्य जिनेशितुः । सम्यग्दृष्टिः पुराम्नायात् शुश्रुवे भवती ननु ॥ ४३२ ॥
सरस्वती पुनः प्राह नाहं[9] जैनविरोधिनी । उपायं तेऽर्पयिष्यामि यथासौ जीयते बुधः ॥ ४३३ ॥
सर्वेऽपि मुखशौचं ते विधाप्याः[10] पार्षदादयः । ततोऽस्य कार्य्यमाणस्य गण्डूषं मुञ्चतो मुखात् ॥ ४३४ ॥
भ्रष्टा चेद् गुटिकाऽवश्यं युष्माभिर्जितमेव तत् । चतुर्दशं पुनर्वृत्तं न प्रकाश्यं कदापि हि ॥ ४३५ ॥
यतस्तत्र श्रुते साक्षाद् भवितव्यं मया ध्रुवम् । कियतां हि प्रसीदामि निष्पुण्यानां मुनीश्वर ! ॥ ४३६ ॥ 20
इत्युक्त्वाऽन्तर्दधे देवी सूरिश्छन्नं जगौ पुरः । विश्ववाक्पतिराजस्य यदादिष्टं गिरा तदा ॥ ४३७ ॥
इत्यङ्गीकृत्य तेनाथ करकं नीरपूरितम् । समानाय्य सभा सर्वा वक्त्रशुद्धिं व्यधाप्यत[11] ॥ ४३८ ॥
तत्कुर्वतोऽथ तस्यापि गुटिका पतिता मुखात् । भिक्षोरास्यजलैर्नुन्ना श्रीरिवापुण्यकर्मणः ॥ ४३९ ॥
अविश्रान्तमिथोवादाध्वन्यऽध्वन्यतया ततः । श्रान्ता विश्राममिच्छन्ती मूकस्येवास्य गीः स्थिता ॥४४०॥
सदस्याश्च वचः प्रोचुर्गुटिकैव वचःक्षमा । अनेडमूक एवायं भिक्षुरन्वर्थनामभूः ॥ ४४१ ॥ 25
जिग्ये श्रीबप्पभट्टिस्तं वादिकुञ्जरकेसरी । बिरुदं घुघुषे राज्ञा जज्ञे जयजयारवः ॥ ४४२ ॥
धर्मराज्यं गृहीतुं च स्वबलात् सार्द्धवैभवम् । तदाम उपचक्राम स्वं पणं कस्त्यजेज्जयी ॥ ४४३ ॥
उवाचाथ गुरुस्तस्य यदुक्तं च पुरः पुरा । यद्राज्येन पणं चक्रे धर्म्मभूपोऽधिकृत्य नः ॥ ४४४ ॥
तत्तस्यैवोपकाराय[12] भविष्यति कदाचन । तदस्य वचसः कालो नृपनाथ ! समाययौ ॥ ४४५ ॥
इयं प्रमाणशास्त्राणां मुद्रा यल्लिखिते ततः । सम्बन्धे निग्रहो नैव यत्पराजय एव सः ॥ ४४६ ॥ 30
अस्य राज्यं तदस्यैव सन्तिष्ठतु यथास्थितम् । अनित्यभवहेतोः कः शास्त्रमुद्रां विलुम्पति ॥ ४४७ ॥
गुरुभक्त्याभिरामोऽयमामोऽनिच्छुर्बलादपि । धर्मे धर्मश्रितो राज्यमनुमेने प्रसादतः ॥ ४४८ ॥
तत आश्लिष्य बौद्धं तं सूरिर्वर्द्धनकुञ्जरम् । तदासन्ने गोपगिरौ श्रीवीरभवनेऽनयत् ॥ ४४९ ॥

1 N व्यधायि । 2 N यद्येषा । 3 N °वर्तयतस्ततः । 4 A मध्ये रात्रेः । 5 A वृत्तैरधिष्ठितैद्यै° । 6 A भारतीं । 7 A °मूचुषीं । 8 N सप्तवारा° । 9 N माहं । 10 N विधाव श्रीपा° । 11 N व्यधीवत । 12 N °वाधिकारव ।

श्रीमहावीरबिम्बं स विलोक्य हृदि हर्षितः । 'शान्तो वेष' इति स्तोत्रं चक्रे प्रमुदितस्तदा ॥ ४५० ॥
एवं स्तुत्वा जिनं स्वात्मनिन्दके सौगतप्रभौ । सूरिर्जैनरहस्यानि तस्य प्रादर्शयत् पुरः ॥ ४५१ ॥
मिथ्यात्वगरलं हृत्वा पीयूषामलगीर्भरैः । परीक्षापूर्वमस्यापि तच्चित्ते धर्म आर्हतः ॥ ४५२ ॥
निद्राविद्राणचैतन्ये[1] निशायामन्यदा गुरौ । प्रतिप्रहरमाह स्म ताथागतयतीश्वरः ॥ ४५३ ॥
5 चतुरक्षरनिष्पन्नं समस्यानां चतुष्टयम् । स चोत्स्वप्नायितेनेवापूरयत् सूरिपुङ्गवः ॥ ४५४ ॥
मन्दाक्रान्तापदैर्मन्दाक्रान्तिक्षुण्णान्यतीर्थिकः । अपूरमपरैः सर्वप्रयत्नेनापि वाग्मिभिः ॥ ४५५ ॥–युग्मम् ।
'एको गोत्रे' [१] 'सर्वस्य द्वे' [२] 'स्त्रीपुंवच्च' [३] 'वृद्धो यूना' [४] समस्याः–

'एको गोत्रे' स भवति पुमान् यः कुटुम्बं बिभर्ति
'सर्वस्य द्वे' सुगति-कुगती पूर्वजन्मानुबद्धे ।
10 'स्त्री पुंवच्च' प्रभवति यदा तद्धि गेहं विनष्टम्
'वृद्धो यूना' सह परिचयात्त्यज्यते कामिनीभिः ॥ ४५६ ॥

सम्यक्त्वं ग्राहितः सोऽथ द्वादशव्रतशोभितम् । आश्लेषपूर्वमापृच्छ्य स्वं स्थानं प्रययौ ततः ॥ ४५७ ॥
पूर्ववैरपरीहारात् संगतौ सोदराविव । अन्योऽन्यप्राभृतैस्तुष्टौ पुरं स्वं स्वं गतौ नृपौ ॥ ४५८ ॥
§ १५. अन्यदा रहसि प्राह धर्मभूपं स सौगतः । विजिग्ये बप्पभट्टिर्मां न तत् क्षूणं मनस्यपि ॥ ४५९ ॥
15 यतो वाग्देवता तस्य यथोदितविधायिनी । स्वयं वदति तद्देहे स्वप्ने जाग्रति चास्थिता ॥ ४६० ॥
परं वाक्पतिराजेन त्वद्राज्यपरिभोगिणा । अस्मास्वपकृतं भूरि मुखशौचविधापनात् ॥ ४६१ ॥
इति श्रुत्वापि बौद्धे स छलवादात् स्थादरः । सोऽहं वाक्पतिराजे च गुणगृह्ये मुमोच न ॥४६२॥
यशोवर्मनृपो धर्ममन्यदा चाभ्यषेणयत् । तस्माद् द्विगुणतत्रस्तं भूपं युद्धेऽवधीद् बली ॥ ४६३ ॥
तदा वाक्पतिराजश्च बंदे तेन निवेशितः । काव्यं गौडवधं कृत्वा तस्माच्च स्वममोचयत् ॥ ४६४ ॥
20 कन्यकुब्जे समागत्य संगतो बप्पभट्टिना । स राजसंसदं नीतस्तुष्टुवे चेति भूपतिम् ॥ ४६५ ॥

तथा हि–

कूर्मः पादोऽत्र यष्टिर्भुजगतनुलता भाजनं भूतधात्री
तैलोत्पूरः समुद्रः कनकगिरिरयं वृत्तवर्त्तिप्ररोहः ।
अर्चिश्चण्डांशुरोचिर्गगनमलिनिमा कज्जलं दह्यमाना
25 शत्रुश्रेणी पतंगो ज्वलतु नरपते ! त्वत्प्रतापप्रदीपः ॥ ४६६ ॥
चटचटिति चर्म्मणि च्छमिति चोच्छलच्छोणिते
धगद्धगिति मेदसि स्फुटरवोऽस्थिषु ष्वाकृतिः ।
पुनातु भवतो हरेरमरवैरिनाथोरसि
क्वणत्करजपञ्जरक्रकचकापजन्मानलः ॥ ४६७ ॥
30 पृथुरसि गुणैः कीर्त्या रामो नलो भरतो भवान्
महति समरे शत्रुघ्नस्त्वं सदैव युधिष्ठिरः ।

1 A °चैतन्यैः । 2 A तस्य । 3 A मुच्यते । 4 N वा । 5 A °वादाश्चादरः । [illegible]
8 N तस्माद्विगुणितं दत्तं । 9 N पादो च । 10 A च्छमच्छमिति । 11 N चोच्छलिते शोणि[illegible] । 1[illegible] [illegible]स्थिषु ष्वाकृतिः ।
13 A महति ।

इति सुचरितैः ख्यातिं बिभ्रचिरन्तनभूभृतां
कथमसि न मान्धाता देवस्त्रिलोकविजय्यपि ॥ ४६८ ॥

सन्मानातिशयो राज्ञा विदधे तस्य भूभृतः[2]। गङ्गां गेहागतां को हि पूजयेदलसोऽपि न ॥ ४६९ ॥
मन्यते कृतकृत्यं स्वं स्वर्गनाथोऽपि वाक्पतिम्। प्राप्य वाक्पतिराजं तु नाधिकोऽस्य किमस्त्यतः ॥ ४७० ॥
त्यागाद् धर्मस्य माकार्षीर्मनस्यनुशयं सखे!। यद्गेहागतमत्पूजानाधानात् सोऽयमस्थितिः ॥ ४७१ ॥ 5
तवाधीनमिदं राज्यं विचिन्त्यं[3] सुखमास्व तत्। श्रीबप्पभट्टेर्मम च तृतीयस्त्वं महामते!॥ ४७२ ॥
इत्यामराजव्याहारामृतसारपरिप्लुतः। गङ्गोदक इव स्नातः प्रीतिपाविस्मयमाप सः ॥ ४७३ ॥
सहैवोत्थाय तत्रासौ नृपमित्रेण सूरिणा। उपाश्रयमनुप्राप्यातिष्ठत् परमया मुदा ॥ ४७४ ॥
'गौडवधो'[4] 'महुमहविजय'श्चेति तेन च। कृता वाक्पतिराजेन द्विशास्त्री कवितानिधिः[5] ॥ ४७५ ॥
बौद्धकारिततद्वेषापोषके धर्मभूपतौ। सर्वत्र गुणिनः पूज्या गुरुरित्याह तत्पुरः ॥ ४७६ ॥ 10
वृत्तौ कृतं हेमटंकलक्षं तद्द्विगुणीकृतम्। नृपेणासौ महासौख्यात् कालं गमयति स्म सः ॥४७७॥–युग्मम्।

§ १६. सभायामन्यदा राजा सुखासीनं गुरुं प्रति। प्राह न त्वत्समो विद्वान् स्वर्गेऽपि किमु भूतले ॥४७८॥
गुरुराह पुराऽभूवन् पूर्वं ते जैनशासने। श्रुतज्ञानमहाम्भोधेर्यत्प्रज्ञा पारदृश्वरी ॥ ४७९ ॥
शतं सहस्रं लक्षं वा पदानामेकतः पदात्। 'अधिगच्छन्ति विद्वांसोऽभूवन् केऽप्य[6]धिका अपि ॥४८० ॥
ऐदंयुगीनकालेऽपि सन्ति प्रज्ञाबलाद्भुताः। येषामहं न चाप्नोमि पादरेणुतुलामपि ॥ ४८१ ॥ 15
अस्मदीयगुरोः शिष्यौ खेटकाधारमंडले। विद्येते नन्नसूरिः श्रीगोविंदसूरिरित्यपि ॥ ४८२ ॥
यत्पुरो बठरत्वेन तत्र स्थितिमनिच्छतः। शृङ्गाराय भवत्सख्यं विदेशायस्थितेर्मम ॥ ४८३ ॥
इति वाचा चमत्कारं धारयन्नब्रवीन्नृपः। भवद्वचः[7]प्रतीतोऽपि प्रेक्षिष्ये कौतुकं हि तत् ॥ ४८४ ॥
ततो वेषपरावर्त्तप्राप्तो गूर्जरमंडले। पुरे हस्तिजये जैनमन्दिरस्य समीपतः ॥ ४८५ ॥
उपाश्रयस्थितं भव्यकदम्बकनिषेवितम्। राजानमिव सच्छत्रं चामरप्रक्रियान्वितम् ॥ ४८६ ॥ 20
सिंहासनस्थितं श्रीमन्नन्नसूरिं समैक्षत। उत्तानहस्तविस्तारसंज्ञयाह किमप्यथ ॥ ४८७ ॥
एतद्विलोक्याचार्योऽपि मध्यमातर्जनीद्वयम्। पुरस्तस्य वितस्तार शृङ्गाकारेण तत्र च ॥ ४८८ ॥
इत्युत्थाय गते तत्र जनैः पृष्टमिदं किमु। ततः प्रापञ्चयत् सूरिः कोऽपि विद्वानसौ पुमान् ॥ ४८९ ॥
पृच्छति स्म यतीनां किं राज्यलीला ततो[8] मया। इत्युत्तरं ददौ शृङ्गे भवतो भूपतेः किमु ॥ ४९० ॥
निविष्टमन्यदा चैत्ये शास्त्रं व्याख्यायनाभिधम्। व्याख्यातं प्रेक्ष्य तं भूपो नमस्कृत्य जिनं ययौ ॥ ४९१ ॥ 25
ननाम न गुरुं कामशास्त्रव्याख्यानतः स च। विद्वानेष न चारित्री गुरुरित्थं विकल्पितः[10] ॥ ४९२ ॥
परिज्ञातेऽथ तत्तत्त्वे खेदं दध्रे स कोविदः। धिग्वैदग्ध्यं हि नो निर्यदपकीर्तिकलङ्कितम् ॥ ४९३ ॥
श्रीगोविन्दः शशासैनं खिद्यसे किं वचः शृणु। आमभूपतिरेवायं गुप्तो नापर ईदृशः ॥ ४९४ ॥
ततः किंचिद्धर्मशास्त्रं विधायातिरसोज्वलम्। पार्श्वेऽनटस्य कस्यापि बप्पभट्टिप्रभोः पुरः ॥ ४९५ ॥
प्रेषयैतद् यथातथ्यं चाभिनायति तत्पुरः। तत्रापरंरसावेशं सोऽनुभूय "प्रभोक्षते (?) ॥ ४९६ ॥ 30
तथेति प्रतिपद्याथ कृत्वा तत्र नटोत्तमान्। प्रेषयच्छिक्षितान् सम्यक् "प्रायादामपुरं च सः ॥ ४९७ ॥
अमिलद् बप्पभट्टेश्च तेन राज्ञोऽथ दर्शितः। आदितीर्थकृतो वृत्तमभिनिन्ये स नूतनम् ॥ ४९८ ॥

---

1 A देवत्रि°। 2 A भूभृता। 3 B N विचिन्त्य। 4 N गौडवन्धो महुमहीविजय°। 5 A कविताविधिः। 6 N अवगच्छंति। 7 N केप्यधि°। 8 B भवद्वचं प्रतीतेऽपि। 9 N यतो। 10 A B विकल्पतः। 11 A प्रभोः पुरः; B प्रभोक्षते। 12 B प्रापदाम°।

विहितं सन्निबन्धेन रसाय नन्नसूरिणा । तत्कथां प्रथयन् नृत्यन्नाह प्राकृतरूपकम् ॥ ४९९ ॥

कन्नणह्नु सुवियह्नु गिरि वेयह्नु वेहावइ ।

श्रीबप्पभट्टिराद्देदमर्द्धोनं रूपकद्वयम् । नर्मधर्म्मेण[1] तथापि नटो व्यावृत्य तत्पुरे ॥ ५०० ॥

आगत्य तथ्यमाचख्यौ नन्नाचार्यकवेः पुरः । नैतद्रम्यमिदं कार्यमिति संचिन्त्य हर्षतः ॥ ५०१ ॥

5 ततो रूपं परावृत्य स सिद्धगुटिकादिभिः । प्रवस्थे कन्यकुब्जे च सह गोविन्दसूरिणा ॥ ५०२ ॥

प्राप्तोऽथ मिलितो बप्पभट्टेः पट्टेश्वरस्य च । राजपर्षदि नृत्यंश्च रसं वीरं वितेनिवान् ॥ ५०३ ॥

तद्ध्यानैकमना[2] भूपश्चकर्ष क्षुरिकां निजाम् । 'मारि मारी'ति शब्देन नदन् सिंह इव क्रुधा ॥ ५०४ ॥

अङ्गरक्षैस्ततो नाट्यमिदमित्थं निवारितः । चैतन्ये[3] सङ्गते पश्चात् प्रतिबुद्धो गुरूक्तिभिः ॥ ५०५ ॥

आह गोविन्दसूरिस्तद्भूप ! युक्तं कथं कृतम् । केनापि न परं शास्त्ररसः सर्वोऽनुभूयते ॥ ५०६ ॥

10 ततो वात्स्यायने व्याख्यायमाने नन्नसूरिणा । सविकल्पो मनीषी त्वमन्यः को न विकल्पयेत् ॥५०७॥

लज्जितेन[4] ततो राज्ञा क्षमितौ कोविदाधिपौ । सत्यं तद्वचनं बाढं यदूचे सुहृदा मम ॥ ५०८ ॥

संयमेन [5]सुशीलेन वृत्त्या विद्वत्तया तथा । तद्गुरुभ्रातरौ पूज्यौ भ्रान्तिर्मे क्षम्यतामिति ॥ ५०९ ॥

इत्याकर्ण्य ततः प्रोचे श्रीमद्गोविन्दसूरिणा । तपो न नः कलंकयेत त्वयि वृत्तानि पश्यति ॥ ५१० ॥

यतः–

15 भवन्तु ते दोषविदः शिवाय विशेषतस्तद्वचनैकनिष्ठाः[6] ।
येषां [7]प्रवादादपवादभीता गुणार्जनोत्साहपरा नराः स्युः ॥ ५११ ॥

तथा–

जे चारित्तिहिं निम्मला ते पंचायण सीह ।
विसयकसाइंहिं गंजिया ताहं फुसिज्जइ लीह ॥
20 ताहं फुसिज्जइ लीह, इत्थ ते तुल्ल सीआलह ।
ते पुण विसयपिसायछलिय गय करिणिहिं बालह ॥
ते पंचायण सीह सत्ति उज्जल नियकित्तिहिं ।
ते नियकुलनहयलमयंक निम्मलचारित्तिहिं ॥ ५१२ ॥

श्रुत्वेति नृपतिस्तोषादुवाच[8] सुहृदं गुरुम् । धन्योऽहमेव यस्याभूद् गुरोः कुलममूदृशम् ॥ ५१३ ॥

25 राज्ञा[9]ऽवस्थापितौ तत्र दिनान्यथ कियन्त्यपि । आपृच्छ्य बप्पभट्टिं तावागतौ स्वभुवं ततः ॥ ५१४ ॥

धर्मव्याख्या सदाख्यानाख्यानप्रश्नोत्तरादिभिः । कियानपि ययौ कालः समुद्रोः सुहृदोस्तयोः ॥ ५१५ ॥

§१७. आययावन्यदा वृन्दं गायनान्तावसायिनाम् । श्रवःस्वादिमहानादरसनिर्जिततुंबरुः ॥ ५१६ ॥

तत्रैका किन्नरी साक्षान्मातङ्गी गीतभङ्गिभिः । राजानं रञ्जयामास रूपादपि रसादिभिः ॥ ५१७ ॥

प्रवाह्य प्रतिपक्षस्य राज्ञो रागद्विपन् जयी । चित्तवृत्तिमहापुर्यामवस्कन्दं ददौ तदा ॥ ५१८ ॥

30 वात्सल्यानीन्द्रियाण्यस्य बहिर्भीत्येव निर्ययुः । तैरिव प्रेरितो राजा वासं बहिरचीकरत् ॥ ५१९ ॥

---

1 N नर्मवर्म्मेण । 2 N °मना भूप चकर्ष । 3 N चैतन्ये संगतः । 4 N लज्जितेन । 5 N तु शीलेन । 6 N °वतस्तेह विवेकनिष्ठाः । 7 N प्रभावाद° । 8 N नृपतिस्तोषामुवाच । 9 N राज्ञाव स्था° ।

उवाच च–

वक्त्रं पूर्णशशी सुधाऽधरलता दन्ता मणिश्रेणयः
कान्तिः श्रीर्गमनं गजः परिमलस्ते पारिजातद्रुमाः ।
वाणी कामदुघा कटाक्षलहरी तत्कालकूटं विषं
तत्किं चन्द्रमुखि ! त्वदर्थममरैरामन्थि दुग्धोदधिः ॥ ५२० ॥

अन्तश्चरेभ्यो विज्ञातवृत्तान्तः सूरिरप्यथ । दध्यौ स सादिनो दोषो यदश्वो विपथं व्रजेत् ॥ ५२१ ॥
आमभूपे विमार्गस्थे विश्वप्रकृतिषु ध्रुवम् । अपकीर्तिः कलङ्कोऽयं ममैवासज्जति स्फुटः ॥ ५२२ ॥
तदुपायाद् विनेयोऽसाविति ध्यात्वा बहिर्गृहे । ययौ विलोकनव्याजात् कामार्त्तेरोपथं स्मरन् ॥ ५२३ ॥
नव्येषु पट्टशालायाः पट्टेषु खटिनीदलैः । काव्यानि व्यलिखद् बोधबन्धुराणि ततो गुरुः ॥५२४॥–युग्मम् ।

तथाहि–

शैत्यं नाम गुणस्तवैव तदनु स्वाभाविकी स्वच्छता
किं ब्रूमः शुचितां व्रजन्ति[1] शुचयः सङ्गेन यस्यापरे ।
किं चातः परमस्ति ते स्तुतिपदं त्वं जीवितं देहिनां
त्वं चेन्नीचपथेन[2] गच्छसि पयः कस्त्वां निषेद्धुं क्षमः ॥ ५२५ ॥

सद्वृत्त सद्गुण महार्घ्य महार्ह कान्त कान्ताघनस्तनतटोचितचारुमूर्त्तेः ।
आः पामरीकठिनकण्ठविलग्नभग्न हा हार ! हारितमहो भवता गुणित्वम् ॥५२६॥

उप्पहजायाएँ असोहरीइ फलकुसुमपत्तरहियाए ।
बोरीइँ वइँ दिंतो भो भो पामर न लज्जिहिसि ॥ ५२७ ॥
मायंगासत्तमणस्स मेइणि तह य भुंजमाणस्स ।
अभिडइ तुज्झ ना या व लो य को नट्ठधम्मस्स ॥ ५२८ ॥
लज्जिज्जइ जेणि जणे मइलिज्जइ नियकुलक्कमो जेण ।
कंठट्ठिएहि जीवे मा सुंदर तं कुणिज्जासु ॥ ५२९ ॥
जीयं जलबिंदुसमं संपत्तीओं तरंगलोलाओ ।
सिविणयसमं च पिम्मं जं जाणह तं करिज्जासु ॥ ५३० ॥

लिखित्वा स्वाश्रयं प्राप बप्पभट्टिप्रभुर्मुदा । द्वितीयेऽहनि भूपोऽपि तत्सद्म[3] प्रेक्षितुं[4] ययौ ॥ ५३१ ॥
अवाचयच्च काव्यानि[5] हृल्लेखीनि यथा यथा । तथा तथा भ्रमोऽनेशद् दुग्धाद्धत्तूरमोहवत् ॥ ५३२ ॥
अथान्वतप्यत श्रीमानामः श्याममुखाम्बुजः । व्यमृशच्च[6] विना मित्रं कोऽन्य एवं हि बोधयेत् ॥५३३ ॥
इदानीमहमप्येक्ष्यं स्वमास्यं दर्शये कथम् । तस्य व्यथाकरं विश्वप्राणिनां दोषकारणम् ॥ ५३४ ॥
सांप्रतं मे गृहद्भानुरेव शुद्धिं विधास्यति । कलङ्कपङ्किलं त्याज्यमेवास्माकं हि जीवितम् ॥ ५३५ ॥
इति ध्यात्वा स तत्रैवादिशत् प्रेष्यांश्चिताकृते । अनिच्छन्तोऽपि भूपालादेशं तत्र व्यधुर्बलात् ॥ ५३६ ॥
राजलोक इदं ज्ञात्वा पूच्चक्रे करुणस्वरम् । राजमित्रगुरोरग्रे ततोऽसौ[7] तत्र जग्मिवान् ॥ ५३७ ॥
उवाचाथ गुरुर्भूप ! प्रारब्धं स्त्रीजनोचितम् । किमिदं विदुषां निन्द्यं ततो राजाह तत्पुरः ॥ ५३८ ॥
मम प्रच्छन्नपापस्य मालिन्ये मनसा कृते । स्वदेहत्याग एवास्तु दण्डो दुष्कृतनाशनः ॥ ५३९ ॥

---

1 A भवन्ति । 2 N °पदेन । 3 A तच्छद्म । 4 B N प्रेषितुं । 5 B N वाक्यानि । 6 A विमृशच्च । 7 B N देवासौ ।

यथा दुष्कृतिलोकस्य वयं दण्डमकुर्महि । तथा स्वस्यापि किं नैव कुर्मः कर्मच्छिदाकृते ॥ ५४० ॥
गुरुराह गिरैनाथ विमृश त्वं हि चेतसा । निबद्धं कर्म चित्तेन चित्तेनैव विमोच्यते ॥ ५४१ ॥
स्मार्त्तानार्त्त(र्त्तिं)भिदे पृच्छ प्रायश्चित्तानि पाप्मनाम् । यतः स्मृतिषु सर्वेषां मोक्ष ऊचे मनीषिभिः[1] ॥५४२॥
वेदान्तोपनिषत्तत्त्वश्रुतिस्मृतिविशारदाः । तत्राहूयन्त भूपेन स्तूपेन न्यायनाकिनः ॥ ५४३ ॥
5 यथावृत्तं मनःशल्यं जगदे तत्पुरस्तदा । ततस्ते स्मृतिवाचालास्तथ्यं शास्त्रानुगं जगुः ॥ ५४४ ॥
आयसीं पुत्रिकां वह्निध्मातां तद्वर्णरूपिणीम् । आश्लिष्यन्मुच्यते पापाच्चाण्डालीसङ्गसम्भवात् ॥ ५४५ ॥
श्रुत्वेति भूपतिः कारयित्वा तां कथितक्रमात् । आनाय्य तत्र सज्जोऽभूत् तदालिङ्गनहेतवे ॥ ५४६ ॥
वेगादागत्य पाञ्चालीमाश्लिष्यंस्तां स्वसिद्धये । पुरोधो[2]-**बप्पभट्टि**भ्यां भूपतिर्भुजयोर्धृतः ॥ ५४७ ॥
आह श्री**बप्पभट्टि**श्च स्थिराधार! स्थिरो भव । मा कोटिभरमात्मानं नाशयेथा मुधा सखे! ॥ ५४८ ॥
10 उत्कश्चैकाग्रचित्तेन सहसानन्यवेश्मनः । भवता कर्म चित्तेन बद्धमुन्मोचितं त्वया ॥ ५४९ ॥
अस्य पापस्य मुक्तोऽसि कृष्णाभ्रादिव भास्करः । योक्ष्यसे सतामन्तर्मुक्त्वा तत्कर्म दुष्करम् ॥ ५५० ॥
आनन्दितः प्रभोर्वाग्भिरिति तत्याज कुग्रहम् । इति ज्ञाते च हर्षोऽत्र पुनर्जात इवाभवत् ॥ ५५१ ॥
अमात्यैर्नगरे तत्र सर्वर्द्ध्यालंकृते कृते । गजगन्धर्वसन्दोहरथ्यापादातिसंवृतः ॥ ५५२ ॥
पट्टहस्तिशिरस्थानाग्रासनस्थे मुनीश्वरे । रोमगुच्छातपत्रादिप्रक्रियाप्रकटप्रभे ॥ ५५३ ॥
15 प्रविवेश विशामीशः स्वयं श्रीश इव[3] श्रिया । सुराणामप्यपूर्वेण पुरमत्युत्सवेन सः ॥–त्रिभिर्विशेषकम् ।

§ १८. इतो **वाक्पतिराज**श्च तं दृष्ट्वा राजवैकृतम् । निर्बन्धान्नृपमापृच्छ्य वैराग्यान्**मथुरां** ययौ ॥ ५५५ ॥
धर्माख्यावसरेऽन्येद्युः प्रभुर्भूपालमूचिवान् । धर्मतत्त्वानि पार्थयमानितानि विमृश्य सः ॥ ५५६ ॥
नवनीतसमं विश्वधर्माणां करुणानिधिम्[4] । [5]सन्यायमार्हतं धर्मं परीक्षापूर्वकं श्रय ॥ ५५७ ॥
राजा प्राहार्हतो धर्मो निर्वहत्येव मादृशाम् । परीक्षायां[6] परं शैवधर्मे चेतोऽलगद्[7] दृढम् ॥ ५५८ ॥
20 त्वदुक्तो नीरमानेष्ये कुम्भेनामेन[8] रङ्गतः । परं मा माममुं धर्मं त्याजयिष्यसि सौहृदात् ॥ ५५९ ॥
न मुञ्चे पैतृकाचारं वच्मि किंचिच्च वः पुरः । चेद्रोषं नहि धत्तात्र गुरुरोषाद्बिभीः भिये ॥ ५६० ॥
ब्रूतेति[9] गुरुणा प्रोक्ते[10]नृपः प्राह स्मितं दधन् । बोधयेयुर्भवन्तोऽपि बालगोपाङ्गनादिकम् ॥ ५६१ ॥
कोविदं नैव शास्त्रार्थपरिकर्मितधीस्तम् । रम्भाफलं यथा भक्ष्यं न तु निम्बफलं तथा[11] ॥ ५६२ ॥
शक्तिश्चेद्भवतामद्य मध्ये **मथुर**मागतम् । पुराणपुरुषं नित्यं चित्ते ध्यायन्तमद्भुतम् ॥ ५६३ ॥
25 यज्ञोपवीतवीताङ्गं नासाग्रन्यस्तदृष्टिकम् । तुलसीमालया लीढवक्षःस्थलमिलास्थितम् ॥ ५६४ ॥
श्रीकृष्णगानसत्तृष्णवैष्णवब्राह्मणावृतम् । पुत्रजीवकमालाभिर्मण्डितोरःस्थलं किल ॥ ५६५ ॥
वराहस्वामिदेवस्य प्रासादान्तरवस्थितम् । वैराग्यातिशयात्तत्र कृतप्रायोपवेशनम् ॥ ५६६ ॥
प्रतिबोध्य तदा जैनमते स्थापयत द्रुतम् । **वाक्पतिराज**सामन्तं पर्यङ्कासनसंस्थितम् ॥ ५६७ ॥
–पंचभिः कुलकम् ।
30 तैश्चाभ्युपगतेऽशीतिं चतुर्भिरधिकां तदा । सामन्तानां बुधानां च सहस्रं प्रैषयन्नृपः ॥ ५६८ ॥
आचार्यैः सह ते प्रापुस्त्वरितं शीघ्रवाहनैः । **मथुरां** तत्र चाजग्मुर्वराहस्वामिमन्दिरे ॥ ५६९ ॥
पूर्वाख्यातोदितावस्थं परमात्मस्थचेतनम् । ददृशुः सूरयो भूभृत्पुमांसश्च तमादरात् ॥ ५७० ॥
तत्र श्री**बप्पभट्टि**श्च त्रयीस्तवनतत्परम् । काव्यवृन्दमुदाजह्रे तस्य चेतः परीक्षितुम् ॥ ५७१ ॥

1 A महर्षिभिः । 2 A पुरोधा° । 3 N यशःश्रिया । 4 A °निधेः । 5 N संन्यास्य° । 6 N परीक्षायाः । 7 N लगेद्दृढं । 8 A कुंभनामेन । 9 N ब्रूतेऽथ । 10 A नृपे । 11 N तथा निंबफलं न तु ।

तथा हि–

रामो नाम बभूव हुं तदबला सीतेति हुं तौ पितु-
वांचा पंचवटीवने विचरतस्तस्याहरद् रावणः ।
निद्रार्थं जननीकथामिति हरेर्हुंकारिणः शृण्वतः
*पूर्वंसत्तुरवन्तु कोपकुटिलभ्रूभंगुरा दृष्टयः ॥ ५७२ ॥ 5
दर्प्पणार्पितमालोक्य मायास्त्रीरूपमात्मनः ।
आत्मन्येवानुरक्तो वः श्रियं दिशतु केशवः ॥ ५७३ ॥
उत्तिष्ठन्त्या रतान्ते भरमुरगपतौ पाणिनैकेन कृत्वा
धृत्वा चान्येन वासो विगलितकबरीभारमंसे वहन्त्याः ।
सद्यस्तत्कायकान्तिद्विगुणितसुरतप्रीतिना शौरिणा वः 10
शय्यामालिंग्य नीतं वपुरलसलसद्बाहु लक्ष्म्याः पुनातु ॥ ५७४ ॥
सन्ध्यां यत्प्रणिपत्य लोकपुरतो बद्धाञ्जलिर्याचसे
धत्से यच्चपरां विलज्ज शिरसा तच्चापि सोढं मया ।
श्रीर्जातामृतमन्थने यदि हरेः कस्माद् विषं भक्षितम्
मा स्त्रीलम्पट ! मां स्पृशेत्यभिहितो गौर्या हरः पातु वः ॥ ५७५ ॥ 15
†यदमोघमपामन्तरुप्तं बीजमज त्वया ।
अतश्चराचरं विश्वं प्रभवस्तस्य गीयसे ॥ ५७६ ॥
कुलं पवित्रं जननी कृतार्था वसुन्धरा पुण्यवती त्वयैव ।
अपारसंवित्सुखसिन्धुमग्नं लग्नं परे ब्रह्मणि यस्य चित्तम् ॥ ५७७ ॥
स कर्णकटुकं तच्च श्रुत्वा शीर्षं व्यधूनयत् । आकूण्य नासिकां वाचं प्राह्यथो दुर्मनायितः ॥ ५७८ ॥ 20
अमीषां रसकाव्यानां प्रशंसायाश्च किं सखे ! । अ(इ)यं वेला कथं नाम सौहार्दं तव चेदृशम् ॥ ५७९ ॥
इदं च श्रीबप्पभट्टिसदृशं भवतीह किम् । पारमार्थिकवाणीभिर्बोधवेला ममाधुना ॥ ५८० ॥
ततः प्राह गुरुः साधु साधु ते चेतनां स्तुमः । प्रष्टव्यमस्ति किंचित्तु भवत्पार्श्वे सुहृत्तम ! ॥ ५८१ ॥
देवानां यन्मयाऽऽख्यायि स्वरूपं भवदग्रतः । तत्तथ्यं वितथं वास्ते [1]तथ्यं चेदुर्मनाः कथम् ॥ ५८२ ॥
वितथं च कथं तत्स्यात् प्रत्यक्षे संदीहीत[2] कः । अत्र कार्ये प्रवृत्तिस्ते राज्यादीच्छावशादिह ॥ ५८३ ॥ 25
परमार्थोपलम्भे वा ?, विकल्पः प्रथमो यदि ; संमतं नस्तदाऽऽराद्धा देवा भूपवयोऽपि च ॥ ५८४ ॥
इष्टं प्रणयिनां ददुः सामर्थ्यात् संशयोऽपि न । परमार्थे तु चेदिच्छा तत् त्वं तत्त्वं विचारय ॥ ५८५ ॥
संसारोपाधिमग्नैश्चेत् सुरैर्मुक्तिः प्रदीयते । तदत्र मत्सरोऽस्माकं स्वयं निखिलवेदसि ॥ ५८६ ॥
—पंचभिः कुलकम् ।
श्रुत्वेति सद्गुरोर्वाचं पंकापनयवारिभाम् । अवलेपो ययौ तस्य द्विकाऽकस्माद्भयादिव ॥ ५८७ ॥ 30
अहो पुण्यपरीपाको मम यत् सूनृतः सुहृत् । संगतोऽवसरेऽमुत्र तत्[3] तत्त्वोपकृतिं कुरु ॥ ५८८ ॥
इत्युक्त्वा विरते दत्तावधाने वाक्पतौ प्रभुः । धर्म-देव-गुरूणां च तत्त्वान्याख्यात् तदग्रतः ॥–युग्मम् ।

* A आदर्शे—'सौमित्रेयधनुर्धनुर्धनुरिति व्यक्ता गिरः पान्तु वः ।' एतादृशोऽयं चतुर्थः पादः ।
† A आदर्शे नास्त्यसौ श्लोकः । 1 N B नास्ति । 2 N संदिहानकः । 3 N तत्र चोप° ।

त्रैकाल्यं द्रव्यषट्कं नवपदसहितं जीव-षट्काय-लेश्याः
पंचान्ये चास्तिकाया व्रत-समिति-गति-ज्ञान-चारित्रभेदाः ।
इत्येतन्मोक्षमूलं त्रिभुवनमहितैः प्रोक्तमर्हद्भिरीशैः
प्रत्येति श्रद्दधाति स्पृशति च मतिमान् यः स वै शुद्धदृष्टिः ॥ ५९० ॥

5 अथ देवतत्त्वम्–

अर्हन् सर्वार्थवेदी यदुकुलतिलकः केशवः शंकरो वा
बिभ्रद्गौरीं शरीरे दधदनवरतं पद्मजन्माऽक्षसूत्रम् ।
बुद्धो वालं कृपालुः प्रकटितभुवनो भास्करः पावको वा
रागाद्यैर्यो न दोषैः कलुषितहृदयस्तं नमस्यामि देवम् ॥ ५९१ ॥

10 यत्र तत्र समये यथा तथा योऽसि सोऽस्यभिधया यया तया ।
वीतदोषकलुषः स चेद् भवानेक एव भगवन्! नमोऽस्तु ते ॥ ५९२ ॥
मदेन मानेन मनोभवेन क्रोधेन लोभेन च संमदेन ।
पराजितानां प्रसभं सुराणां वृथैव साम्राज्यरुजा परेषाम् ॥ ५९३ ॥
प्राइं मुणिहि वि भ्रंतडी तिं मणिअडा गणंति ।
15 अखयनिरंजणि परमपइ अज्ञवि तउ न लहंति ॥ ५९४ ॥

अथ गुरुतत्त्वम्–

पंचमहव्वयजुत्त पंचपरमिट्ठिहिं भत्तउ ।
पंचिंदियनिग्गहणु पंचविसय जु विरत्तउ ॥
पंचसमिइ निव्वहणु पगुणगुणु आगमसत्थिणं ।
20 कुविहि कुगह परिहरइ भविय बोहिय परमत्थिण ॥
बालीसदोससुद्धासणिण छव्विह जीवह अभयकरु ।
निम्मच्छरु केसरि कहइ फुड तिगुत्तिगुत्तु सो मज्झ गुरु ॥ ५९५ ॥
कुक्खी संबल चत्तघण निव्वुवलंघिय हत्थ ।
एहा कहवि गंवेसि गुरु ते तारणह समत्थ ॥ ५९६ ॥
25 दोवि गिहत्था धडहड वबइं को किर कस्स य पत्तु भणिज्जइ ।
सारंभो सारंभं पुज्जइ कद्दमु कद्दमेण किम सुज्झइ ॥ ५९७ ॥

इत्यादिसद्गुरोर्वाक्यैः प्रीणितो हृदयंगमैः । ध्यानं प्रपार्य पप्रच्छ किंचित् सन्दिग्धि मे मनः ॥ ५९८ ॥
अनन्ताः प्राणिनो मुक्तिं यदि प्राप्ता नृलोकतः । रक्तो भवेत् स पूर्णत्वान्मुक्तौ स्थानं च नास्ति तत् ॥५९९॥
गुरुराह महासत्त्वाज्ञातजैनगिरामयम् । आलापं(पः) शृणु दृष्टान्तमत्र श्राव्यं विपश्चिताम् ॥ ६०० ॥

30 तथा हि–

आसंसारं सरियासएहि हीरंतरेणुनिवहेहिं ।
पुहवी न निट्ठिय चिय उदही वि थली न संजाओ ॥ ६०१ ॥

उल्लसत्पुलकाङ्कुरो दूरीकृतकुवासनः । प्राह वाक्पतिराजोऽथ राजा यो ब्रह्मवेदिनाम् ॥ ६०२ ॥
इयन्तं समयं यावद् भ्रान्ताः स्मो मोहलीलया । परमार्थपरामर्शिधर्म्मतत्त्वबहिष्कृताः ॥ ६०३ ॥

२८०

चिरं परिचयः पूज्यैस्त्वादृशैरपि मेऽफलः । एतावन्ति दिनान्यासीद् धर्माख्यानविनाकृतः ॥ ६०४ ॥

उक्तं च तेन–

मयनाहिकलुसिएणं इमिणा किं किर फलं निडालेण ।
इच्छामि अहं जिणवरपणामकिणकलुसियं काउं ॥ ६०५ ॥

मुमुक्षोर्मम यत्प्राय औचित्यं न विलंघयेत् । तदादिश यथादिष्टं विदधे कर्मनाशकम् ॥ ६०६ ॥ 5
श्रीबप्पभट्टिराहाथ शङ्का चेत् कर्मणां तव । मनःशुद्धिस्ततः कार्या व्यवहारोऽपि तादृशः ॥ ६०७ ॥
ततः संन्यस्त एव त्वं जैनमार्गं समाश्रय । श्रुत्वेति तैः सहैषा[1]सावुदस्थाद् भवनात् ततः ॥ ६०८ ॥
आजगामाथ पार्श्वस्य[2] स्तूपे श्रीपार्श्वमन्दिरे । मिथ्यादर्शनवेषं च विमुञ्चन्[3] स्वीकृतं पुरा ॥ ६०९ ॥
जैनर्षिवेषमास्थाय संयमाचारशिक्षकः[4] । संसारचरमप्रत्याख्यानी ध्यानैकतानभृत् ॥ ६१० ॥
अष्टादश तदा पापस्थानान्युत्सृज्य सर्वतः । चतुःशरणमादध्यौ निर्धूतान्तरकल्मषः ॥ ६११ ॥–युग्मम् । 10
प्रशंसागर्हणे प्राच्यसुकृतामुकृते व्यधात् । परमेष्ठिपदाधीनमानसो मानशोपभूः ॥ ६१२ ॥
दिनान्यष्टादश प्रायमुपायं दुष्कृतार्दने । एकावतारान्तरितो महानन्दपदस्तदा ॥ ६१३ ॥
सम्यगाराधनोपात्तपाण्डित्यमृतिरीतितः । देहमुक्त्यां गतः साम्यं प्राप प्राचीनवर्हिषा ॥ ६१४ ॥–युग्मम् ।
ततः किंचित्सखिस्नेहगद्गदः शमिनायकः । उवाच विश्वसामन्तविद्वद्वृन्दस्य शृण्वतः ॥ ६१५ ॥

तथा हि– 15

पइं सग्गगए सामंतराय अवरत्तउ न फिट्टिहइ ।
पढमं चिय वरिय पुरंदराइ सग्गस्स लच्छीए ॥ ६१६ ॥

तत्र **गोकुलवासे**ऽस्ति पुरा नन्दनिवेशिते । श्रीशान्तिः शान्तिदेवी च हेतुर्विश्वस्य शान्तिके ॥ ६१७ ॥
तत्र **श्रीबप्पभट्टिः** श्रीतीर्थेश्वरनमस्कृतौ । गत्वा च तुष्टुवे शान्तिदेवतासहितं जिनम् ॥ ६१८ ॥
'जयति जगद्रक्षाकर' इत्याद्यं शान्तिदेवतास्तवनम् । अद्यापि वर्त्तते तच्छान्तिकरं सर्वभयहरणम् ॥६१९॥ 20
ततः सामाजिकस्तोमस्तुतो व्यावृत्य संययौ । **कन्यकुब्जपुरं बप्पभट्टिः** कतिपयैर्दिनैः ॥ ६२० ॥
पुरापि ज्ञातवृत्तान्तो नृपतिर्गूढपूरुषैः । संमुखीनः पुरोपान्तं गत्वा प्रावेशयद् द्रुतम् ॥ ६२१ ॥
गुरुं सभोपविष्टं च प्राह भूपश्चमत्कृतः । अहो वो वाच[5]सामर्थ्यं सोऽपि यत् प्रतिबोधितः ॥ ६२२ ॥
प्रभुः प्राहाथ[6] का शक्तिर्मम यत् त्वं न बुध्यसे । राजाह सम्यग् बुद्धोऽस्मि त्वद्धर्मोऽस्तीति निश्चितम् ॥६२३॥
माहेश्वरं पुनर्धर्मं मुञ्चतो मे महाव्यथा । तत्प्राच्यभवसंबद्ध इवायं किं करोम्यतः ॥ ६२४ ॥ 25
श्रुतज्ञाननिमित्तेन ज्ञात्वा प्रभुरुवाच च । तव[7] प्राक्कृतकष्टस्य राज्यमल्पतरं फलम् ॥ ६२५ ॥
सविस्मयैस्तदा पर्षत्प्रधानैरोच्यत प्रभुः । प्रसह्य कथ्यतां राज्ञः प्राग्भवोऽस्मत्प्रबुद्धये ॥ ६२६ ॥
प्रभुराह ततः सम्यग् विमृश्येति[8] यथातथम् । प्रभचूडामणेः शासादस्तापज्ञानशेवधिः ॥ ६२७ ॥
शृणु भूमिपते ! **कालिंजराख्यस्य** गिरेरधः । शालिशालद्रुमोर्द्ध्वस्थशाखाबद्धपदद्वयः ॥ ६२८ ॥
अधोमुखो जटाकोटिसंस्पृष्टपृथिवीतलः । त्र्यन्हे त्र्यन्हे मिताहारो हारी[9] क्रोधादिविद्विषाम् ॥ ६२९ ॥ 30
इति वर्षशतं साग्रं तपस्तप्त्वातिदुष्करम् । आयुःप्रान्ते तनुं त्यक्त्वाऽभवस्त्वं भूपनायकः ॥ ६३० ॥
यदि न प्रत्ययो राजन् ! प्रेषय प्रवरान् नरान् । जटा अद्यापि तत्रस्था आनायय तरोस्तलात् ॥ ६३१ ॥

---

1 N सहैवास उद° । 2 N पार्श्वेऽस्य । 3 N व्यमुंचत् । 4 N संयमाचारशिष्यकः । 5 N अहो चोवाच । 6 N प्राह च । 7 N तत्र । 8 N विमृश्येति । 9 A °हाराहारी ।

इत्याचार्यैकथास्मेरो नृपतिः प्रेष्य मानुषान् । जटा आनाययत्, तत्र गत्वाऽऽनीताश्च तास्ततः ॥ ६३२ ॥
मुनीन्द्रोऽयं महाज्ञानी कलावपि कलानिधिः । भूपालः कृतपुण्योऽसौ यस्येदृग्गुरुरद्भुतः ॥ ६३३ ॥
पार्षद्या धूतमूर्द्धानस्तद्वृत्तोल्लाससंशिनः । पर्युपास्तिं दधुः सूरिपादान्तभ्रान्तमौलयः ॥ ६३४ ॥

§ १९. अन्यदा सौधमूर्द्धस्थो नृपः कुत्रापि वेश्मनि । कलहान्तरितां रामां भिक्षायै गृहमागतम् ॥ ६३५ ॥
5 जैनभिक्षुं परब्रह्मध्यानैकामहसंमहम् । धृपश्यन्तीमवज्ञातां तेन निर्गच्छता गृहात् ॥ ६३६ ॥
बाढं कपाटमाश्रित्य प्रहारेऽङ्घ्रेः समुद्यते । नूपुरं यतिपादाब्जप्रविष्टं[1] कौतुकादिव ॥ ६३७ ॥
पश्यन्तीमथ सोत्रासां निर्लज्जां कामदामनीम् । गणयत्येप नेत्येवं वदन्तीं च तदैक्षत[2] ॥ ६३८ ॥
—चतुर्भिः कलापकम् ।
प्राकृतस्याथ[3] वृत्तस्य पादमेकमुवाच सः[4] । गुरोरग्रे ततोऽवादीत् [5]स्रागेव पदत्रयम् ॥ ६३९ ॥

10 तच—

कवाडमासज्ज वरंगणाए अब्भत्थिओ जुव्वणमत्तियाए ।
अमन्निए मुक्कपयप्पहारे सनेउरो पव्वइयस्स पाओ ॥ ६४० ॥

युवा भिक्षाचरोऽन्येद्युः [6]प्रोषितप्रेयसीगृहे । दृष्टः प्रविष्टो भिक्षायै राज्ञा सौधाग्रचारिणा ॥ ६४१ ॥
आनीयान्नभृतां दर्व्वीमूर्द्धाऽस्थात् सा तदास्यदृक् । सोऽपि तन्नाभिसौन्दर्यासक्तनेत्रस्तथा स्थितः ॥ ६४२ ॥
15 एकचित्ततया दानग्रहणा[7]स्मरणात् तदा । *नृपस्तयोरेकदृशोर्ध्यानं पश्यन् जगौ स्मितः ॥ ६४३ ॥

तद्यथा—

भिक्खयरो पिच्छइ नाहिमंडलं सा वि तस्स मुहकमलं ।

श्रीबप्पभट्टिराकर्ण्य नृपाग्रे वाक्यमब्रवीत् । किं गण्यानीदृशान्यस्य पयोधेरिव बुद्बुदाः ॥ ६४४ ॥

दुण्हं पि कवालं चट्टुयं च काया विलुंपंति ॥ ६४५ ॥

20 श्रुत्वेति भूपतिस्तुष्टः प्राह कल्याणधीनिधिम् । विना मन्मित्रमेते कः पूरयेन्मन्मथेप्सितम् ॥ ६४६ ॥
इत्येवं सत्यसौहार्दमार्दवार्द्दनमीतिभूः । गुरुवक्त्राम्बुजे नित्यं भृशं भृङ्गीतुलां व्यधात् ॥ ६४७ ॥

§ २०. एकदा समगादेकच्छेको विश्वकलाश्रयः । चित्रकृच्चित्रकृच्चित्रकर्म्मकर्म्मणि कर्मठः ॥ ६४८ ॥
पूर्वमालिखितं सम्यक् ततः[8] कर्पटवारितम् । रेखितं[9] रङ्गिवर्णौघपूर्णक्षणमथ स्फुटम् ॥ ६४९ ॥
अलक्ष्यमपि[10] मा चित्रभङ्गे जीववधो[11] ध्रुवः । इति सत्यापयन्[12] वाचं सजीवकलया स्वया (?) ॥६५०॥
25 स त्रयोदशभिर्भागैर्भूपरूपं विधाय तत् । चित्रचूडामणिं राज्ञो दर्शयन् विकटे पटे ॥—त्रिभिर्विशेषकम् ।
राजा सुहृद्गुणग्रामरामणीयकलम्पटः । अनास्थया समीक्ष्यास्य ददौ नोत्तरमप्यसौ ॥ ६५२ ॥
एवं त्रिर्विहिते रूपे यदा नोत्तरमाप सः । अवोचत् प्रेक्षकानन्यान् निर्वेदादतिदीनगीः ॥ ६५३ ॥

---

1 N प्रविष्टं । 2 A तदैक्ष्यते; B तदैक्षत । 3 N प्राकृतस्याथ । 4 A च । 5 N प्रागेव । 6 N प्रेषितः । 7 A °ग्रहण स्मरणा° ।

* N पुस्तके "नृपस्तयोरेकदृशोर्ध्याने दृष्टेऽथवायसैः ॥
विकीर्णे सकलेऽप्यन्ने विस्मयस्मेरलोचनः । गाथार्द्धमूचिवांस्तत्र यथा दृष्टार्थवाचकम् ॥
ध्यानं पश्यन् जगौ स्मिताः–" एतादृशः पाठविशेषोऽत्र दृश्यते ।

8 N सम्यक् ततः; A सम्यक् तव । 9 N रेखितं । 10 A अलक्ष्यमति मां; B अलक्ष्म । 11 N °वधाद् । 12 A सत्यापयन्ता··· ।

छिनद्मि स्वौ करौ किं वा ललाटं स्फोटये निजम्। कला यातु क्षयं भाग्यहीनस्य मम किं ब्रुवे ॥ ६५४ ॥
बप्पभट्टिं समीक्षस्वेत्युक्तः कैश्चिद्दयालुभिः। ततोऽसौ गुरवे जैनं बिम्बं कृत्वा करे ददौ ॥ ६५५ ॥
प्राशंसि च ततोऽसौ तैरेष चित्रकलानिधिः। भूपालाग्रेऽथ[1] सोऽप्यस्य टंकलक्षं ददौ मुदा ॥ ६५६ ॥
श्रीवर्द्धमानबिम्बेन भास्वत्पटचतुष्टयम्। न्यधापयदधाद्येकं कन्यकुब्जपुरान्तरा ॥ ६५७ ॥
मथुरायां तथैकं चाणहिल्लपुर एककम्। सतारकपुरे चैकं प्रतिष्ठाप्य न्यधापयत् ॥ ६५८ ॥
श्रीपत्तनान्तरा मोढचैत्यान्तर्म्लेच्छभङ्गतः। पूर्वमासीत् तमैक्षन्त तदानीं तत्र धार्मिकाः ॥ ६५९ ॥
द्वापंचाशत् प्रबन्धाश्च कृतास्तारागणादयः। श्रीबप्पभट्टिना शैक्षकविसारस्वतोपमाः ॥ ६६० ॥

§२१. अथ राजगिरिं दुर्गमन्यदा रुरुधे नृपः। समुद्रसेनभूपालाधिष्ठितं निष्ठितद्विपत्[2] ॥ ६६१ ॥
गजाश्वरथपादातपाद[3]पातादिसादितैः। शब्दाद्वैतमिव व्योम्नि प्रतितिष्ठत्[4] समुन्नतम् ॥ ६६२ ॥
समग्रप्राग्[5]सामग्रीजाग्रद्‌व्यग्रपरिग्रहम्। अपि प्रपंचलक्षाभिर्दुर्ग्रहं विग्रहिद्विपाम्[6] ॥ ६६३ ॥
भैरवादिमहायन्त्रयष्टिमुक्ताश्मगोलकैः। बाह्यकुट्टिमकुट्टाकैः कुट्टिताट्टपटातटम् ॥ ६६४ ॥
अभ्रंलिहट्टपद्धित्तिशिरस्थकपिशीर्षकैः। सर्द्धिवैः छन्नसंचारं रवेस्तारापतेरपि ॥ ६६५ ॥
सुरंगा[7]शूकरीमुख्यप्रपंचैरपि विद्विषाम्। पतत्युष्णतैलौघस्पृष्टैर्निष्फलविक्रमम् ॥ ६६६ ॥—षड्भिः कुलकम्।
पप्रच्छ बप्पभट्टिं च निर्वेदादामभूपतिः। कथं कदा वा ग्राह्योऽयं प्राकारः क्ष्माधरोपमः ॥ ६६७ ॥
प्रश्नचूडामणेः शास्त्रात् [8]सुविचार्याब्रवीदिति। पौत्रस्ते भोजनामाऽमुं ग्रहीष्यति न संशयः ॥ ६६८ ॥
अभिमानादसोढेदं राजा तत्रैव तस्थिवान्। वर्षैर्द्वादशभिर्दुन्दुकस्य सूनोः सुतोऽजनि ॥ ६६९ ॥
स च पर्यंकिकान्यस्तः प्रधानैर्जातमात्रकः। आनिन्ये तस्य दम्भोलिरिव शैलच्छिदाविधौ ॥ ६७० ॥
तद्दृष्टिर्दुर्गशृङ्गाग्रे मुखं बालस्य तन्मुखम्। विधायापात्यतापितातैलज्वालाविलासिरुक् ॥ ६७१ ॥
स कोट्टः कुट्टिताधस्थरणमण्डपमण्डलः। स्फुटदट्टालकस्तोमभ्रश्यद्गोपुरादपि ॥ ६७२ ॥
मृद्यमानमनुष्यस्त्रीगजाश्वमहिषीगवाम्। आर्त्ताक्रन्दरवैः शब्दाद्वैतं सर्वत्र पोषयन् ॥ ६७३ ॥
निर्घातक्षुण्णसामान्यपर्वतो महतामपि। गिरीणां प्रददद्भीतिं न्यपतन्नाकिलोकिनः ॥ ६७४ ॥—त्रिभिर्विशेषकम्।
समुद्रसेनभूपोऽपि धर्मद्वाराद् ययौ बहिः। आमनामाथ भूपालः श्रीराजगिरिमाविशत्[9] ॥ ६७५ ॥
अधिष्ठाता तु दुर्गस्य यक्षोऽङ्गीकृतवैरतः। आमाधिष्ठायिकैः रुष्टः प्रतोलीस्थो[10] हि तज्जनम् ॥ ६७६ ॥
इति लोकात् परिज्ञाय राजा तत्रागमत् तदा। तमाह प्राकृतं लोकं मुक्त्वा मामेव घातय ॥ ६७७ ॥
इति साहसवाचा स तुष्टो हिंसाग्रहात् ततः। न्यवर्त्तत प्रशान्तात्मा सत्संग उपकारकः ॥ ६७८ ॥
मैत्रीं च प्रतिपेदे स यथादिष्टकरः प्रभोः। कियन्मे जीवितं मित्र! ज्ञानाद्दृष्ट्वा निवेदय ॥ ६७९ ॥
षण्मास्यामवशेषायां कथयिष्यामि तत्र च। इति जल्पन् तिरोधत्तावसरे च तदब्रवीत् ॥ ६८० ॥
गंगान्तर्मागधे तीर्थे नावाऽवतरतः सतः। मकाराद्यक्षरग्रामोपकण्ठे मृत्युरस्ति ते ॥ ६८१ ॥
निर्यद्धूमं जलाद्दृष्ट्वाभिज्ञानं भवता दृढम्। विज्ञेयमुचितं यत्ते तत्प्रेत्यार्थं समाचर ॥ ६८२ ॥

§२२. तीर्थयात्रामसौ मित्रोपदेशादुपचक्रमे। अलसः को हिते स्वस्य नेच्छेत् सद्गतिमात्मनः ॥ ६८३ ॥
प्रयाणैः प्रवणैः पुण्डरीकाद्रिं प्राप भूपतिः। युगादिनाथमभ्यर्च्य कृतार्थं स्वममन्यत ॥ ६८४ ॥
ययौ रैवतकाद्रिं च श्रीनेमिं हृदि धारयन्। उपत्यकाभुवं प्राप प्राग्भरेस्तः सुधीषु यः ॥ ६८५ ॥
तीर्थं प्रणन्तुमानेकानेकादश नरेश्वरान्। अपश्यत्स्मयदातङ्को हयायुतपरिच्छदान् ॥ ६८६ ॥

---

1 A भूपालाग्रेपि। 2 N B °द्विपन्। 3 A °पादापातादि°। 4 A प्रतिविष्ठन्। 5 N °प्राज्य°। 6 A विग्रहद्विषां।
7 A °सूकरी°। 8 A स विचा°। 9 A °माविशत्। 10 N कूटप्रतोलीस्थायिनं जनम्।

तथैकादशभिः फल्गुवाग्डम्बरदिगम्बरैः । राक्षसैरिव शाखोटान् कलिनिघ्नैरधिष्ठितान् ॥६८७॥—युग्मम् ।
स्वीकुर्वाणान्महातीर्थं शैलारोहनिषेविनः । असंख्यसैन्यसंख्याय तानाह्वयदिलापतिः ॥ ६८८ ॥
तान् दृष्ट्वा बप्पभट्टिः श्रीसुहृद्भूपालमब्रवीत् । धर्मकर्मोद्यमे युद्धात् प्राणिनः को जिघांसति ॥ ६८९ ॥
वागाहवेन जेष्यामि विद्वत्पाशानिमान् नृप ! । नखच्छेद्येऽब्जिनीखण्डे कुठारं कः प्रयोजयेत् ॥ ६९० ॥
ते जिता वादमुद्रायाममुद्रायासमन्तरा । दीपस्य शलभप्लोषे[1] स्तुतिः संस्तूयते हि का ॥ ६९१ ॥
ततोऽपि तानभ्यमित्रानवादीद् विशदाम्बरः[2] । निर्जयादपि[3] चेद् यूयं शमिनो न प्रतादपि ॥ ६९२ ॥
असंख्यव्यन्तराधीशचुम्बितांह्रिनखावलिः । अम्बा श्रीनेमिपादाब्जकादम्बा शासनामरी ॥ ६९३ ॥
आत्मनोरुभयोः कन्यायुग्मं न्यस्यतः स्थितम् । देवी तदन्तरा येषामेतां[4] संजल्पयिष्यति ॥ ६९४ ॥
तीर्थं तदीयमेवास्तु यस्याम्बा क्रमतोऽमुतः । समर्पयति तत्किं नु वादैरादीनवास्पदैः ॥६९५॥—विशेषकम् ।
उभयाभिमतो जज्ञे व्यवहारोऽयमेतयोः । पक्षयोरक्षयोदग्रप्रभावाम्बालये ततः ॥ ६९६ ॥
ततः कुमारिकां तेषां बप्पभट्टिरिहार्पयत् । द्वादशप्रहरान् यावत्तैर्मन्त्रैः साधिवासिता ॥ ६९७ ॥
एडमूकेव[5] नाह स्म कथंचिदथ तेऽवदन् । शक्तिश्चेद् यूयमप्यत्र कन्यां जल्पयताद्य नः ॥ ६९८ ॥
तन्मूर्ध्नि बप्पभट्टिश्च करं कमलकोमलम् । ददावम्बा च तद्वक्त्रे स्थिता स्पष्टमुवाच च ॥ ६९९ ॥

उज्जिंतसेलसिहरे दिक्खा-नाणं निसीहिया जस्स ।
तं धम्मचक्कवट्टिं अरिट्ठनेमिं नमंसामि ॥ ७०० ॥

ततो जयजयध्वानमिश्रो दुन्दुभिरध्वनत् । रोदःकुक्षिंभरिः श्वेताम्बरपक्षोन्नतिप्रदः ॥ ७०१ ॥
ततः प्रभृति गाथेयं चैत्यवन्दनमध्यतः । सिद्धस्तवनकद्गाथात्रितयादूर्ध्वमादृता ॥ ७०२ ॥
शक्रस्तवदाबालाङ्गनापाठ्याऽत्र मानिता । अष्टापदस्तुतिश्चापि श्रुतवृद्धैः पुरातनैः ॥ ७०३ ॥
ततो रैवतकारोहात् समुद्रविजयाङ्गजम् । आनर्चासौ महाभक्त्या[6] मानयन् जन्मनः फलम् ॥ ७०४ ॥
दामोदरहरिं तत्राभ्यर्च्यागात् पिंडतारके । तथा माधवदेवे च शंखोद्धारे च तं स्थितम् ॥७०५॥
द्वारकायां ततः श्रीमान् कृष्णमूर्तिं प्रणम्य च । तत्र दानादि दत्त्वा श्रीसोमेश्वरपुरं ययौ ॥ ७०६ ॥
ततः श्रीसोमनाथस्य हेमपूजापुरस्सरम् । तल्लोकं प्रीणयामास वासवो जीवनैरिव ॥ ७०७ ॥
पुनः[7] स्वं नगरं प्राप श्रीमानाममहीपतिः । यादृच्छिकं ददौ दानं धर्मस्थानानि च व्यधात् ॥ ७०८ ॥

§ २३. प्राप्ते काले सुतं राज्ये दुन्दुकं स न्यवेशयत् । प्रकृतीः क्षमयामास पूर्वमानन्दिता अपि ॥ ७०९ ॥
प्रयाणं दत्तवान् गंगासरित्तीरस्थमागधम् । तीर्थं जिगमिषुर्नावमारूढश्च तदन्तरा ॥ ७१० ॥
सूरिणा सह तन्मध्ये दृष्टवान् धूमनिर्गमम् । उपगंगं जनाज्जज्ञे मगटोडानिवेशनम् ॥ ७११ ॥
प्रतीते व्यन्तराख्याते सूरिराहाऽऽमभूपतिम् । जैनधर्मं प्रपद्यस्व प्रान्तेऽपि प्रत्ययोऽस्ति चेत् ॥ ७१२ ॥
राजाह प्रतिपन्नोऽस्मि सर्वज्ञः शरणं मम । देवो गुरुर्ब्रह्मचारी धर्मश्चेन् कृपयोदितः ॥ ७१३ ॥
देवो गुरुश्च धर्मश्च यश्चक्रे व्यावहारिकः । इयद्दिनानि सोऽत्याजि मया त्रिविधशुद्धितः ॥ ७१४ ॥
मम सौहार्दतः पूज्यपादानामपि सांप्रतम् । विधिवद्रिमहत्याग इह वो नोचिता स्थितिः ॥ ७१५ ॥
परत्रापि यथा लोके समस्यापूरणादिभिः । कालोऽतिवाह्यते सौख्यान्मिलितैरेव निश्चितम् ॥ ७१६ ॥
श्रुत्वेत्याह प्रभुर्मुग्धवागियं स्वस्वकर्मभिः । करकः कां कां गतिं गन्ता बुध्यते को जिनं विना ॥ ७१७ ॥

1 A शलभप्लोषे । 2 N A °विशदांबरः । 3 A निर्णयादपि । 4 A येषामेतां । 5 A एकमूकेव । 6 N महाभक्तो । 7 N A पुरः ।

युक्तमेतद् व्रतस्थानां नात्मप्राणापरोपणम् । तथातः पञ्चवर्षाणि ममाद्याप्यायुरस्ति च ॥ ७१८ ॥

विक्रमतो वर्षाणां शताष्टके सनवतौ च भाद्रपदे ।
शुक्ले सितपञ्चम्यां चन्द्रे चित्राख्यऋक्षस्थे ॥ ७१९ ॥

तुलाराशौ तथा चन्द्रस्थिते[1]ऽर्के प्रहरेऽन्तिमे । श्राव्यमाणो भृशं पञ्चपरमेष्ठिनमस्क्रियाम् ॥ ७२० ॥

दृढं जिनेशसन्मित्रगुरुपादस्मृतिस्थितः ।
श्रीमान् नागावलोकाख्यो राजा प्राप दिवं तदा ॥ ७२१ ॥–विशेषकम् ।

अथ किंचित्सुहृन्मोहात् तत्र स्थित्वौर्ध्वदेहिकम् । कारयामास पार्श्वस्थः प्रधानैस्तत्सनाभिभिः ॥ ७२२ ॥
किंचिच्छोकोर्मिसन्तप्त उवाच करुणं तथा । सोद्वेगं च तदीयानां गुणानां संस्मरन् भृशम् ॥ ७२३ ॥

मा भूत् संवत्सरोऽसौ वसुशतनवतेर्मा च ऋक्षेषु चित्रा
धिग्मासं तं नभस्यं क्षयमपि स खलः शुक्लपक्षोऽपि यातु ।
संक्रान्तिर्या च सिंहे विशतु हुतभुजं पञ्चमी या तु शुक्ले
गंगातोयाग्निमध्ये त्रिदिवमुपगतो यत्र नागावलोकः ॥ ७२४ ॥

§ २४. अथ श्रीबप्पभट्टिश्च कन्यकुब्जे मुनीश्वरः । प्राप दुन्दुकभूपालाधिष्ठितं तन्निरुद्यमः ॥ ७२५ ॥
सक्तः कंट्याख्यवेश्यायां भूपो भोजं निजं सुतम् । भाग्योदयकलाकेलिविलासमपि पापभूः ॥ ७२६ ॥
अभिद्रुह्यति मूढस्तद्वाग्भिर्विगतचेतनः । अविवेकधराधुर्यं धिग् वेश्याजनसंगमम् ॥ ७२७ ॥–युग्मम् ।
तन्माता निजबन्धूनां ज्ञापयामास दुःखिता । संकटे हि कुलस्त्रीणां शरणं शरणं पितुः ॥ ७२८ ॥
समागत्याह्वयंस्ते च पुत्रजन्मोत्सवच्छलात् । आपृच्छायै पुनर्भोजः संचचार नृपालये ॥ ७२९ ॥
ज्ञापितो गुरुभिः सौधद्वारे[2] विज्ञाय शस्त्रिणः । निवृत्तो[3] मातुलैः साकं प्रययौ पाटलीपुरम् ॥ ७३० ॥
आचार्यमन्यदा राजा दुन्दुकः प्राह मत्सरी । मयि प्रसादमाधायानीयतां नन्दनोत्तमः ॥ ७३१ ॥
ततः स ध्यानयोगादिप्रारम्भैरुत्तरोत्तरैः । वाहयामास वर्षाणि पंच[4] पंचत्ववासरम् ॥ ७३२ ॥
ततोऽन्त[5]समये प्राप्ते राज्ञा[6] दृढतरं गुरुः । उपरोध्य सुताह्वानहेतवे प्रैष्यतादरात् ॥ ७३३ ॥
ययौ तन्नगराभ्यासे विममर्श च चेतसि । चेद् भोजो नीयते यस्मात् तन्नृपेण स हन्यते ॥ ७३४ ॥
नोचेत् कंटिकया बाढं मूर्खोऽसाविति संहितः । शिष्याणां विद्रवैः कर्त्ता शासनस्याप्रभावनाम् ॥ ७३५ ॥
सांप्रतं सांप्रतं मृत्युस्तस्मात् प्रायोपवेशनान्[7] । तत्र कृत्वातिगीतार्थकारिताराधनादृतः ॥ ७३६ ॥
स्वयमध्यात्मयोगेन दिनानामेकविंशतिः । अतिवाह्य क्षुधा-तृष्णा-निद्रादिद्वेषिविग्रही ॥ ७३७ ॥
आत्मानं दशमद्वाराभिरवासयदुद्यतः । ईशाने नाकितां प्राप बप्पभट्टिर्मुनीश्वरः ॥७३८॥–विशेषकम् ।

विक्रमतः शून्यद्वयवसुवर्षे[8] (८००) भाद्रपदतृतीयायाम् ।
रविवारे हस्तर्क्षे जन्माभूद् बप्पभट्टिगुरोः ॥ ७३९ ॥
षड्वर्षस्य व्रतं चैकादशे वर्षे च सूरिता[9] ।
पंचाधिकनवत्या च प्रभोरायुः समर्थितम् ॥ ७४० ॥
शर-नंद-सिद्धिवर्षे (८९५) नभःशुद्धाष्टमीदिने ।
स्वातिभेऽजनि पंचत्वमामराजगुरोरिह ॥ ७४१ ॥

---

1 B चन्द्रस्थितो । 2 A द्वारि । 3 निर्वृत्तो । 4 A पंचापंच° । 5 N ततोथ सम° । 6 N राजा । 7 N °वेशने ।
8 A °वर्षैः । 9 N सूरिणा ।

इत्याकर्ण्यामराजस्य पौत्रोऽतिस्फारशोकभूः । भोजः संकुचिताम्भोजवदनं विललाप च ॥ ७४२ ॥
विवेकौघो[1]ऽविवेकेन जितः[2] सारस्वतं हृतम्[3] । अनुत्सेकस्तिरोधत्त ज्ञाने दत्तो जलांजलिः[4] ॥ ७४३ ॥
इति क्षणं विमृश्यासावादिदेश चिताकृते । प्रेष्यानदूष्यचारित्रो गुरुभक्तिपवित्रितः ॥ ७४४ ॥
पितामहवियोगेऽपि वर्द्धितस्तस्य मित्रतः । अनाथ इव लोकेऽत्र तत्रापि त्रिदिवं गते ॥ ७४५ ॥
5 ततः क्षणमपि स्थातुं न शक्तः पृथिवीतले । पितृवत्सुहृत्सूरेरनुव्रज्याऽधुनोचिता ॥ ७४६ ॥
मातृपक्षप्रधानानां बोधं चावगणय्य सः । गुरुमृत्युभुवं[5] प्राप गन्ता लीलावने यथा ॥ ७४७ ॥
भुजदण्डे जनन्या च धृत्वाऽश्वाजल्पि तत्क्षणम् । निर्वीरात्वनिषेधाय राज्यस्य कृपयापि च ॥ ७४८ ॥
श्वसुरद्वयसंहारे जाते ते विद्विषन् पिता । जितंमन्यो महापापी त्वत्प्रजाः पीडयिष्यति ॥ ७४९ ॥
हृदयालुः कृपालुश्च तत् त्वं प्रार्थनया मम । कर्मतो विरमायुष्मात् हृदानन्दन नन्दन[7] ! ॥ ७५० ॥
10 इति मातुरलंघ्यत्वात् श्रीभोजः साश्रुलोचनः । उत्तरीयं निचिक्षेप चितायां गुरुपृष्ठतः ॥ ७५१ ॥
अस्तोकशोकसम्भारधारणक्लान्तदेहरुक् । ऊ(औ ?)र्द्धदेहिकमाधत्त कृत्यं[8] पैतामहं प्रभोः ॥ ७५२ ॥

§ २९. अन्यदा मातुलैः साकमाकस्मिकदवोपमः । तातं शमयितुं मायात् कन्यकुब्जजनान्वितः ॥ ७५३ ॥
प्रविष्टो[9] गोपुरेणाथ द्राग् राजद्वारसंनिधौ । मालाकारं ददर्शाथ बीजपूरत्रयान्वितम् ॥ ७५४ ॥
तेन ढौकनकं[10] स्वामिपुत्रस्यास्य कृतं तदा । तं गृहीत्वा ययावन्तःसौधं रोधं विशन् विशाम्[11] ॥ ७५५ ॥
15 सह कंटिकया तत्रोपविष्टं प्रवरासने । जघान हृदये घातैस्त्रिभिस्तैर्बीजपूरकैः ॥ ७५६ ॥
महाप्राणकृताघातादुभौ प्राणैर्वि(र्व्य)युज्यताम् । प्रागुप्यातपुत्रहत्यांहोभीतैरिव विनिर्गतैः ॥ ७५७ ॥
अपद्वाराद् बहिः कृष्टा[12] कोष्टारमिव वेश्मनः । दुन्दुकं कन्दुकस्थित्या क्रीडया प्रेरितं[13] नरैः ॥ ७५८ ॥
निस्वानस्वानपूर्वं सोऽविशत् कंठीरवासने । प्रणतः सर्वसामन्तैः [14]सपौरैर्मंत्रिभिस्तथा ॥ ७५९ ॥
श्रीमदामविहाराख्यतीर्थे नन्तुं ययौ नृपः । तत्र शिष्यद्वयं दृष्टं बप्पभट्टेर्महामुनेः[15] ॥ ७६० ॥
20 विद्याव्याक्षेपतस्ताभ्यां न चक्रे भूमिपोचितम् । अभ्युत्थानादिसन्मानं श्रीभोजोऽथ व्यचिन्तयत् ॥७६१॥
अज्ञातव्यवहारो हि शिष्यावेतौ प्रभोः पदे । न युज्येते यतो विश्वे व्यवहारो महत्वभूः ॥ ७६२ ॥
श्रीनन्नसूरिराचार्यः श्रीमान् गोविन्द इत्यपि । आहूय पूजितौ राज्ञा पट्टे च स्थापितौ प्रभोः ॥ ७६३ ॥
मोढेरे प्रहितो नन्नसूरिः सूरिगुणोन्नतः[16] । पार्श्वे गोविन्दसूरिश्चावस्थाप्यत नृपेण तु ॥ ७६४ ॥
भोजराजस्ततोऽनेकराज्यराष्ट्रमहामहः[17] । आमादभ्यधिको जज्ञे जैनप्रवचनोन्नतौ ॥ ७६५ ॥
25 वप्पभट्टिर्भद्रकीर्त्तिर्वादिकुञ्जरकेसरी ।
ब्रह्मचारी गजवरो राजपूजित इत्यपि ॥ ७६६ ॥
विख्यातो विरुदैर्जैनशासनक्षीरसागरे । कौस्तुभः[18] कृतसंस्थानः पुरुषोत्तमवक्षसि ॥ ७६७ ॥
जयताज्जगतीपीठे धर्मकल्पद्रुमाङ्कुरः । इदानीमपि यन्नाममन्त्रो जाड्यविषापहः ॥७६८॥—त्रिभिर्विशेषकम् ।

---

1 A विवेकौघो । 2 A जितसार° । 3 N हितं । 4 A जलांजलि । 5 N पितृवत्सु । 6 A गुरुमृत्युभुवं । 7 A नन्दनः । 8 A कृतं । 9 N प्रतिष्ठो । 10 A ढौकनके । 11 N दिशलिशाम् । 12 A कृत्वा । 13 N प्रेषितं । 14 A सपूरे° । 15 A महामतिः, B महामति । 16 N सूरिगणो° । 17 N राज्यभ्रष्टमहमहः । 18 A B कौस्तुभकृतसंस्थान° ।

२८९

इत्थं श्रीबप्पभट्टिप्रभुचरितमिदं विश्रुतं विश्वलोके
प्रागविद्वत्ख्यातशास्त्रादधिगतमिह यत् किंचिदुक्तं तदल्पम् ।
पूज्यैः क्षन्तव्यमत्रानुचितमभिहितं यत्तथा तत्प्रसादात्
एतत्सर्वाभिगम्यं भवतु जिनमतस्थैर्यपात्रं ध्रुवं च ॥ ७६९ ॥

श्रीचन्द्रप्रभसूरिपट्टसरसीहंसप्रभः श्रीप्रभा-
चन्द्रः सूरिरनेन चेतसि कृते श्रीराममलक्ष्मीभुवा । 5
श्रीपूर्वर्षिचरित्ररोहणगिरौ श्रीबप्पभट्टेः कथा
श्रीप्रद्युम्नमुनीन्दुना विशदितः शृङ्गः किलैकादशः ॥ ७७० ॥

दुष्कर्मजैत्रः पुरुषोत्तमाङ्गाज्जन्माविशुद्धाक्षरहेतुमूर्तिः ।
गिरीशतुङ्गाध्वपुरःस्थितश्रीः प्रद्युम्नदेहः शिवतातिरस्तु ॥ ७७१ ॥ 10

श्रीकन्यकुब्जक्षितिपप्रबोधकर्तुस्तथा पूर्वगतश्रुतेन ।
विश्वे समस्तानवपाठवन्द्यैः श्रीमद्रकीर्तेर्नरिनर्ति कीर्त्तिः* ॥ ७७२ ॥

॥ ग्रंथाग्र० ८२०, † उभयं २९४० ॥

---

* A आदर्शे नोपलभ्यते पद्यमिदम् । † B आदर्शे इयं संख्या '८४०,' तथा '२९६०' प्रमिता ।

परिशिष्ट : १.

९. अथ श्रीबप्पभट्टिसूरिप्रबन्धः ।

15 § ३८) गूर्जरदेशे पाडलापुरनगरे जितशत्रू राजा राज्यं करोति स्म । तत्र* श्रीसिद्धसेननामा सूरीश्वरोऽस्ति स्म । स मोढेरपुरे महास्थाने श्रीमहावीरनमस्करणाय गतः । श्रीमहावीरं नत्वा तीर्थो-[illegible] कृत्वा रात्रावात्मारामरतो योगनिद्रया स्थितः सन् स्वप्नं ददर्श । यथा–केसरिकिशोरको देवगृहोपरि क्रीडति । स्वप्नं लब्ध्वाऽजागरीत् । माङ्गल्यस्तवनान्यपाठीत् । प्रातश्चैत्यं गतः । तत्र षड्वार्षिको बाल एको बालांशुमालिसमद्युतिराजगाम । सूरिणा पृष्टः–भो अर्भक ! कस्त्वम् ? 20 कुत आगतः ? । तेनोक्तम्–पञ्चालदेशे डुंबाउधीग्रामे बप्पाख्यः क्षत्रियः । तस्य भट्टिर्नाम सधर्म-चारिणी । तयोः 'सूरपालो नाम पुत्रोऽहम् । मत्तातस्य बहवो भुजबलगर्विताः प्रचुरपरिच्छदाः शत्रवः सन्ति । तान्सर्वान्हन्तुमहं सन्नह्य चलन्नासम् । पित्रा निषिद्धः–वत्स ! बालस्त्वम्, नास्मै कर्मणे प्रगल्भसे । अलमुद्योगेन । ततोऽहं क्रुद्धः । किमनेन निरभिमानेन पित्रापि, यः स्वयमरीन्न हन्ति मामपि घ्नन्तं निवारयति । अपमानेन मातापितरावनापृच्छ्यात्र समागतः । 25 सूरिणा चिन्तितम्–अहो दिव्यं रत्नम् ! । न मानवमात्रोऽयम् । 'तेजसां हि न वयः समीक्ष्यते ।' इति विमृश्य बाल आलेपे–वत्सक ! अस्माकं पार्श्वे तिष्ठ, निजगृहाधिकसुखेन । बालेनोक्तम्–महान्प्रसादः । स्वस्थानमानीतः । सङ्घो हृष्टस्तद्रूपविलोकनेन । दृष्टयस्तस्मिं न 'मन्वते । पाठ-यित्वा विलोकितः । एकाहेन श्लोकसहस्रमध्यगीष्ट । गुरवस्तुतुषुः' । 'रत्नानि पुण्यप्रचयप्राप्याणि ।' धन्या वयम् । तेन बालेनाप्यल्पदिनैर्लक्षण-तर्क-साहित्यादीनि भूयांसि शास्त्राणि पर्यशीलिषत ।

---

* एषा कोष्टकगता पंक्तिः केवलं P पुस्तके दृश्यतेऽतः प्रक्षिप्तप्राया प्रतिभाति । 1 P यातान् । 2 P बाले सितो । 3 P समजनि । 4 B सिद्धिकरिणा । 5 P पाटला० । 6 B अत्र । 7 B सुर० । 8 B सम्यन्ते; P सन्यते । 9 C तुतुषः; D तुषाः; P तुहुषुः ।

ततो गुरवो डुंबाउधीग्रामं जग्मुः । बालस्य पितरौ वन्दितुमागतौ । गुरुभिरालापितौ–पुत्रा [illegible] भूयांसोऽपि । किं तैः संसारावकरकृमिभिः[1] ? । अयं तु युवयोः पुत्रो व्रतमीहते । दीयतां [illegible] । गुरूणां धर्मः । 'नष्टं मृतं सहन्ते हि पितरो निजतनयम् ।' श्लाघ्योऽयं भवं निस्तितीर्षुः । पितृभ्यामुक्तम्–भगवन् ! अयमेक एव नः कुलतन्तुः । कथं दातुं शक्यते ? । तावता सविधस्थेन सूरपालेन गदितम्–अहं चारित्रं गृह्णाम्येव । 5

६१. यतः–सा बुद्धिर्विलयं प्रयातु कुलिशं तत्र श्रुते[3] पात्यताम्, वल्गन्तः प्रविशन्तु ते हुतभुजि ज्वालाकराले गुणाः ।
यैः सर्वैः शरदेन्दुकुन्दविशदैः प्राप्तैरपि प्राप्यते, भूयोऽप्यत्र पुरन्ध्रिरन्ध्रनरकक्रोडाधिवासव्यथा ॥ १ ॥

ततो ज्ञाततन्निश्चयाभ्यां तन्मातापितृभ्यां जल्पितम्–भगवन् ! गृहाण पात्रमेतत् । परं 'बप्पभट्टिः' इति नामास्य कर्तव्यम् । गुरुभिर्भणितम्–एवमस्तु । कोऽत्र दोषः । पुण्यवन्तौ युवाम् । ययोरयं लाभः सम्पन्नः । बप्प-भट्टी आपृच्छय सूरपालं गृहीत्वा सिद्धसेनाचार्या मोढेरकं गताः । 10

६२. शताष्टके वत्सराणां गते विक्रमकालतः । सप्ताधिके राधशुक्लतृतीयादिवसे गुरौ ॥ २ ॥

दीक्षा दत्ता । 'बप्पभट्टिः' इति नाम विश्ववल्लभं जुघुषे । सङ्घप्रार्थनया तत्र चतुर्मासकं कृतम् ।

§३६) अन्यदा बहिर्भूमिं गतस्य बप्पभट्टेर्महतीं वृष्टिमतनिष्ट घनः । क्वापि देवकुले स्थितः सः । तत्र देवकुले महाबुधः[4] कोऽपि पुमान् समागतः । तत्र देवकुले प्रशस्तिकाव्यानि रसाढ्यानि गम्भीरार्थानि तेन बप्पभट्टिपार्श्वाद्व्याख्यापितानि । ततः स बप्पभट्टिना समं वसतिमायातः । गुरु- 15 भिराशीर्भिरभिनन्दितः । आम्नायं स पृष्टः । ततोऽसौ जगाद–भगवन् ! कन्यकुब्जदेशे गोपालगिरिदुर्गनगरे यशोवर्मनृपतेः[5] सुयशादेवीकुक्षिजन्मा[6] नन्दनोऽहम् । यौवने[8] च निरर्गलं धनं लीलया व्ययन् पित्रा कुपितेन शिक्षितः–वत्स ! धनार्जकस्य कृच्छ्रमस्थानव्ययी पुत्रो न वेत्ति तातस्य । मितव्ययो भव । ततोऽहं कोपादिहागमम् । गुरवोऽप्यूचुः–किं ते नाम ? । तेनापि खटिकया भुवि लिखित्वा दर्शितम्–'आम' इति । महाजनाचारपरंपरेदृशी 'स्वनाम नामादवते न साधवः ।' 20 तस्यौन्नत्येन गुरवो हृष्टाः । चिन्तितं च तैः–पूर्वं श्रीरामसैन्ये[9] दृष्टोऽसौ पाण्मासिकः शिशुः ।

६३. पीलुवृक्षमहाजाल्यां[10] वस्त्रान्दोलकमाश्रितः[11] । अचल[या]च्छायया च पुण्यपुरुषो निर्णीतः ॥ ३ ॥

ततस्तज्जननी वन्यफलानि विचिन्वानाऽस्माभिर्भणिता–वत्से ! का त्वम् ? । किं च[12] ते कुलम् ? । [*साऽवादीत् निजं कुलम्] अहं राजपुत्री कन्यकुब्जेशयशोवर्मपत्नी सुयशा नाम । अहमस्मिन्सुते गर्भस्थे राति दृढकार्मणवशीकृतधवया कृतप्रमाणयाऽकृत्ययेव क्रूरया सपत्न्या 25 मिथ्या परपुरुषदोषमारोप्य गृहान्निष्कासिता । अभिमानेन श्वशुरकुल-पितृकुले हित्वा भ्रमन्तीह समागता वन्यवृत्त्या जीवामि । बालं च पालयामि । इदं श्रुत्वाऽस्माभिः सा उक्ता–वत्से ! अस्मच्चैत्यं समागच्छ । स्वं वत्सं प्रवर्द्धय[13] । तया तथा कृतम् । सपत्न्यपि बहुसपत्नीकृतमारणप्रयोगैः[14]-र्नेमार । ततो विशिष्टपुरुषैः कन्यकुब्जेशो यशोवर्मा विज्ञप्तः–देव ! सुयशा राज्ञी निर्दोषाऽपि तदा देवेन सपत्नीवचसा निष्कासिता सा प्रत्यानीयते । राज्ञा सा स्वसौधमानायिता सपुत्रा 30 गौरविता च ।

---

1 A कृतिभिः । 2 P नास्ति । 3 A श्रुतः । 4 B महाबोधः । 5 C यशोधर्म° । 6 P सुयशो° । 7 'कुक्षि' नास्ति । 8 CP यौवनेन । 9 PC °सैन्ये ग्रामे । 10 P महाजल्यां । 11 P वस्त्रदोलक° । 12 BC दा तव । * PC आदर्शे एवैष पाठः । 13 PC वत्कृत° । 14 C वर्धय । 15 PC प्रयोगेण ।

२८९

अन्यदा विहरन्तो वयं तस्या देशं गताः। तया पूर्वप्रतिपन्नं स्मरन्त्या वयं वन्दिताः पूजिताः। अनेन आमनाम्ना तत्सुतेन भाव्यम्। एवं चिरं विभाव्य सूरयस्तमूचुः-वत्स! वस निश्चिन्तो निजेन सुहृदा बप्पभट्टिनाम्ना सममस्मत्सन्निधौ। त्वं गृहाण कलाः। कास्ताः?-लिखितम् १. गणितम् २. गीतम् ३. नृत्यम् ४. पठितम् ५. वाद्यम् ६. व्याकरणम् ७. छन्दो ८. ज्योतिषम् ९. 5 शिक्षा १०. निरुक्तम् ११. कात्यायनम् १२. निघण्टुः १३. पत्रच्छेद्यम् १४. नखच्छेद्यम् १५. रत्नपरीक्षा १६. आयुधाभ्यासः १७. गजारोहणम् १८. तुरगारोहणम् १९. तयोः शिक्षा २०. मन्त्रवादः २१. यन्त्रवादः २२. रसवादः २३. खन्यवादः २४. रसायनम् २५. विज्ञानम् २६. तर्कवादः २७. सिद्धान्तः २८. विषवादः २९. गारुडम् ३०. शाकुनम् ३१. वैद्यकम् ३२. आचार्यविद्या ३३. आगमः ३४. प्रासादलक्षणम् ३५. सामुद्रिकम् ३६. स्मृतिः ३७. पुराणम् ३८. इतिहासः ३९. वेदः ४०. 10 विधिः ४१. विद्यानुवादः ४२. दर्शनसंस्कारः ४३. खेचरीकला ४४. अमरीकला ४५. इन्द्रजालम् ४६. पातालसिद्धिः ४७. धूर्तशम्बलम् ४८. गन्धवादः ४९. वृक्षचिकित्सा ५०. कृत्रिममणिकर्म ५१. सर्वकरणी ५२. वश्यकर्म ५३. पणकर्म ५४. चित्रकर्म ५५. काष्ठघटनम् ५६. पाषाणकर्म ५७. लेपकर्म ५८. चर्मकर्म ५९. यन्त्रकरसवती ६०. काव्यम् ६१. अलङ्कारः ६२. हसितम् ६३. संस्कृतम् ६४. प्राकृतम् ६५. पैशाचिकम् ६६. अपभ्रंशम् ६७. कपटम् ६८. देशभाषा ६९. धातुकर्म 15 ७०. प्रयोगोपायः ७१. केवलीविधिः ७२. एताः सकलाः कलाः शिक्षितवान्। लक्षण-तर्कादि-ग्रन्थान् परिचितवान्। बप्पभट्टिना साकमस्थिमज्जन्यायेन प्रीतिं बद्धवान्।

६४. यतः-आरंभगुर्वी[1] क्षयिणी क्रमेण ह्रस्वा पुरा वृद्धिमती च पश्चात्।
दिनस्य पूर्वार्द्धपरार्द्धभिन्ना छायेव मैत्री खलसज्जनानाम्॥ ४॥

कियत्यपि गते[2] काले यशोवर्मनृपेणासाध्यव्याधितेन पट्टाभिषेकार्थमामकुमाराकारणाय 20 प्रधानपुरुषाः प्रेषिताः। अनिच्छन्नपि तैस्तत्र नीतः। पितुर्मिलितः[3]। पित्राऽऽलिङ्गितः सबाष्पगद्गदमुपालब्धश्च-

६५. धिग् वृत्तवृत्तमुचितां शुचितां धिगेतां धिक् कुन्दसुन्दरगुणग्रहणाग्रहित्वम्।
चक्रेऽङ्गसीम्नि तव मौक्तिक! येन वृद्धिर्वार्द्धेर्न तस्य कथमप्युपयुज्यसे यत्॥ ५॥

अभिषिक्तः स्वराज्ये। शिक्षितश्च प्रजापालनादौ। एतत्कृत्वा यशोवर्मा अर्हन्तं त्रिधा[4] शुद्ध्या 25 शरणं श्रयन् स्वर्गं गतः। आमराजा पितुरौर्ध्वदेहिकं कृतवान्। द्विजादिदीनलोकाय वित्तं दत्तवान्। लक्षद्वितयमश्वानाम्, हस्तिनां रथानां च प्रत्येकं चतुर्दशशती, एका कोटी पदातीनाम्। एवं राज्यश्रीः श्रीआमस्य न्यायरामस्य। तथापि बप्पभट्टिमित्रं विना पलालपूलप्रायं मन्यते स्म। ततो मित्रानयनाय प्रधानपुरुषानप्रैषीत्। तैस्तत्र गत्वा विज्ञप्तम्-हे श्रीबप्पभट्टे! आमराजः समुत्कण्ठयाऽऽह्वयति। आगम्यताम्। बप्पभट्टिना गुरूणां वदनकमलमवलोकितम्। तैः सङ्घानुमत्या 30 गीतार्थयतिभिः समं बप्पभट्टिमुनिः प्रहितः। आमस्य पुरं गोपालगिरिं प्राप। राजा सबलवाहनः संमुखमगात्। प्रवेशमहमकार्षीत्। सौधमानैषीत्। अवोचत च-भगवन्! अर्द्धराज्यं गृहाण। तेनोक्तम्-अस्माकं निर्ग्रन्थानां सावद्येन राज्येन किं कार्यम्?। यतः-

---

1 C आपातगुर्वी। 2 P नास्ति। 3 C मिलितः। 4 P त्रिविध॰।

६६. अनेकयोनिसम्पाताऽनन्तबाधाविधायिनी । अभिमानफलैवेयं राज्यश्रीः सा विनश्वरी ॥ ६ ॥

§ ३७) ततो राज्ञाऽसौ तुङ्गे धवलगृहे स्थापितः । प्रातः सभामागताय बप्पभट्टये नृपेण सिंहासनं मण्डापितम् । तेन गदितम्-ऊर्वीपते! आचार्यपदं विना सिंहासनं न युक्तम् । गुर्वाशातना भवेत् । ततो राज्ञा बप्पभट्टिः प्रधानसचिवैः सह गुर्वन्तिके प्रहितः । विज्ञप्तिका च[1] दत्ता-यदि मम प्राणैः कार्यं तदा प्रसद्य सद्योऽयं महर्षिः सूरिपदे स्थाप्यः । 5

योग्यं सुतं च शिष्यं च नयन्ति गुरवः श्रियम् ।

स्थापितमात्रश्चात्र शीघ्रं प्रेषणीयः । अन्यथाऽहं न भवामि । मा विलम्ब्यतामिति । अखण्डप्रयाणकैर्मोढेरकं प्राप्ताः[2] । सचिवैः सूरयो विज्ञप्ताः-प्रभो! राजविज्ञप्त्यर्थोऽनुसार्यः । उचितज्ञा हि भवादृशाः ।

अथ श्रीसिद्धसेनाचार्यैर्बप्पभट्टिः सूरिपदे स्थापितः । तदङ्गे श्रीः साक्षादिव सङ्क्रामन्ती दृष्टा । 10 रहश्च शिक्षा दत्ता-वत्स! तव राजसत्कारो भृशं भावी । ततश्च लक्ष्मीः प्रवर्त्स्यति । तत इन्द्रियजयो दुष्करः । त्वं महाब्रह्मचारी भवेः[3] ।

विकारहेतौ सति विक्रियन्ते येषां न चेतांसि त एव धीराः ।

अनेन महाव्रतेन महत्तरः स्फुरिष्यसि ।

६७. एकादशाधिके तत्र जाते वर्षशताष्टके । विक्रमात्सोऽभवत्सूरिः कृष्णचैत्राष्टमीदिने ॥ ७ ॥ 15

गुरुणा आमराजसमीपे प्रेषितः । तत्र प्राप्तः । गोपगिरेः प्रासुकवनोद्देशे स्थितः । राजा अभ्यागत्य महामहेन तं पुरीं प्रावीविशत् । श्रीबप्पभट्टिसूरिणा तत्र देशना क्लेशनाशिनी दत्ता-

६८. श्रीरियं प्रायशः पुंसामुपस्कारैककारणम् । तामुपस्कुर्वते ये तु रत्नसूस्तैरसौ रसा ॥ ८ ॥

आमेन गुरूपदेशादेकोत्तरशतहस्तप्रमाणः प्रासादः कारयामासे गोपगिरौ । अष्टादशभारप्रमाणं श्रीवर्द्धमानबिम्बं तत्र निवेशयांबभूवे । प्रतिष्ठा विधापयांचक्रे । तत्र चैत्ये मूलमण्डपः 20 सपादलक्षेण सौवर्णटङ्कैर्निष्पन्न इति वृद्धाः[7] प्राहुः । आमः कुञ्जरारूढः सर्वर्द्ध्या चैत्यवन्दनाय याति ॥ मिथ्यादृशां दृशौ सैन्धवेनेव[8] पूर्येते सम्यग्दृशां त्वमृतेनेव । एवं प्रभावना । प्रातर्नृपो मौलमनर्घ्यं स्वं सिंहासनं सूरये निवेशापयति । तद् दृष्ट्वा विप्रैः क्रुधा ज्वलितैर्भूपो विज्ञप्तःदेव! श्वेताम्बरा अमी शूद्राः । एभ्यः सिंहासनं किम् । अथास्तां तत् । परं '[9]हसीयो भवतु[10]' । मुहुर्मुहुस्तैरित्थं विज्ञप्त्या कदर्थ्यमानः पार्थिवो मौलसिंहासनं कोशगं कारयित्वाऽन्यल्लघ्वारू- 25 ढपत् । प्रत्यूपे सूरीन्द्रेण तद् दृष्ट्वा रुष्टेनेव राज्ञोऽग्रे पठितम्-

६९. मर्दय मानमतङ्गजदर्पं विनयशरीरविनाशनसर्पम् । क्षीणो दर्पाद्दशवदनोऽपि यस्य न तुल्यो भुवने कोऽपि ॥९॥

इदं श्रुत्वा राज्ञा ह्रीणेन तदा[11] भूयो मूलसिंहासनमनुज्ञातम् । अपराधः क्षमितः ।

एकदा सपादकोटी हेम्नां दत्ता गुरुभ्यः । तैर्निरीहैः सा जीर्णोद्धारे ऋद्धियुक्तश्रावकपार्श्वाद् व्ययिता । 30

---

1 P 'च' नास्ति । 2 PC प्राप्तो बप्पभट्टिः । 3 C भव । 4 P धीराः । 5 CD तां । 6 B •हस्तमात• । 7 P बुधाः । 8 P सैन्धवेन । 9 A हसायो (काष्ठमयः इति टिप्पनी); CP हसीयो । 10 P भवतु न महत् । 11 CP सदा ।

अन्यदा शुद्धान्ते प्रम्लानवदनां वल्लभां दृष्ट्वा प्रभोः पुरो गाथार्द्धं राजाऽऽह–

७०. अज्जवि सा परितप्पइ कमलमुही अत्तणो पमाएण ।

समस्येयम् । प्रभुः स्माह–

पढमविबुद्धेण तए जीसे पच्छाइयं अंगं ॥ १० ॥

5 राजा आत्मसंवादाच्चमत्कृतः । अन्यदा प्रियां पदे पदे मन्दं मन्दं सञ्चरन्तीं दृष्ट्वा गाथार्द्धं राजा जगाद

७१. बाला चंकंमंती पए पए कीस कुणइ मुहभंगं ।

सूरिराह–

नूणं रमणपएसे मेहलिया छिवइ[1] नहपंतिं ॥ ११ ॥

10 इदं श्रुत्वा राजा मुखं निःश्वासहतदर्पणसमं दध्रे–अमी मदन्तःपुरे कृतविप्लवा इति धिया । तथाचार्यैः क्षणार्द्धेनावगतम् । चिन्तितं च–अहो विद्यागुणोऽपि दोषतां गतः ! ।

७२. जलधेरपि कल्लोलाश्चापलानि कपेरपि । शक्यन्ते यत्नतो रोद्धुं न पुनः प्रभुचेतसः ॥ १२ ॥

रात्रौ सूरिः संघमप्यनापृच्छ्य राजद्वारकपाटसम्पुटतटे काव्यमेकं लिखित्वा पुराद्बहिर्ययौ । तद्यथा–

15 ७३. यामः स्वस्ति तवास्तु रोहणगिरे ! मत्तः स्थितिप्रच्युता, वर्तिष्यन्त इमे कथं कथमिति स्वप्नेऽपि मैवं कृथाः ।
श्रीमंस्ते मणयो वयं यदि भवल्लब्धप्रतिष्ठास्तदा, ते शृङ्गारपरायणाः क्षितिभुजो मौलौ करिष्यन्ति नः ॥ १३ ॥

७४. [*अस्मान् विचित्रवपुषश्चिरपृष्ठलग्नान् किं वा विमुञ्चसि विभो ! यदि वा विमुञ्च ।
हा हन्त ! केकिवर ! हानिरियं तवैव भूपालमूर्द्धनि पुनर्भविता स्थितिर्नः ॥ १४ ॥

७५. *हंस जिहिं गय तिहिं गया महिमण्डणा हवंति । छेहु तांह सरोवरह जं हंसे मुच्चंति ॥ १५ ॥]

20 § ३८) दिनैः कतिपयैर्गौडदेशान्तर्विहरन् लक्षणावतीनाम्न्याः पुरो[3] बहिरारामे समवात्सीत्[4] । तत्र पुरि धर्मो नाम राजा । स च गुणज्ञः । तस्य सभायां वाक्पतिनामा कविराजोऽस्ति । तेन सूरीणामागमनं लोकादवगतम् । ज्ञापितश्च राजा । राज्ञा प्रवेशमहः कारितः । पूर्मध्येऽसौ[5] सौधोपान्ते गुरुस्तुङ्गगृहे स्थितः[6] । राजा नित्यं वन्दते । कवयो जिता[7] रञ्जिताश्च । प्रभावनाः प्रैधते स्म । यशश्च कुन्दशुभ्रम् । † [राजा प्रोचे–

25 ७६. अदृष्टे दर्शनोत्कण्ठा दृष्टे विरहभीरुता । दृष्टेन वाप्यदृष्टेन भवता नाप्यते सुखम् ॥ १६ ॥

निर्बन्धे सूरिराह–आमश्चेत्स्वयमायास्यति तदा वयं यास्यामो नान्यथा–इति प्रतिज्ञाय स्थापिताः पुण्यलाभं कुर्वन्ति ।]

इतश्च यदा बप्पभट्टिः कृतविहारः प्रातः श्रीआमपार्श्वं नायातस्तदा तेन सर्वत्रावलोकितो न लब्धः । राजा[8] जातो विलक्षः । 'यामः स्वस्ति तवास्तु' इत्यादि काव्यं दृष्टम्[9] । अक्षराण्युपल-

30 क्षितानि । ध्रुवं स मां मुक्त्वा क्वापि गत एवेति निर्णीतम् । अन्यदा बहिर्गतेन राज्ञा [10]महा-भुजङ्गमो दृष्टः । तं मुखे धृत्वा वाससाऽऽच्छाद्य सौधं गतः । कविवृन्दाय समस्यामर्पितवान्–

---

1 BG छिवइ; PC छिवइ । 2 P ०मनाइ० । * एतत्पद्यद्वयं P पुस्तक एवोपलभ्यते, नान्यत्र । 3 P नगर्याः । 4 BDP समवासार्षीत् । 5 BP नास्ति 'असौ' । 6 P स्थापितः । 7 AC नास्ति 'जिताः' । † P पुस्तक एवैष कोष्ठकगतः पाठः प्राप्यते । 8 CP नास्ति । 9 P काव्यानि दृष्टानि । 10 P 'महा' नास्ति ।

७७. [शस्त्रं शास्त्रं कृषिर्विद्या अन्यो यो येन जीवति।]

इति। पूरिता सर्वैरपि। न तु नृपश्चमत्चकार, हृदयाभिप्रायाकथनात्। तदा बप्पभट्टिं पादं स्मृतवान्। सा हृदयसंवादिनी गीस्तत्रैव। अथ स पटहमघीवदत्। तत्रेदमजूघुषत्–यो मम हृद्गतां समस्यां पूरयति तस्मै हैमटङ्कलक्षं ददामि। तदा गोपगिरीयो द्यूतकारः कश्चिद् गौडदेशं गतः। स बप्पभट्टिसूरीणामग्रे तत्समस्यापदद्वयं कथितवान्। सूरिणा पश्चार्द्धं पेठे–

सुगृहीतं च कर्तव्यं कृष्णसर्पमुखं यथा॥ १७॥

इति। स हि भगवान् पङ्क्तिकृतित्यागी सिद्धसारस्वतो गगनगमनशक्त्या विविधतीर्थवन्दनशक्तियुक्तस्तस्य कियदेतत्। स द्यूतकारस्तत्पादद्वयं गोपगिरौ श्रीआमाय[1] निवेदितवान्। राजा दध्वान–अहो सुघटितत्वमर्थस्य!। तं पप्रच्छ–केन कथं पूरिता समस्या?। द्यूतकृदाह–लक्षणावत्यां बप्पभट्टिसूरिणा ज्ञानभूरिणा[2] इति। तस्योचितं दानं चक्रे।

अन्यदा राजा नगर्या बहिर्ययौ। न्यग्रोधद्रुमाधः पान्थं मृतं ददर्श। शाखायां लम्बमानं करपत्रकमेकं विप्रुषां व्यूहं स्रवन्तं गाथार्द्धं च विशिष्टे ग्राव्णि लिखितं खटिकया[3] तदपश्यत्।

७८. तइया मह निग्गमणे पियाइ थोरंसुएहिं जं रुण्णं।

तदपि समस्यापादद्वयं राज्ञा कविभ्यः कथितम्। न केनापि सुष्ठु पूरितम्। राजा चिन्तयति स्म–

७९. वेश्यानामिव विद्यानां मुखं कैः कैर्न चुम्बितम्।
हृदयग्राहिणस्तासां[4] द्वित्राः सन्ति न सन्ति वा॥ १८॥

हृदयग्राही स एव मम मित्रं सूरिवरः। स एव [दौरोदरिको] नृपेणोपसूरि प्रैषि। सूरिणाऽक्षिनिमेषमात्रेण पूरिता समस्या–

करवत्तयबिंदुअनिवडणेण तं मज्झ संभरियं॥ १९॥

तत्पुनर्द्यूतकाराच्छ्रुत्वा राज्ञा हृष्टेनोत्कण्ठितेन सूरेराह्वानाय वाग्मिनः सचिवाः प्रस्थापिताः। उपालम्भसहिता विज्ञप्तिश्च ददे। प्राप्तास्ते तत्र। दृष्टास्तैस्तत्र सूरयः। उपलक्ष्य वन्दिताः। राजविज्ञप्तिर्दत्ता। तत्र लिखितं वाचितं गुरुभिः–

८०. न गङ्गां गाङ्गेयं सुयुवतिकपोलस्थलगतं न वा शुक्तिं मुक्तामणिरुरसिजस्पर्शरसिकः।
न कोटीरारूढः स्मरति च सवित्रीं मणिचयस्ततो मन्ये विश्वं स्वसुखनिरतं स्नेहविरतम्॥ २०॥

८१. छायाकारणि सिरि[5] धरिय पच्चवि[6] भूमि पडंति। पत्तहं इहु[7] पत्तत्तणउं तरुअर कांइ करंति॥ २१॥

सचिवा अप्यूचुः–स्वामिन्! आमराजो निर्व्याजप्रीतिर्विज्ञापयति–शीघ्रमागम्याऽयं देशो वसन्तावतंसितोद्यानलीलां लम्भनीयः। भवद्वाग्रससंलुब्धानामस्माकमितरकविवाग् न रोचते।

८२. कथासु ये लब्धरसाः कवीनां ते नानुरज्यन्ति कथान्तरेषु। न ग्रन्थिपर्णप्रणयाश्चरन्ति कस्तूरिकागन्धमृगास्तृणेषु॥२२॥

तदाकर्ण्य लेखं दत्त्वा सूरिभिः सचिवाः प्रोचिरे–श्रीआमो गीष्पतिसमप्रज्ञ एवं भाषणीयः–

---

1 CP आमाग्रे। 2 P नास्त्येतत्पदम्। 3 BCP कठिन्याऽपश्यत्। 4 P तेषां। 5 P सिर। 6 BCG पच्छिवि। 7 C एहु; P एउ; G यहु। 8 AB वाक्यरस०। 9 C निग्रन्थि; P न गन्धि।

अस्माकमिति हि[1] प्रतिज्ञाऽऽस्ते धर्मेण राज्ञा सह-स्वयमामः समेत्य त्वत्समक्षं यदाऽस्माना-कारयते किल, तदा तत्र यामो नान्यथा इति। प्रतिज्ञालोपश्च नोचितः सत्यवादिनां प्रतिष्ठा-वताम्। ततो मन्त्रिण उपकन्यकुब्जेशमाजग्मुः। सूरीणां तदुक्तमुक्तं लेखश्चादर्शि। तत्र लिखितं यथा-

5 ८३. अस्माभिर्यदि वः कार्यं तदा धर्मस्य भूपतेः। सभायां छन्नमागम्य स्वयमापृच्छ्यतां द्रुतम्॥ २३॥

८४. विंझेण विणावि गया नरिंदभवणेसु हुंति गारविया। विंझो न होइ वंगो गएहिँ बहुएहिँ वि गएहिँ॥ २४॥

८५. माणसरहिएहिं सुहाइं जह न लब्भंति रायहंसेहिं। तह तस्स वि तेहिं विणा तीरुच्छंगा न सोहंति॥ २५॥

८६. परिसेसियहंसउलं पि माणसं माणसं न संदेहो। अन्नत्थ वि जत्थ गया हंसा वि बया न भण्णंति॥ २६॥

८७. हंसा जहिँ गय तहिँ जि गया महिमंडणा हवंति। छेहउ तांह महासरहं जे हंसेहिं मुबंति॥ २७॥

10 ८८. मलओं सचंदणु चिय नइमुहहीरंतचंदणदुमोहो। पब्भट्ठं पि हु मलयाओं चंदणं जायइ महग्घं॥ २८॥

८९. अग्घायंति महुअरा विमुक्ककमलायरा वि मयरंदं। कमलायरो वि दिट्ठो सुओ वि किं महुअरविहीणो॥ २९॥

९०. इक्केण कुत्थुहेणं विणावि रयणायरु च्चिय समुद्दो। कुत्थुहरयणं पि उरे जस्स ठिओं सोवि हु महग्घो॥ ३०॥

९१. पइं मुक्काण वि तरुवर फिट्टइ पत्तत्तणं न पत्ताणं। तुह पुणु च्छाया जइ होइ कह वि ता तेहिं पत्तेहिं॥ ३१॥

९२. जे के वि पहू महिमंडलंमि ते उच्छुदंडसारिच्छा। सरसा जडाण मज्झे विरसा पत्तेसु दीसंति॥ ३२॥

15 ९३. संपइ पहुणो पहुणो पहुत्तणं किं चिरंतणपहूणं। दोसगुणा गुणदोसा एहिं कया नहु कया तेहिं॥ ३३॥

एतद्वाचयित्वा सोत्कण्ठं नृपः सारकतिपयपुरुषवृतोऽचालीत्। गोदावरीतीरग्राममेकमगमत्। तत्र खण्डदेवकुले वासमकार्षीत्। देवकुलाधिष्ठात्री व्यन्तरी सौभाग्यमोहिता गङ्गेव भरतं तं भेजे। प्रभाते करभमारुह्य तां देवीमापृच्छ्य प्रभुपादान्तं प्राप। गाथार्द्धं पपाठ-

९४. अज्जवि सा सुमरिज्जइ को नेहो[2] होइ एगराईए।

20 सूरीन्द्रः प्राह-

गोलानईय[4] तीरे सुन्नउले जंसि वीसमिओ॥ ३४॥

इति। अन्योऽन्यं गाढमालिलिङ्गतुरुभौ। तत आम आह स-

९५. अद्य मे सफला प्रीतिरद्य मे सफला रतिः। अद्य मे सफलं जन्म अद्य मे सफलं कुलम्[5]॥ ३५॥

रात्रौ इष्टगोष्ठी वधृते मधुमधुरा। ततः प्रभाते सूरिर्धर्मनृपास्थानमगमत्। आमनृपोऽपि

25 प्रधानैः स्वैः पुरुषैः सह स्थगीधरो भूत्वाऽऽगच्छत्। [‡'आम आवउ' इति ब्रुवाणैः] सूरिभिर्ध-र्माय आमस्य विशिष्टपुरुषा दर्शिताः। एते आमनृपनराः किलास्मानाह्वातुमायाताः-इति। धर्मेण राज्ञा पृष्टं विशिष्टजनपार्श्वे-भो आमप्रधाननराः! स भवतां स्वामी कीदृशरूपः। तैर्निगदितम्-यादृगयं स्थगीधरस्तादृगस्ति। प्रथमं मातुलिङ्गं करे धारयित्वा आम आनी-तोऽस्ति। सूरिभिः पृष्टम्-भोः स्थगीधर! तवकरे किमेतत्?। स्थगीधरीभूतेन श्रीआमेनोक्तम्-

30 'बीजउरा' इति। क्षणार्द्धेन वार्त्तामध्ये[6] सूरिभिः सूक्तमवतारितम्-

1 P नास्ति। 2 A कन्यकुब्जेशसमीपे। 3 P नास्ति। 4 A गोदानईइ। 5 AC कक्षम्। ‡ P पुस्तक एवैतद्वाक्यं लभ्यते। 6 A वार्ताईमध्ये।

९६. तत्ती सीयली मेलावा[1] केहा धण[2] उत्तावली पिउ[3] मंदसणेहा ।[4]
विरहिं माणुसु जो मरइ[5] तसु कवणु निहोरा[6] कण्णि[7] पवित्तडी जणु जाणइ दोरा ॥ ३६ ॥

[[†]गुरुणा कथितम्–आम आवउ, आम आवउ । धर्मेण राज्ञा तृअरिछोडं दृष्ट्वा पृष्टम्–अहो स्थगीधर ! किमिदम् ? । तेनोक्तम्–'तृअरि' तवारीत्यर्थः ।] इत्यादिगोष्ठ्यां वर्तमानायां शनैः शनैः श्रीआमराजश्छिद्रूपो मेलापकाच्चिःसृत्य पुराद्बहिः स्थाने स्थाने स्थापितैर्वाहनैः कियतीमपि भूमिमत्यक्राम्यत् । तावता सूरीश्वरो विलम्बाय प्रहरद्वयं कामपि कथामचीकथत् । रसावतारः स कोऽपि जातो यो रम्भा-तिलोत्तमाप्रेक्षणीयकेऽपि दुर्लभः । आमो राजाऽमूल्यं कङ्कणं प्रहणके मुक्त्वा वेश्यागृहे उषित आसीत् । सा तु लक्षणावतीपतेर्वारस्त्री । एकं कङ्कणमामो राजद्वारे मुञ्चन्नगात् । अपराह्णे राज्ञः पार्श्वाद् बप्पभट्टिसूरिभिर्मुत्कलापितम्–देव ! गोपगिरावामपार्श्वे यामः, अनुज्ञां दीयताम् । धर्मेण भणितम्–भवतामपि वाणी विघटते ? । भवद्भिर्भणितमभूत्–यदा तव दृष्टौ आमः समेत्यास्मानाह्वयिष्यति[8] तदा यामो नार्वाक् । तत्किं विस्मृतम् ? । जिह्वे किं नो द्वे स्तः ? । आचार्या जगदुः–श्रीधर्मदेव ! मम प्रतिज्ञा पूर्णा । राजाऽऽह–कथम् ? । सूरिर्वदति–आमो राजाऽत्र स्वयमागतस्तव दृष्टौ । राजाऽऽह–कथं ज्ञायते ? । सूरिः–यदा भवद्भिः पृष्टं भवतां स्वामी कीदृशः ? । विशिष्टैस्तदा भणितम्–स्थगिकाधररूपः । तथा 'बीजउरा' शब्दोऽपि विमृश्यताम् । 'दोरा'शब्दोऽपि यो मयोक्तोऽभूत् । तस्मात्प्रतिज्ञा मे पूर्णा । अत्रान्तरे केनापि राजद्वाराद् आमकङ्कणं धर्मनृपहस्ते दत्तं आमनामाङ्कितम् । द्वितीयं वेश्यया दत्तम् । तद् दृष्ट्वा नष्टसर्वस्वस्तद्धन[9] इव धर्मः शुशोच–धिग्माम् ! यन्मया शत्रुः स्वगृहमायातो नार्चितः, न च साधितः[10] । धर्मेण मुत्कलिताः सूरयः पुरः क्वापि स्थितेनामेन सह जग्मुः । मार्गे गच्छता आमेन पुलिन्द[11] एको जलाशयमध्ये जलं छगलवन्मुखेन पिबन्दृष्टः । आमराजेन सूरीणामग्रे प्रत्योक्तम्–

९७. पसु जेम पुलिंदउ पउ पियइ पंथिउ[12] कवणिण कारणिण ।

सूरिभिरभाणि–

कर वे वि करंविअ कज्जलिण मुद्धह अंसु निवारणिण ॥ ३७ ॥

राज्ञा प्रत्ययार्थं स समाकार्य पृष्टः । तेनोक्तम्–सत्यं सूरिवचः । हस्तौ दर्शितौ । राजा तेन वाक्संवादेन प्रीतः । 'अज्जवि सा परितप्पइ' इत्यादि तदुक्तं सर्वं सारस्वतविलसितमिति निरवैपीत् । शीघ्रशीघ्रं गोपालगिरिं गतः । पताकातोरणमश्वप्रतिमश्वादिमहास्तत्रासुः । दिवसाः कत्यप्यतिक्रान्ताः ।

§ ३९) ततः श्रीसिद्धसेनसूरयो वार्द्धक्येन पीडिता अनशनं गृहीतुकामाः श्रीबप्पभट्टिसूरीणामाकारणाय गीतार्थमुनियुगलं प्रैषिषुः[13] । तद् गुरोर्लेखमदीदृशत् । तत्र लिखितं यथा–

९८. अध्यापितोऽसि पदवीमधिरोपितोऽसि तत्किञ्चनापि कुरु वत्सक ! बप्पभट्टे ! ।
प्रायोपवेशनरथे विनिवेश्य येन सम्प्रेषयस्समरधाम नितान्तमस्मान् ॥ ३८ ॥

---

1 BD मलावा । 2 PC धणि उत्तावली । 3 C प्रिय । 4 BD ०सिणेहा । 5 P विरहि जो मणु सुमरइ; D विरहि जइ माणु० । 6 BD नहोरा । 7 C [कन्न] । † P पुस्तकस्थः प्रक्षिप्तः पाठोऽयम् । 8 BDP ०आह्वयति । 9 BP तद्धन; C तधन । 10 CP आदर्शे एतत्पदं प्राप्यते नान्यत्र । 11 D पुलीन्द्रः । 12 A पंथिअ । 13 प्रैषिष ।

तद् दृष्ट्वा आमभूपतिमापृच्छ्य मोढेरकपुरं ब्रह्मशान्तिस्थापितवीरजिनमहोत्सवाढ्यं प्रापुस्ते । गुरून् ववन्दिरे । गुरवोऽपि तान् बाढमालिङ्ग्यालापिषुः—वत्स ! गाढमुत्कण्ठितमस्माकं हृदयम् । मुखकमलकमपि ते विस्मृतम् । राजानुगमनं तेऽस्माकं दुःखायासीत् । कारय साधनाम् । अनृणो भव । ततोऽन्त्याराधना चतुःशरणगमन-दुष्कृतगर्हा-सुकृतानुमोदना-तीर्थमालावन्दनादिका 5 विधिना विधापिता । गुरवो देवलोकललनानयनत्रिभागपात्रत्वमानशुः । शोक उच्छलितः । ततो बप्पभट्टिः श्रीमद्गोविन्दसूरये श्रीनन्नसूरये च गच्छभारं समर्प्य श्रीआमपार्श्वमगमत्[1] । पूर्ववत्समस्यादिगोष्ठ्यः स्फुरन्ति ।

§४०) एकदा सूरिर्नृपसभायां चिरं पुस्तकाक्षरदत्तदृक् तस्थौ । तत्रैका नर्त्तकी नृत्यन्ती आसीत् रूपदासीकृताप्सराः । सूरिर्दृग्नीलि[2]निवारणाय तस्याः शुकपिच्छनीलवर्णायां नील-10 कञ्चुलिकायां दृशं निवेशयामास । आमस्तद्[3] दृष्ट्वा मनसि पपाठ—

९९. सिद्धंततत्तपारंगयाण जोगीण जोगजुत्ताणं । जइ ताणं पि मयच्छी मणंमि ता तच्चिय पमाणं ॥ ३९ ॥

आमो रात्रौ पुंवेषां तां नर्त्तकीं सूरिवसतौ प्रैषीत् । तया सूरीणां विश्रामणाऽऽरब्धा । कर-स्पर्शेन ज्ञाता युवतिः सूरिणा । अभिहिता सा—का त्वम् ?, कस्मादिहागता ? । अस्मासु ब्रह्मव्र-तनिबिडेषु वराकि ! भवत्याः कोऽवकाशः । 'वात्याभिर्न चलति काञ्चनाचलः ।' तयोक्तम्—भवन्तम् 15 उपवेष्टुमागता ।

१००. राज्ये सारं वसुधा वसुधायामपि पुरं पुरे सौधम् । सौधे तल्पं तल्पे वराङ्गनाऽनङ्गसर्वस्वम् ॥ ४० ॥

इति । किञ्च—

१०१. प्रियादर्शनमेवास्तु किमन्यैर्दर्शनान्तरैः । प्राप्यते येन निर्वाणं सरागेणापि चेतसा ॥ ४१ ॥

श्रीआमेन प्रेषिताऽहं प्राणवल्लभा भवतां शुश्रूषार्थम् । ततः सूरिशक्रो वदति स्म—अस्माकं 20 ज्ञानदृक्प्रपातदृष्टद्रष्टव्यानां नैव व्यामोहाय प्रगल्भसे ।

१०२. मलमूत्रादिपात्रेषु गात्रेषु मृगचक्षुषाम् । रतिं करोति को नाम सुधीर्वर्चोगृहेष्विव ॥ ४२ ॥

सापि निर्विकारं सूरिवरं निश्चित्य ध्वनचेताः प्रातर्नृपतिसमीपं गता । पृच्छते राज्ञे रात्रीयः सूरिवृत्तान्तः सम्यक् कथितस्तया—पाषाणघटित इव तव गुरुः । नवनीतपिण्डमयः शेषो 'वराको[4] लोकः । यावन्तः कूटप्रपञ्चा हावभाव-कटाक्ष-भुजाक्षेप-चुम्बन-नखरदनक्षता[5]दिविलासास्ते सर्वे 25 आजन्मशिक्षितास्तत्र प्रयुक्ताः । पुनस्तिलतुषत्रिभागमात्रमपि मनोऽस्य नाचालीत् । अनुराग-बलात्कार-पूत्कार-भीदर्शन-हत्यादानादिविभीषिकाभिरपि नाक्षुभत् । तदेष मन्ये महावज्रमयो न देवकन्याभिर्न विद्याधरीभिर्न नागाङ्गनाभिश्चाल्यते; मानुषीणां तु का कथा ? । अस्मिन्सूरेर्द्धर्मस्थैर्ये श्रुते नृपो विस्मयानन्दाभ्यां कदम्बमुकुलस्थूलरोमाञ्चकञ्चुकितगात्रः संवृत्तः । दध्यौ च गुरुं ध्यानप्रत्यक्षं कृत्वा—

30 १०३. न्युञ्छने यामि वाक्यानां दृशोर्याम्यवतारणे । बलिः क्रियेऽहं सौहार्दहृद्याय हृदयाय ते ॥ ४३ ॥

प्रातर्गुरवः समागुः । राजा ह्रीणो न वदति किञ्चित् । सूरिभिर्भणितम्—राजन् ! मा लज्जिष्ठाः । महर्षीणां दूषण-भूषणान्वेषणं राज्ञा कार्यं न दोषः । राज्ञोक्तम्—अलमतीतवृत्तान्तचर्चया । एत-दहमुत्तम्भितभुजो ब्रुवे युष्मान्ब्रह्मधनानवलोक्य—

---

1 A आगतः । 2 A दृग्मीलि० । 3 CP तथा । 4 P नास्ति 'वराको' । 5 D नखदन्ताक्षता० ।

२९५

१०४. धन्यास्त एव [1]धवलायतलोचनानां तारुण्यदर्पघनपीनपयोधराणाम्।
क्षामोदरोपरिलसत्त्रिवलीलतानां दृष्ट्वाऽऽकृतिं विकृतिमेति मनो न येषाम्॥ ४४॥

इत्युक्त्वा दण्डप्रणामेन प्रणनाम श्रीआमः।

अन्येद्यू राजा राजपथेन सञ्चरमाणो हालिकप्रियां एरण्डबृहत्पत्रसंवृतस्तनविस्तरां एरण्डपत्राणि विचिन्वानां गृहपाश्चात्यभागे दृष्ट्वा गाथार्द्धं योजितवान्– 5

१०५. वइविवरनिग्गयदलो एरंडो [2]साहइ व्व तरुणाणं।

तत्तु सूरीणां पुरः समस्यात्वेन समर्पितवान्। सूरय ऊचुः–

इत्थ घरे हलियवहू [3]इद्दहमित्तत्थणी अत्थि॥ ४५॥

राजा विस्मितः–अहो सारं सारस्वतम्!।

अन्यदा सायं प्रोषितभर्तृकां वासभवनं यान्तीं वक्रग्रीवां दीपकरां ददर्श। गाथार्द्धं चोचे– 10

१०६. दिज्जइ [4]वंकग्गीवाइ दीवओ पहियजायाए।

सूरेरग्रे पपाठ। सूरिर्गाथापूर्वार्द्धमुवाच–

पियसंभरणपलुट्टंतअंसुधारानिवायभीयाए॥ ४६॥

इति सूरिभूपौ सुखेन कालं गमयतो धर्मपरौ।

§ ४१) अन्यदा धर्मनृपेण आमनृपस्य पार्श्वे दूतः प्रहित एत्यावोचत्–राजन्! तव विचक्षणतया धर्मनृपः सन्तुष्टः। पुनः स आह–भवद्भिर्वयं छलिताः। यतो भवद्भ्यो गृहमागतेभ्यो नास्माभिर्महानल्पोऽपि कोऽपि सत्कारः कृतः। अधुना शृणु–अस्मद्राज्ये वर्द्धनकुञ्जरो नाम महावादी बौद्धदर्शनी विदेशादागतोऽस्ति। स वादं जिघृक्षुः। यः कोऽपि वो राज्ये वादी भवति स आनीयताम्। अस्माकं भवद्भिः सह चिरन्तनवैरम्। यः कोऽपि वादी विजयी भविष्यति तत्प्रभुरपरस्य राज्यं ग्रहीष्यति। मम वादिना यदा जितं तदा त्वदीयं राज्यं मया ग्राह्यम्। 20 यदा तव वादिना जितं तदा मदीयं राज्यं त्वया ग्राह्यम्। अयं पणः। वाग्युद्धमेवास्तु। किं मानवकदनेन[5]?। आमेनोक्तम्–दूत! त्वया यदुक्तं तद्धर्मेण कथापितमथवा त्वया स्वतुण्डकण्डूतिमात्रेणोक्तम्?। यदि तव प्रभुः सप्ताङ्गं राज्यं वादे जिते समर्पयिष्यति मे इति सत्यम्, तदा वयं वादिनमादायागच्छाम इति। दूतेनोक्तम्–कारणवशाद् युधिष्ठिरेणापि द्रोणपर्वण्यसत्यं भाषितम्; मत्प्रभुस्तु कारणेऽपि न मिथ्या भाषते। आमेन दूतः प्रैषि। उक्तदिनोपरि 25 बप्पभट्टिं गृहीत्वाऽर्द्धपथे उक्तस्थाने आमोऽगमत्। धर्मभूपतिरपि वर्द्धनकुञ्जरं वादीन्द्रमादाय तत्राजगाम। परमारवंश्यं नरेन्द्रं महाकविं वाक्पतिनामानं स्वसेवकं सहादाय समायगौ[6]। उचितप्रदेशे आवासान् दापयामास। तौ वादि-प्रतिवादिनौ पक्ष-प्रतिपक्षपरिग्रहेण वादमारेभाते। सभ्याः कौतुकाक्षिप्ताः पश्यन्ति। द्वावप्यसामान्यप्रतिभौ ज्ञौ[7]। वादे षण्मासा गताः। द्वयोः कोऽपि न हारयति न जयति च। आमेन सूरयः प्रोक्ताः सायम्–राजकार्याणां 30 प्रत्यूहः स्यात्, निर्जीयतामसौ शीघ्रम्। सूरिणा भणितम्–[8]प्रातर्निग्रहीष्यामि। मा स्म वो भ्रान्तिर्भूयात्। रात्रौ सूरीश्वरेण मन्त्रशक्त्या मण्डले हारार्द्धहारमणिकुण्डलमण्डिताङ्गी दिव्याऽङ्गरागवसना दिव्यकुसुमपरिमल[9]वासितभुवनोदरा भगवती भारती साक्षादानीता। चतुर्दशभिः

1 A तरलाय०। 2 D साहइ व्व; B तरुणीणं। 3 A इद्दाह। 4 CP विरल०। 5 P कदर्थनेन। 6 P बिना सर्वत्र 'समानिन्ये'। 7 P 'ज्ञौ' नास्ति। 8 AB प्रभाते। 9 D ०मलुलितभुव०।

काव्यैः सयमकैर्दिव्यैः स्तुता । देव्योक्तम्–वत्स ! केन कारणेन स्मृता ? । सूरिवीरैः भणितम्–षण्मासा वादे लग्नाः । तथा कुरु यथा वादे निरुत्तरीभवति सः । देव्या गदितम्–वत्स ! अह्मनेन प्राक् सप्तभवानाऽऽराधिता । मयाऽत्र भवेऽस्मै अक्षयवचना गुटिका दत्ताऽस्ति । तत्प्रभावाच्चक्रिनिधिधनमिव नास्य वचो हीयते । सूरिणोक्तम्–त्वं देवि ! किं जैनशासनविरोधिनी, येन मे जयश्रियं न दत्से ? । भारत्यूचे–वत्स ! जयोपायं ब्रुवे । त्वया वादारम्भे प्रातः सर्वे वदनशौचं काराप्याः पार्षद्याः । गण्डूषं कुर्वतस्तस्य वदनाद् गुटिका ममेच्छया पतिष्यति तदा त्वया जेष्यते । एकं तु याचे–मत्स्तुतेश्चतुर्दशकाव्यं कस्याप्यग्रे न प्रकाश्यम् । तत्पठनेन हि मया ध्रुवं ध्रुवं प्रत्यक्षया भाव्यम् । कियतां प्रत्यक्षा भवामि ? । क्लेशेनालम् । एवमुक्त्वा देवी विद्युज्झात्कारलीलयाऽन्तर्दधे । सूरिभिर्निशि परमाप्तशिष्य एको वाक्पतिराजसमीपं प्रहित्याख्यापितं यथा–सूरयो वदन्ति–राजन् ! त्वं विद्यानिधिरस्माकं लक्षणावतीपुरीपरिचितचरः । तदाऽवादीः–भगवन् ! निरीहा भवन्तः, कां भवद्भ्यो भक्तिं दर्शयामि । तदा वयमवोचाम–अवसरे कामपि भक्तिं कारयिष्यामः । भवद्भिर्भणितम्–तथास्तु । इदानीं सोऽवसरोऽत्र समायातः । वाक्पतिना शिष्यः पृष्टः–सूरयः किं मे समादिशन्ति ? । आदिष्टं कुर्वे ध्रुवम् । शिष्यो न्यवेदयत्–राजन् ! गुरवः आदिशन्ति–प्रातर्धर्मामयोः सदःस्थयोः सतोस्त्वया वाच्यं यथा–वदनशौचं विना भारती न प्रसीदति । तस्माद्वादि-प्रतिवादि-सभ्य-सभेशाः सर्वे शौचं कुर्वन्तु । एतावति कृते भवता नः सर्वः स्नेहः कृत एव । वाक्पतिना तदङ्गीकृतम् । शिष्येणोपगुरु गत्वा तत्तत्प्रतिज्ञातं कथितम् । तुष्टाः गुरवः । प्रत्यूषे उदयति भगवति गभस्तिमालिनि लाक्षालिप्त इव प्राचीमुखे राजानौ सभायामगाताम् । वाक्पतिना वदनशौचं सर्वे कारिताः, बौद्धवादीन्द्रोऽपि । तस्य वदनकमलाद्विगलिता गुटिका अपतत्[1] पतद्ग्रहे । बप्पभट्टिशिष्यैः पतद्ग्रहो जनैर्दूरे कारापितः । गुटिका सूरीन्द्रसाज्जाता । बौद्धो गुटिकाहीनः सूरिणा पार्थेन कर्ण इव दिव्यशक्तिमुक्तो निःशङ्कं वाक्पृषत्कैर्हतः । निरुत्तरीकृतः । राहुग्रस्तश्चन्द्र इव हिमानीविलुप्तस्तरुखण्ड इव निस्तेजतां भेजे । तदा श्रीबप्पभट्टेर्निर्विवादं वादिकुञ्जरकेसरीति बिरुदं स्वैः परैश्च दत्तम् । धर्मेण सप्ताङ्गं राज्यं आमाय दत्तम् ! लाहीदम् । धर्माद्धि राज्यं लभ्यते । काऽत्र चर्चा ? । आमेन गृहीतम् । तदा सूरिणा आमः प्रोक्तः–राजन् ! पुना राज्यं धर्माय देहि । महादानमिदम् । शोभते च ते । राजस्थापनाचार्याश्च पारंपर्येण[2] । 'पूर्वं श्रीरामेण वनस्थेनापि सुग्रीव-विभीषणौ राजीकृतौ । त्वमप्येदंयुगीननृपेषु[3] तत्तुल्यः । एतद्वचनसमकालमेव आमेन गाम्भीर्यौदार्यधाम्ना धर्माय तद्राज्यं प्रत्यर्प्य[4] स[5] परिधापितः । स्वे मत्ताः करिणः शतं, सहस्रं तुङ्गास्तुरङ्गाः, सहस्रं सवरूथा रथाः, शतं वादित्राणि प्रादापिषत । स्वं स्वं स्थानं गताः सर्वे । सूरि-भूपौ यशोधवलितसप्तभुवनौ गोपगिरौ श्रीमहावीरमवन्दिषाताम् । तदा सूरिकृतं श्रीवीरस्य स्तवनम्–'शान्तो वेषः शमसुखफला' इत्यादि काव्यैकादशकमयमद्यापि सङ्घे पठ्यते । सङ्घेन प्रभुर्ववन्दे, तुष्टुवे च ।

१०७. रवेरेवोदयः श्लाघ्यः कोऽन्येषामुदयग्रहः । न तमांसि न तेजांसि यस्मिन्नभ्युदिते[7] सति ॥ ४७ ॥

अन्यदा स्व-परसमयसूक्तैः प्रबोध्य राजा प्रभुभिर्मद्यमांसादिसप्तव्यसननियमं ग्राहितः[8] ।

---

1 नास्ति P । 2 P नास्ति । 3 P यूयं । 4 P ॰प्येवं युगीन॰ । 5 D प्रत्यर्पि । 6 B स धर्मैः । 7 D ॰भ्युदये । 8 P कारितः ।

सम्यक्त्वमूलैकादशव्रतनिरतश्च श्रावकः कृतः । द्वादशं व्रतं त्वतिथिसंविभागाख्यं प्रथमचरमजिननृपाणां निषिद्धं सिद्धान्ते ।

§४२) एकदा लक्षणावत्यां बौद्धो वर्द्धनकुञ्जरो धर्मनृपमाह सगद्गदम्–अहं बप्पभट्टिना जितस्तन्मे न दूषणम् । बप्पभट्टिर्हि भारती नररूपा, प्रज्ञामयः पिण्डः, गीष्पुत्रः, न च धुनोति । एतत्तु धुनोति यत्तव भृत्येनापि वाक्पतिराजेन सूरिकृतभेदान्मम मुखशौचोपायेन गुटी हारयाम्चक्रे । 5
एतावदभिधाय स तारं तारं रुरोद । स निवारितः क्ष्मापेन रोदनात् । उक्तश्च–किं क्रियते ?, अयं नश्चिरसेवकोऽनेकसमराङ्गणलब्धजयप्रतिष्ठः प्रबन्धकविः पराभवितुं न रोचते । क्षमस्वेदमस्यागः । ततो बौद्धो जोषं स्थितः ।

§४३) अपरेद्युर्यशोधर्मनाम्ना समीपदेशस्थेन बलवता भूपेन लक्षणावतीमेत्य रणे धर्मनृपो व्यापादितः । राज्यं जगृहे । वाक्पतिरपि बन्दीकृतः । तेन कारास्थेन 'गौडवध' सञ्ज्ञकं प्राकृतं 10
महाकाव्यं रचयित्वा यशोधर्माय राज्ञे[1] दर्शितम् । तेन गुणविशेषविदा ससत्कारं बन्देर्मुक्तः, क्षमितश्च । 'विद्वान् सर्वत्र पूज्यते' । ततो वाक्पतिर्बप्पभट्टि[2]समीपं गतः । द्वयोस्तयोर्मैत्री पूर्वमप्यासीत् । तदानीं विशेषतोऽवृधत् । [†]तेन वाक्पतिना महामहविजयाख्यं प्राकृतं महाकाव्यं बद्धम् । आमाय दर्शितम् । आमो हैमटङ्कलक्षमस्मै व्यशिश्रणत् ।[†]

१०८. कियती पञ्चसहस्री कियती लक्षा च कोटिरपि कीयती[3] । औदार्योन्नतमनसां रत्नवती वसुमती कियती ॥४८॥ 15

§४४) अपरेद्युः प्रभुः श्रीआमेन पृष्टः–भगवन् ! यूयं तावत्तपसा विद्यया च लोके लब्धपरमरेखाः । किमन्योऽपि[4] कोऽपि काप्यास्ते यो भवत्तुलालेशमवाप्नोति । बप्पभट्टिरभाणीत्–अवनिपते ! मम गुरुबान्धवौ गोविन्दाचार्य-नन्नसूरी सर्वैर्गुणैर्मदधिकौ गूर्जरधरायां मोढेरकपुरे स्तः । गुणोत्कण्ठयामितसैन्य आमस्तत्र गतः । तदा नन्नसूरिर्व्याख्यानेऽवसरायातान् वात्स्यायनोक्तान् कामाङ्गभावान् पल्लवयन्नासीत् । राज्ञा श्रुतं तत्सर्वम् । अरुचिरुत्पन्ना–अहो ! वयं कामिनोऽपि नैतान् भावान् 20
विद्मः । अयं तु वेत्ति सम्यक् । तस्मादयमवश्यं नित्यं योषित्सङ्गी । किमस्य प्रणामेन ?–इत्यकृतनतिरेवोत्थायाशु गोपगिरिमागात् । चिराद् दृष्टः क्ष्माप इति रणरणकाक्रान्तस्वान्ताः प्रभवो वन्दापयितुमैयरुः । राजा निरादरो न वन्दते तथा । एवं दिनानि कतिपयानि गतानि । एकदा गुरुभिः पप्रच्छे–राजन् ! यथा पुरा भक्तोऽभूस्तथेदानीं भक्तो नासि । किमस्माकं दोषः कोऽपि ? । राजा स्माह–सूरिवर ! भवादृशा अपि कुपात्रश्लाघां कुर्वते । किमुच्यते[5] ? । सूरिभिरूचे[6]–कथम् ? । आमः 25
प्राह–यौ भवद्भिः स्वौ गुरुबान्धवौ स्तुतौ । तत्र गत्वा एको नन्नसूरिनामा दृष्टः शृङ्गारकथाव्याख्यानलम्पटस्तपोहीनो लोहतरण्डतुल्यो मज्जति मज्जयति च भवाम्बुधौ[7] । तस्मान्न किञ्चिदेतत् । सूरयो मसीमलिनवदनाः स्ववसतिमगुः[8] । तत्रोपविश्य द्वौ साधू मोढेरकपुरं प्रहितौ । तत्पार्श्वात्तत्र कथापितम्–आमोऽकृतप्रणामो भवत्पार्श्वादागतः । एवमेवं युष्मां निन्दति । तत्कर्तव्यं येनासौ भवत्स्वन्येष्वपि श्रमणेषु अवज्ञावान्न भवति[10] । सर्वं तत्रत्यं ज्ञात्वा तौ द्वावपि गुटिकया 30
वर्ण-स्वरपरावर्त्तं कृत्वा नटवेषधरौ गोपगिरिमीयतुः । श्रीऋषभध्वजचरित्रं नाटकत्वेन बबन्धतुः । नटान् शिक्षयामासतुः । आमराजमवसरं ययाचतुः । राज्ञाऽवसरो दत्तः । मिलिताः सामा-

1 AB राजेन्द्राय । 2 D ०भट्टेः । † एतच्चिह्नान्तर्गतं कथनं ABD आदर्शे नास्ति, CEP आदर्शे च लभ्यते । 3 पतितमिदं P पुस्तके । 4 BD ०मन्यः कोऽपि । 5 D व्याख्यानावस० । 6 P नास्ति । 7 AB सूरिरूचे । 8 A भवाब्धौ । 9 A ययुः । 10 BD भवेत् ।

जिकाः तत्तद्रसभावज्ञाः। ताभ्यां नाटकं दर्शयितुमारेभे। भरत-बाहुबलिसमरावसरोऽभिनीयते। यदा व्यूहरचना-शस्त्रझलत्कार-वीरवर्णना-भट्टकोलाहलाश्वोत्थापनघर्घरिका-झणझणत्कारादि ताभ्यां वर्णयितुमारब्धम्, धारारूढश्च रसोऽवातारीत्; तदा श्रीआमस्तद्भटाश्च कालिन्दीप्रवाह-श्यामदीर्घानसीनाकृष्योत्थिता 'हत हत' इति भाषन्ते स्म। अत्रान्तरे नन्नसूरि-गोविन्दाचार्यौ 5 स्वरूपमुद्रे प्रकाश्याहतुः-राजन्! भटाः! शृणुत २ कथायुद्धमिदम्, न तु साक्षात्। अलं सम्भ्रमेण। इत्युक्ता लज्जिता विस्मिताश्च ते राजाद्याः संवृत्याकारमस्थुः। तदा गोविन्दाचार्य-नन्नसूरिभ्यां भूपोऽभाणि-किल शृङ्गारानुभविनो वयमिति सम्यग्व्याख्यातुं विद्मः। किन्तु समराजिरमपि भवद्वत्प्रविष्टाः स्मः। कुरङ्गा इव शस्त्रे दृष्टेऽपि बिभिमः। आबाल्याद् गृहीतव्रताः पापभीरवः, परं भारतीप्रभावप्रभववचनशक्त्या रसान् सर्वान् जीवद्रूपानिव दर्शयामः। राजन्! 10 मोढेरके यैस्ते वात्स्यायनभावा व्याख्याताः, ते वयं नन्नसूरय इमे च गोविन्दाचार्याः। भवतां तदा मृषा विकल्पः समजनि। राजा सद्यो ललज्जे। तौ सूरी क्षमयामास, आनर्च बप्पभट्टिं च। तौ कतिचिद्दिनानि उपराजं स्थित्वा बप्पभट्टेरनुज्ञया पुनर्मोढेरपुरमगाताम्। गतः समयः कियानपि।

§ ४५) अन्यदा गाथकवृन्दमागतम्। तन्मध्ये बालिकैका सनालनीलोत्पललोचना मृगाङ्कमुखी 15 किन्नरस्वरा विदुषी गायति। तां दृष्ट्वा मदनशरज्वरजर्जरः गलितविवेको गतप्रायशौचधर्माभिनिवेशः कन्यकुब्जेशः पद्यद्वयं प्रभुप्रत्यक्षमपाठीत्-

१०९. वक्त्रं पूर्णशशी सुधाधरलता दन्ता मणिश्रेणयः, कान्तिः श्रीर्गमनं गजः परिमलस्ते पारिजातद्रुमाः।
वाणी कामदुघा कटाक्षलहरी सा कालकूटच्छटा, तत्किं चन्द्रमुखि! त्वदर्थममरैरामन्थि दुग्धोदधिः ॥४९॥

११०. जन्मस्थानं न खलु विमलं वर्णनीयो न वर्णो, दूरे शोभा वपुषि निहिता पङ्कशङ्कां तनोति।
20 विश्वप्रार्थ्यः सकलसुरभिद्रव्यदर्पापहारी, नो जानीमः परिमलगुणः कस्तु कस्तूरिकायाः ॥ ५० ॥

सूरिभिश्चिन्तितम्-अहो! महतामपि किदृग् मतिविपर्यासः?।

१११. भस्त्रा काचन भूरिरन्ध्रविगलत्तन्मलक्लेदिनी, सा संस्कारशतैः क्षणार्द्धमधुरां बाह्यामुपैति द्युतिम्।
अन्तस्तत्त्वरसोर्मिधौतमतयोऽप्येतां तु कान्ताधिया, श्लिष्यन्ति स्तुवते नमन्ति च पुरः कस्मात्र पृत्कुर्महे ॥५१॥

उत्थिता सभा। त्रिभिर्दिनैर्भूपेन पूर्बहिः सौधं कारितम्, मातङ्गीसहितोऽत्र वत्स्यामीति 25 धिया। तदवगतं श्रीबप्पभट्टिसूरिभिः। ध्यानप्रत्यक्षं हि तेषां जगद्वृत्तम्। ततो माऽसौ कुकर्मणा नरकं यासीदिति कृपया तैर्निष्पाद्यमानसौधभारपट्टे निशि खटिकया बोधदानि पद्यानि लिखितानि। यथा-

११२. शैत्यं नाम गुणस्तवैव तदनु स्वाभाविकी स्वच्छता, किं ब्रूमः शुचितां भवन्त्यशुचयस्त्वत्सङ्गतोऽन्ये यतः।
किंवाऽतः परमस्ति ते स्तुतिपदं त्वं जीवितं देहिनां, त्वं चेन्नीचपथेन गच्छसि पयः कस्त्वां निरोद्धुं क्षमः ॥५२॥

30 ११३. *सद्वृत्त सद्गुण महार्घ्य महार्हकान्त कान्ताघनस्तनतटोचितचारुमूर्ते!।
आः पामरीकठिनकण्ठविलग्नभग्न हा हार! हारितमहो भवता गुणित्वम् ॥ ५३ ॥

1 E शस्त्रझणत्कार। 2 B हन हन। 3 ABD बिभ्म। 4 P तमाल०। 5 P तद्। 6 CP मदनज्वर०। 7 B कस्तूरिकायाम्। 8 PC तु। 9 B कारापितम्। 10 BP नास्ति। 11 P नरकमयासी०। 12 BD किंवातः।
* BD आदर्शे नास्ति पद्यमिदम्।

११४. जीयं जलबिन्दुसमं संपत्तीओ तरंगलोलाओ । सुमिणयसमं व पिम्मं जं जाणसि तं करिज्जासि ॥ ५४ ॥

११५. लज्जिज्जइ जेण जणे मइलिज्जइ निअकुलक्कमो जेण । कंठट्ठिए वि जीए तं न कुलीणेहिं कायव्वं ॥ ५५ ॥

प्रातरमूनि पद्यानि स्वयमामो ददर्श । वर्णान् कवित्वगतिं च उपलक्षयामास । अहो गुरूणां मयि कृपा! अहोतमां मम पापाभिमुखता !-इति ललज्जे । दध्यौ च-साङ्कल्पिकमिदं जनङ्गमीसङ्गमपापं मयाऽऽचरितम् । भारितोऽहं क्व यामि ?, किं करोमि ?, कथं गुरोर्मुखं दर्शयामि ?, किं तपः समाचरामि ?, किं तीर्थं सेवे ? । ऊर्ध्वं मुखं गृहीत्वा गच्छामि ?, कूपे पतामि ?, शस्त्रेणात्मानं घातयामि ? । अथवा ज्ञातम्-सर्वजनसमक्षं पापमुद्दीर्य काष्ठानि भक्षयामि । एवं टलवलायमानोऽनुचरानादिदेश-अग्निं प्रगुणयत । प्रगुणितस्तैरग्निः । समागताः श्रीबप्पभट्टिसूरयः । मेलितं चातुर्वर्ण्यम् । उक्तं तदघम् । यावत्सहसा कृशानुं[1] प्रवेक्ष्यति आमस्तावत्सूरिभिर्बाहौ धृत्वोक्तः-राजन् ! शुद्धोऽसि । मा स्म खिद्येथाः । त्वया हि सङ्कल्पमात्रेण तत्पापं कृतं न साक्षात् । सङ्कल्पेनाग्निमपि प्रविष्टोऽसि । चिरं धर्मं कुरु ।

११६. मनसा मानसं कर्म वचसा वाचिकं तथा । कायेन कायिकं कर्म निस्तरन्ति मनीषिणः ॥ ५६ ॥

इति वचनाद्विसृष्टोऽग्निः । जीवितो राजा । तुष्टो लोकः । प्रीतः सूरिः ।

§४६) समयान्तरे वाक्पतिराजो मथुरां ययौ । तत्र श्रीपादस्त्रिदण्डी जज्ञे सः । तल्लोकादवगम्य आमः सूरीन् बभाषे-भवद्भिरहमपि श्रावकः कृतः । दिव्या वाणी वः प्रसन्नैव । जानामि वः शक्तिपरमरेखां यदि वाक्पतिमप्यार्हतदीक्षां ग्राहयथ । आचार्यैः[2] प्रतिज्ञा चक्रे-तदा विद्या मे प्रमाणं यदि वाक्पतिं सशिष्यं श्वेताम्बरं कुर्वे । वाक्पतिस्तु क्वास्ति, इति उच्यताम् । राज्ञोक्तम्-मथुरायां विद्यते । सूरयो मथुरायां गता बहुभिः श्रीआमासनरैः सह । वराहमन्दिराख्ये प्रासादे ध्यानस्थं वाक्पतिं गत्वाऽद्राक्षुः । तत्पृष्ठस्थैः सूरिभिस्तारस्वरेण आशिर्वादाः पठितुमारब्धाः-

११७. सन्ध्यां यत्प्रणिपत्य लोकपुरतो बद्धाञ्जलिर्याचसे, धत्से यच्च परां[3] विलज्ज ! शिरसा तच्चापि सोढं मया ।
श्रीर्जाताऽमृतमन्थनाद्यदि[4] हरेः कस्माद्विषं भक्षितं, मा स्त्रीलम्पट ! मां स्पृशेत्यभिहितो गौर्या हरः पातु वः ॥५७॥

११८. एकं ध्याननिमीलनान्मुकुलितं चक्षुर्द्वितीयं पुनः, पार्वत्या विपुले नितम्बफलके शृङ्गारभारालसम् ।
अन्यद्दूरविकृष्टचापमदनक्रोधानलोद्दीपितं, शम्भोर्भिन्नरसं समाधिसमये नेत्रत्रयं पातु वः ॥ ५८ ॥

११९. रामो नाम बभूव हुं तदबला सीतेति हुं तां पितु,-र्वाचा पञ्चवटीवने विचरतस्तस्याहरद्रावणः ।
निद्रार्थं जननीकथामिति हरेर्हुंकारिणः शृण्वतः, पूर्वस्मर्तुरवन्तु कोपकुटिला भ्रूभङ्गुरा दृष्टयः ॥ ५९ ॥

१२०. उत्तिष्ठन्त्या रतान्ते भरमुरगपतौ पाणिनैकेन कृत्वा
धृत्वा चान्येन वासो विगलितकबरीभारमंसे वहन्त्या[5] ।
सद्यस्तत्कायकान्तिद्विगुणितसुरतप्रीतिना शौरिणा वः
शय्यामालिङ्ग्य नीतं वपुरलसलसद्बाहु लक्ष्म्याः पुनातु ॥ ६० ॥

एवं बहु पेठे । अथ वाक्पतिर्ध्यानं विसृज्य सम्मुखीभूय सूरीनाह-हे बप्पभट्टिमिश्राः ! यूयं किमस्मत्पुरतः शृङ्गाररौद्राङ्गं पद्यपाठं कुरुध्वे ? । बप्पभट्टयः प्राहुः-भवन्तः सांख्याः ।

१२१. सांख्या निरीश्वराः केचित् केचिदीश्वरदेवताः । सर्वेषामपि तेषां स्यात् तत्त्वानां पञ्चविंशतिः ॥ ६१ ॥

---

1 PC कांपि । 2 AB भावादेन्द्रैः । 3 P नहीं । 4 BD मन्थने यदि । 5 P ... ।

इति ज्ञात्वा भवदभिमतदेवताशिषः पठन्तः स्म। यथारुचि हि श्रोतुः पुरः पठनीयं समयज्ञैः। वाक्पतिराह–यद्यप्येवं तथापि मुमुक्षवो वयमासन्ननिधनं ज्ञात्वा इह परमब्रह्म ध्यातुमायाताः स्म। बप्पभट्टयो जगदुः–किं तर्हि रुद्रादयो मुक्तिदातारो न भवन्तीति मनुध्वे?। वाक्पतिः प्राह–एवं सम्भाव्यते। बप्पभट्टयो बभाषिरे–तर्हि यो मुक्तिदानक्षमस्तं शृणु। पठामि।
5 स जिन एव।

१२२. मदेन मानेन मनोभवेन क्रोधेन लोभेन ससम्मदेन।
पराजितानां प्रसभं सुराणां वृथैव साम्राज्यरुजा परेषाम् ॥ ६२ ॥

१२३. जं दिट्ठी करुणातरंगियपुडा एयस्स सोमं मुहं, आयारो पसमायरो परियरो संतो पसन्ना[1] तणू।
तं मन्ने जरजम्ममच्चुहरणो देवाहिदेवो जिणो[2], देवाणं अवराण दीसइ जओ नेयं सरूवं जए ॥ ६३ ॥

10 इत्यादि बहु पेठे। वाक्पतिः प्राह–स जिनः क्वास्ते?। सूरिः–स्वरूपतो मुक्तौ मूर्तितस्तु जिनायतने। वाक्पतिर्ब्रूते–प्रभो! दर्शय तम्। प्रभुरपि आमनरेन्द्रकारिते प्रासादे तं निनाय। स्वयं प्रतिष्ठितवरं श्रीपार्श्वनाथमदीदृशत्। शान्तं कान्तं निरञ्जनं रूपं दृष्ट्वा प्रबुद्धो बभाषे[3]–अयं निरञ्जनो देव आकारेणैव लक्ष्यते। तदा[4] बप्पभट्टिसूरिभिर्देव-गुरु-धर्मतत्त्वान्युक्तानि। रञ्जितः सः। मिथ्यात्ववेषमुत्सृज्य जैन ऋषिः श्वेताम्बरोऽभूत्। जिनमथ[?]वन्दिष्ट, अपाठीच–

15 १२४. मयनाहिं[5]सुरहिएणं इमिणा किं किर[6] फलं णलाडेणं। इच्छामि अहं जिणवर! पणामकिणकलुसियं काउं ॥६४॥

१२५. दोवि गिहत्था धडहड वच्चइं को किर कस्स वि पत्त भणिज्जइं।
सारंभो सारंभं पुज्जइ कद्दमु कद्दमेण किमु[7] सुज्झइ ॥ ६५ ॥

प्रत्यासन्ने[8] आयुषि [9]मथुराचातुर्वर्ण्यस्य आमभूपसचिवलोकस्य च प्रत्यक्षं अष्टादशपापस्थानानि त्याजितः। नमस्कारं पञ्चपरमेष्ठिमयं श्रावितः। जीवेषु क्षामणां कारितो वाक्पतिः सुखेन
20 त्यक्ततनुर्दिवमगमत्। तत्सर्वं प्रधानैरन्यैरपि प्रथमं ज्ञापितो नृपः। पश्चाद्बप्पभट्टिर्गोपगिरिं गतः। राजाभितुष्टुवे[10] सूरिशक्रम्–

१२६. आलोकवन्तः सन्त्येव भूयांसो भास्करादयः। कलावानेव तु ग्रावद्रावकर्मणि कर्मठः ॥ ६६ ॥

§ ४७) एकदा राज्ञा सूरिः पृष्टः–किं कारणं येनाहं ज्ञातजैनतत्त्वोऽपि अन्तराऽन्तरा तापसधर्मे रतिं दधामि?। सूरिराह–प्रातर्वक्ष्यामः। प्रातरागताः प्रोचुः–राजन्! अस्माभिर्भारतीवचसा तव
25 प्राग्भवो ज्ञातः। त्वं कालिञ्जरगिरेस्तीरे शालनामा तपस्वी शालद्रुमाधोभागे ह्युपवासान्तरितभोजनस्तपो बहूनि वर्षाण्यतपथाः"। स मृत्वा त्वमुत्पन्नः। तस्यातिदीर्घा जटास्तत्रैव लतान्तरिता अद्यापि सन्ति"। तदाकर्ण्य आसनरास्तत्र राज्ञा प्रहिताः। तैर्जटा आनीताः। सूरिवाक्संवादो दृष्टः। भूपतिः सूरीणां पदोर्विलग्य तस्थौ। परमार्हतो बभूव।

§ ४८) अन्यदा सौधोपरितलस्थेन आमेन क्वापि गृहे भिक्षार्थं प्रविष्टो मुनिर्दृष्टः। तत्र युवति-
30 रेका कामार्त्ता गृहागतं मुनिं परब्रह्मैकचित्तं रिरमयिषुः कपाटसम्पुटं ददौ। मुनिर्नेच्छति ताम्। तया मुनये पादतलप्रहारे दीयमाने नूपुरं मुनिवरचरणे प्रविष्टं काकतालीयन्यायादन्धवर्त्तकी[12]न्यायाच[13]। राजा तद् दृष्ट्वा सूरये समस्यां ददौ–

---

1 A पसंता। 2 P इमो। 3 P बभाण। 4 AB तथा। 5 P मयनाए। 6 P कर। 7 PC किम। 8 ABD प्रत्यासन्ने; P अन्यासन्ने। 9 A 'मथुरा' नास्ति। 10 P राजा तुष्टतुष्टुवे। 11 AB तद्वत्ता। 12 P॰त्यक्षि। 13 P न्यायेन।

१२७. कवाडमासज्ज वरंगणाए अब्भत्थिओ[1] जुव्वणगव्वियाए ।

सूरिः पुरः[2] प्राह-

न मन्नियं तेण जिइंदिएण सनेउरो पव्वइअस्स पाओ ॥ ६७ ॥

अन्यदा[3] प्रोषितभर्तृकाया गृहे भिक्षुः कश्चिद् भिक्षार्थी प्रविष्टः । राज्ञा सौधाग्रस्थेन दृष्टः । तया भिक्षोः पारणायान्नमानीतम् । उपरि काकैर्भक्षितम् । मुनिकस्य दृष्टिस्तस्या नाभौ स्थिता[4] 5 तस्यास्तु दृष्टिस्तन्मुखकमले । आमः सूरये समस्यामार्पिपत्[5] । यथा-

१२८. भिक्खयरो पिच्छइ नाभिमंडलं सावि तस्स मुहकमलं ।

सूरिराह-

दुण्हं पि कवालं चडुयं पि काया विलुंपन्ति ॥ ६८ ॥

इति आमः श्रुत्वा चमत्कृतः । अहो सर्वज्ञपुत्रका एते ! । 10

§४९) अन्यदा कोऽपि चित्रकृद् भूपरूपं लिखित्वा उपभूपं गतः । बप्पभट्टिना श्लाघिता तत्कला । नृपात्तेन टङ्कलक्षं लेभे । लेप्यमयबिम्बचतुष्टयं च कारितम् । एकं मथुरायाम् । एकं मोढेरवसहिकायामणहिल्लपुरे । एकं गोपगिरौ । एकं सतारकाख्यपुरे । तत्र तत्र प्रतिष्ठाः प्रभावनाश्च कारिताः । अन्यदपि बहुकारि ।

§५०) अथ आमगृहे पुत्रो जातः सुलक्षणः । सोत्सवं तस्य दुन्दुकः इति नाम प्रतिष्ठितम् । सोऽपि 15 युवत्वे तैस्तैर्गुणैः पितृवत्पप्रथे । एकदा समुद्रसेनभूपाधिष्ठितं राजगिरिनामदुर्गं आमो रुरोध । अमितं सैन्यं कुद्दालादिसामग्री भैरवादयो यन्त्रभेदाः कृप्ताः[6] । प्राकारोऽतिबलेन प्रपातयितुमारेभे । नापतत् । आमः खिन्नः । तेन सूरयः पृष्टाः-अयमभ्रंलिहः प्राकारः कदाऽस्माभिर्ग्रहीष्यते ? । सूरिभिर्बभाषे-तव पुत्रपुत्रो भोजनामाऽमुं प्राकारं दृक्पातमात्रेण पातयिष्यति, अन्यो नैव । आमस्त्यक्तारम्भः प्राकाराद्बहिर्द्वादशाब्दीमस्थात् । शत्रुदेशमात्मसाच्चक्रे । दुन्दुकगृहे पुत्रो जातः । 20 तस्य भोज नाम ददे । स जातमात्रः पर्यङ्किकान्यस्तो[7] दुर्गद्वाराग्रमानीतः प्रधानैः । तद्दृक्प्रपातमात्रेण प्राकारः खण्डशो विशीर्णः । समुद्रसेनभूपो धर्मद्वारेण निःसृतः । आमो राजगिरिमविक्षत् । प्रजामारो न कृतः । अक्रूरा हि जैना राजर्षयः[8] । दयापरास्ते । रात्रौ आमाय राजगिर्यधिष्ठात्र्या[9] भणितम्-राजन् ! यदि त्वमत्र स्थास्यसि तदा तव लोकं हनिष्यामि । आमः प्रत्यूचे -लोकेन हतेन किं ते फलम् ? । यदि हनिष्यसि तदा मामेव घातय । एतन्निर्भयमामवचः श्रुत्वा 25 तुष्टो व्यन्तर उवाच-प्रीतोऽस्मि ते सत्त्वेन । याचस्व किञ्चित् । राजोचे-न किमपि न्यूनं मे; केवलं कदा मे मृत्युः, ब्रूहीदम् । व्यन्तर उवाच-षण्मासावशेषे आयुषि स्वयमेत्य वक्ष्यामि । षण्मासावशेषे आयुषि पुनरागतः सः । राज्ञोक्तम्-कियन्मे आयुः ? । व्यन्तरो वदति-देव !

१२९. गङ्गान्तर्मागधे तीर्थे नावाऽवतरतः सतः । मकाराद्यक्षरग्रामोपकण्ठे मृत्युरस्ति ते ॥ ६९ ॥

षण्मासान्ते इति विद्याः । पानीयान्निर्गच्छन्तं धूमं यदा द्रक्ष्यसि तदा मृत्युर्ज्ञातव्यः । साधना 30 च कार्या पारलौकिकी । इति गदित्वा गतो देवजातीयः । राजा प्रातः सूरिपार्श्वं गतः । सूरिरुवाच-

1 A अब्भट्ठिओ; P अब्भुट्ठिओ । 2 P 'पुरः' नास्ति । 3 A अन्यदिने । 4 P पतिता । 5 A अर्पितवान् । 6 P कल्पिताः । 7 P॰कान्यामे । 8 P महर्षयः राजर्षयश्च । 9 A अधिष्ठात्र्या ।

१ प्र० को०

राजन्! यद्व्यन्तरेण 'तथाऽग्रे कथितं आयुःप्रमाणं तत्तथैव। धर्मपाथेयं गृह्णीयाः'[1]। तदाकर्ण्य भूपस्तुतोष विसिस्मिये[2] च, अहो ज्ञानम्! । अथवा विस्मय एव कः ?–सूर्यो तेजस्वी, इन्दुराह्लादकः, गङ्गाम्भः पावनम्, जैना ज्ञानिन इति। दिनद्वये गते सूरिः श्रीआमस्य पुरः प्रसङ्गेन श्रीनेमिनाथस्याशीर्वादं पपाठ। यथा–

5 १३०. लावण्यामृतसारसारणिसमा सा भोजसूः[4] खेहला, सा लक्ष्मीः स नवोद्गमस्तरुणिमा सा द्वारिका तद्बलम्।
ते गोविन्दशिवासमुद्रविजयप्रायाः प्रियाप्रेरकाः, यो जीवेषु कृपानिधिर्व्यधित नोद्वाहं स नेमिः श्रिये ॥ ७० ॥

भूयोऽपि–

१३१. मग्नैः कुटुम्बजम्बाले यैर्मिथ्याकार्यजर्जरैः। नोज्ञयन्ते नतो नेमिस्ते चेज्जीवन्ति के मृताः ॥ ७१ ॥

§ ७.१) तथा रैवतकतीर्थमहिमा सूरिभिर्व्याख्याय पल्लवितः यथा, भूमिमाहत्योत्थाय परिकरं
10 बद्ध्वा सरभसं भूपः प्रतिशुश्राव–रैवतके नेमिमवन्दित्वा मया न भोक्तव्यमिति। लोकैर्निषिद्धः–राजन्! मा मा, दूरे रैवतको गिरिः, मृदवो भवादृशाः। राजाऽह–प्रतिज्ञातं मे न चलति। ततः सह सूरिणा आमः [*लक्षमेकं पृष्ठवाहा वृषभाः, करभसहस्र २०, हस्तिशत ७, अश्वलक्षमेकं, पदातिलक्षत्रयं, श्राद्धकुटुम्बसहस्र २०] सारसैन्यो[5] रैवतकायाचालीत्। स्तम्भतीर्थं यावद्गतः, तावत्[6] क्षुत्तापेन व्याकुलितोऽपि प्राणसन्देहं प्राप्तोऽपि नाहारमग्रहीत्। भीतो लोकः।
15 खिन्नः सूरिः। मन्त्रशक्त्या कूष्माण्डीं देवीं साक्षादानिनाय। तदग्रे कथयामास–तत्कुरु येन राजा जेमति जीवति च। तद्वचनात्कूष्माण्डी बिम्बमेकं महच्छिरसा बिभ्रती गगनेन आमसविधं गता, ऊचे च–वत्स! साऽहमम्बिका। तव सत्त्वेन तुष्टा। गगने आगच्छन्तीं मां त्वं साक्षाद्द्राक्षीः। मयेदं रैवतैकदेशभूतादवलोकनाशिखरान्नेमिनाथबिम्बमानीतम्। इदं वन्दस्व। अस्मिन्वन्दिते मूलनेमिर्वन्दित एव। कुरु पारणकम्। सूरिभिरपि तत्समर्थितम्। लोकेनापि स्थापि-
20 तम्। तद्बिम्बं वन्दित्वा राज्ञा ग्रासग्रहणं चक्रे। अद्यापि तद्बिम्बं स्तम्भतीर्थे पूज्यते। उज्जयन्त इति प्रसिद्धं तत्तीर्थम्। इत्यातोद्यानि ध्वानयन्नामो विमलगिरौ वृषभध्वजं सोत्सवं वन्दित्वा यावद्रैवताद्रिं गतः, तावता तत्तीर्थं दिगम्बरैः रुद्धं श्वेताम्बरसंघः प्रवेष्टुं न लभते। आमेन तज्ज्ञातम्। ज्ञात्वोचे–युद्धं कृत्वा निषेद्धॄन्हत्वा श्रीनेमिं नंस्यामि। तावत्तत्र दिगम्बरभक्ता एकादश राजानो मिलिताः। सर्वे युद्धैकतानास्तदा बप्पभट्टिना भणितम्–आमराजेन्द्र! धर्मकार्ये पापा-
25 रम्भः कथं क्रियते ?। लीलयैव तीर्थमिदमात्मसात्करिष्ये। भवद्भिः स्थिरैः स्थेयम्। एवं भूपं प्रबोध्य बप्पभट्टिरुपदिगम्बरं †उपतद्भक्तं भूपं च नरं प्रहित्याचभाणत्–इदं तीर्थं यस्याम्बिका दत्ते तस्य पक्षस्य सत्कमिति मन्यध्वे। तैरुक्तम्–युक्तमेतत्। ततो बप्पभट्टिना† सुराष्ट्रावास्तव्यानां श्वेताम्बरीयाणां दिगम्बरीयाणां च श्रावकाणां शतशः कन्यकाः पञ्चसप्तवार्षिक्यो मेलिताः। मिलिताः सभ्याः। बप्पभट्टिना अम्बादेवीपार्श्वात्कथापितम्–यदि सर्वाः श्वेताम्बरश्रावककन्यकाः

30 १३२. उज्जितसेलसिहरे दिक्खा नाणं निसीहिया जस्स। तं धम्मचक्कवट्टिं अरिट्ठनेमिं नमंसामि ॥ ७२ ॥

इति गाथां पठिष्यन्ति तदा श्वेताम्बरीयं तीर्थं, पक्षान्तरे तु दिगम्बरीयमिति। तत आनीता

---

1 P चोऽग्रे। 2 P गृह्णीथाः। 3 A विसिस्म॰। 4 P भोजभूः। * P पुस्तक एवेयं पंक्तिर्दृश्यतेऽतः प्रक्षिप्तप्राया मन्तव्या। 5 BD ॰सैन्यैः; P ॰सैन्यैर्द्वात्रिंशदुपवासैः। 6 P तत्र। † एतच्चिह्नान्तर्गतः पाठः ABD आदर्शे न दृश्यते, परं CEP आदर्शे उपलभ्यते।

303 अ

मुग्धबालिकाः। सर्वाभिः श्वेताम्बरपक्षबालिकाभिः पठिता सा गाथा। अपरासु तु नैकयाऽपि। ततो जातं श्वेताम्बरसाद्रैवततीर्थम्। अम्बिकया स्वस्थया पुष्पवृष्टिः श्वेताम्बरेषु कृता। ततो दृष्टा[1] दिक्पटा महाराष्ट्रादिदक्षिणदेशानगमन्। राज्ञाऽन्यैरपि सर्वसङ्घैश्चिरात्तत्र मिलितैर्नेमिर्नेमे। वित्तं ददे। प्रभासे चन्द्रप्रभः प्रणेमे। बन्दिमोक्षः सर्वत्रापि कारितः। आमस्य भुक्तौ गूर्जरादिदेशास्तदा तीर्थानां चिरं पूजोपयोगिनो हट्टाद्यायाः प्रक्लृप्ताः। एवं कार्याणि कृत्वा ससूरिर्नृपो गोपगिरिं प्राविशत्। संघपूजादिमहास्तत्र नवनवाः। प्राप्तप्राये काले दुन्दुको राज्ये प्रतिष्ठितः। आपृष्टः सः। लोकोऽपि क्षमितः। अनृणो देशः कृतः। सह सूरिणा नावाऽऽरूढो गङ्गासरित्तीरे[2] तीर्थं मागधं गतः। तत्र जले धूमं दृष्टवान्। तदा सूरीन्द्रमक्षमयत्। संसारमसारं विदन् अनशनमगृह्णात्। समाधिस्थः श्रीविक्रमकालात् अष्टशतवर्षेषु नवत्यधिकेषु व्यतीतेषु भाद्रपदे शुक्लपञ्चम्यां पञ्च परमेष्ठिनः स्मरन् राजा दिवमध्यष्ठात्। सूरयस्तत्त्वज्ञा अपि रुरुदुः। चिरप्रीतिमोहो दुर्जय एव। सेवकास्तु चक्रन्दुः—हा शरणागतरक्षावज्रकुमार! हा राजस्थापनादाशरथे! हा अश्वदमननल! हा सत्यवाग्युधिष्ठिर! हा हेमदानकर्ण! हा मज्जाजैन[3]श्रेणिक! हा सूरिसेवासम्प्रते! हा अनृणीकरणविक्रमादित्य! हा वीरविद्याशातवाहन! अस्मान् विहाय क गतोऽसि?। दर्शयैकदाऽस्मभ्यमात्मानम्। मैकाकिनो मुञ्च[4]। एवं विलपन्तस्ते सूरिभिः प्रतिबोधिताः—भो भो! सत्यं[5] दैवेन पापेन—

> १३३. आलब्धा कामधेनुः सरसकिशलयश्चन्दनश्चूर्णितो हा
> छिन्नो मन्दारशाखी फलकुसुमभृतः खण्डितः कल्पवृक्षः।
> दग्धः कर्पूरखण्डो घनहतिदलिता मेघमाणिक्यमाला
> भग्नः कुम्भः सुधायाः कमलकुवलयैः केलिहोमः कृतोऽयम् ॥ ७३ ॥

तथापि मा शोचत शोचत। यतः—

> १३४. पूर्वाह्णे प्रतिबोध्य पङ्कजवनान्युत्सार्य नैशं तमः, कृत्वा चन्द्रमसं प्रकाशरहितं निस्तेजसं तेजसा।
> मध्याह्ने सरितां जलं प्रविसृते[6] रापीय दीप्तैः करैः, सायाह्ने रविरस्तमेति विवशः किं नाम शोच्यं भवेत् ॥७४॥

इति लोकं निःशोकं कृत्वा लोकेन सह सूरिर्गोपगिरिमागात्। सूरिभिर्दुन्दुको राजा आमेन आमशोकेन जात्यमुक्ताफलस्थूलानि अश्रूण्युद्गिरन् हिमम्लानपद्मदीनवदनश्चिन्ताचान्तस्वान्तो बभाषे—राजन्! कोऽयं महतस्तव पितृशोकः। स हि चतुर्वर्गं संसाध्य कृतकृत्यो बभूव। यशोमयेन देहेन चाचन्द्रं[7] जीवन्नेवास्ते[8]। पुण्यलक्ष्मीः कीर्तिलक्ष्मीश्चेति द्वे नरस्योपकारिण्यौ वल्लभे!

> १३५. पुण्यलक्ष्म्याश्च कीर्तेश्च विचारयत चारुताम्। स्वामिना सह यात्येकाऽपरा तिष्ठति पृष्ठतः ॥ ७५ ॥

अन्योऽप्येवंविधः कोऽपि भवतु। इत्येवंविधाभिर्वाग्भिर्दुन्दुकराजं सूरिराजो निःशोकमकार्षीत्। दुन्दुकः शनैः शनैः परमार्हतोऽभूत्। राजकार्याणि अकार्षीत्। त्रिवर्गं स समसेविष्ट।

§५२) एवं वर्त्तमाने काले, एकदा दुन्दुकश्चतुष्पथे गच्छन् कण्टिकां नाम गणिकामुदाररूपां चिद्रूपां युवजनमृगवागुरां मदनमायामयीमालोकिष्ट। तां शुद्धान्तस्त्रीमकार्षीत्। तया दुन्दुकस्तथा वशीकृतो यथा यदेव सा वदति तत्सत्यम्; यदेव सा करोति तदेव हितं मनुते। सा तु का-

---

1 A नष्टा। 2 A तीर्थं। 3 BP जैनत्व०। 4 A मा मुचः। 5 AB सत्यं। 6 P प्रविशतैः। 7 P नास्ति। 8 A जीवन्नास्ते।

णकारिणी वाक्पटुः सर्वं राज्यं ग्रसते हिमानीव चित्रम् । भोजमातरं पद्मां नाम अन्या अपि राज्ञीरन्वयवतीर्विनयवतीर्लावण्यवतीस्तृणाय मनुते । एकदा कलाकेलिनामा ज्योतिषिको निशि विसृष्टे सेवकलोके दुन्दुकराजं विजनं दृष्ट्वाऽवादीत्–देव ! वयं भवत्सेवकत्वेन सुखिनः ख्याताः श्रीशाश्च । यथातथं[1] ब्रूमः–अयं ते भोजनामा तनयो भाग्याधिकस्त्वां हत्वा तव राज्ये निवे-
5 क्ष्यते । यथार्हं स्वयं कुर्वीथाः । राजा तदवधार्य वज्राहत इव क्षणं मौनी तस्थौ । ज्योतिषिकं विससर्ज । सा वार्ता भोजजननीसहचर्या दास्यैकया विपुलस्तम्भान्तरितया श्रुता । भोजमात्रे चोक्ता । सा पुत्रमरणाद्बिभाय । राजापि कण्टिकागृहमगात् । सापि राजानं सचिन्तमालोक्याऽलापीत्–देव ! अद्य कथं म्लानवदनः ? । राजाऽऽह स्म–किं क्रियते ?, विधिः कुपितः । पुत्रान्मे मृत्युर्ज्ञानिना दृष्टप्रत्ययशतेन कथितः । कण्टिका वदति स्म–का चिन्ता, मारय पुत्रम् । सुत-
10 मपि निर्दलयन्ति राज्यलुब्धाः । सुतो न सुतः । सुतरूपेण शत्रुरेव सः । तद्वचनाद्दुन्दुकः सुतं जिघांसामास । यावता घातयिष्यति तावता भोजमात्रा पाडलीपुरे[2] स्वभ्रातॄणां सूराणां राज्यश्रीस्वयंवरमण्डपानां स्नेहलानां धर्मज्ञानामग्रे प्रच्छन्नैर्नरैर्लेखेन ज्ञापितम्, यथा–एवमेवं भवतां भागिनेयो विनंक्ष्यति । रुष्टो[4] राजा । आगत्य एनं गृहीत्वा गच्छत[5] । रक्षतां[6] जीववत् । मा स्माहं भवत्सु सत्सु निष्पुत्राऽभूवम्–इति । तेऽप्यागच्छन्, दुन्दुकमनमन् । उत्सवमिषेण भागिनेयं
15 भोजं गृहीत्वा पाटलीपुत्रमगमन् । तत्र तमपीपठन्, अलीललन्[8] । शस्त्राभ्यासमचीकरत् । जीववदमंसत । तत्र तस्य पञ्चाब्दी दिनैः कतिभिरप्यूनाऽतिक्रामति स्म । कण्टिका दुन्दुकाग्रे कथयति स्म–देव ! पुत्ररूपस्ते शत्रुर्मातृशाले वर्द्धते । नखच्छेद्यं पर्शुच्छेद्यं मा कुरु । अत्रानीय च्छन्नं यमसदनं नय । राजाऽऽह–सत्यमेतत् । ततो दूतमुखेन [9]दुन्दुको भोजं तन्मातुलेभ्योऽयाचीत् । ते भोजं नार्पयन्ति । पुनः पुनः स्वान् दूतान् दुन्दुकः प्रहिणोति । भोजमातुलाः प्राहुः–राजन् !
20 वयं तव भावं विद्मः, नार्पयाम एवैनम् । धर्मपात्रमसौ । अन्योऽपि शरणागतो रक्ष्यः क्षत्रियैः, किं पुनरीदृग् भगिनीपुत्रः ? । बलात्कारं ब्रूपे चेत्, युद्धाय प्रगुणीभूयागच्छेः । भगिनीपतये चमत्कारं दर्शयिष्यामः । तद्दूतैरागत्योक्तम् । दुन्दुकः कुपितोऽपि तान् हन्तुं न क्षमः ॥‡ भोजोऽपि तैः पितुर्दुष्टत्वं ज्ञापितः कथञ्चन उपपितृ नैति । ततो दुन्दुकेन बप्पभट्टिसूरयः प्रार्थिताः–यूयं गत्वा भोजं सुतमनुनीयानयत मानयत माम् । अनिच्छन्तोऽपि तत्सैनिकैः सह पाटलीपुत्रं चेलुः ।
25 अर्द्धमार्गं सम्प्राप्तैः स्थित्वा विमृष्टं ज्ञानदृष्ट्या–भोजस्तावन्मम वचसा नृपसमीपं नैष्यति । आनीयते वा यथा तथा; तदानीतोऽपि पित्रा हन्यते । वागलङ्घने राजाऽपि क्रुद्धो मां हन्ति । तस्मादितो व्याघ्र इतो दुस्तटी इति न्यायः प्राप्तः । समाप्तं च ममायुः, दिवसद्वयमवशिष्यते, तस्मादनशनं शरणम्–इति विमृश्यासन्नस्थयतयो भाषिताः–नन्नसूरि-गोविन्दाचार्यौ प्रति हिता भवेत । श्रावकेभ्यो मिथ्यादुष्कृतं ब्रूयात् । परस्परममत्सरतामाद्रियेध्वम् । क्रियां पालयेत ।
30 आबालवृद्धान् लालयेत । नो वयं युष्मदीयाः, न यूयमस्मदीयाः । सम्बन्धाः कृत्रिमाः सर्वे । इति शिक्षयित्वाऽनशनस्थाः समतां प्रपन्नाः ।

१३६. अर्हतस्त्रिजगद्वन्द्यान् सिद्धान् विध्वस्तबन्धनान् । साधूंश्च जैनधर्मं च प्रपद्ये शरणं त्रिधा ॥ ७६ ॥

---

1 ABD तथातथं । 2 A ॰पुत्रे । 3 P 'नरैः' नास्ति । 4 B राजा रु॰ । 5 P आगच्छत । 6 P रक्षति । 7 P निष्पुत्रो । 8 AB अलीलपन् । 9 A दुन्दकः । 10 AB मातुलपार्श्वं । ‡ एतच्चिह्नान्तर्गतः पाठः पतितः P पुस्तके ।

१३७. महाव्रतानि पञ्चैव षष्ठकं रात्रिभोजनम् । विराधितानि यत्तत्र मिथ्यादुष्कृतमस्तु मे ॥ ७७ ॥

इति ब्रुवाणा आसीना अदीनाः कालमकार्षुः । श्रीबप्पभट्टिसूरीणां श्रीविक्रमादित्यादष्टशत-वर्षेषु गतेषु भाद्रपदे शुक्लतृतीयायां रविदिने हस्तर्क्षे[1] जन्म, पञ्चनवत्यधिकेषु तेषु गतेषु स्वर्गा-रोहणम् । तदैव मोढेरे नन्नसूरीणामग्रे भारत्योक्तम्–भवद्गुरव ईशानदेवलोकं गताः । तत्र बाढं शोकः प्रससार । 5

१३८. शास्त्रज्ञाः सुवचस्विनो बहुजनस्याधारतामागताः
सद्वृत्ताः स्वपरोपकारनिरता दाक्षिण्यरत्नाकराः ।
सर्वस्याभिमता गुणैः परिवृता भूमण्डनाः सज्जना
धातः ! किं न कृतास्त्वया गतधिया कल्पान्तदीर्घायुषः ॥ ७८ ॥

वृद्धैस्तु प्रबोधो दत्तः– 10

१३९. हित्वा जीर्णमयं देहं लभते भो पुनर्नवम् । कृतपुण्यस्य मर्त्यस्य मृत्युरेव रसायनम् ॥ ७९ ॥

इति । दुन्दुकेन सूरिभिः सह प्रहिता ये सैनिकास्ते निवृत्य दुन्दुकपार्श्वे गताः । सोऽपि पश्चात्ता-पानलेन दन्दह्यते स्म । भोजेनापि समातुलेन सूरिशिष्याणामन्येषामपि लोकानां मुखादवगतं यथा–सूरय एवं मम्रुः । तत्र पार्श्वे नाजग्मुः । मा स्मायमसदुपरोधसङ्कटे पतितः पितुः पार्श्वे गतः सन् मृत इति कृपां दधुः[2] । तदेतदाकर्ण्य भोजस्तथा पीडितो यथा वज्रपातेनापि न पीड्यते । 15 पितुरन्तिकं नागादसौ ।

§५३) एकदा मालिकः कोऽपि पूर्वमामराजभृत्यो विदेशं भ्रमित्वा[3] भोजान्तिकमागतः पाटलीपुरे । तेनोक्तम्–देव ! त्वं मत्स्वामिकुलप्रदीपः । मया विदेशे सद्गुरोर्मुखाद्विद्यैका लब्धा मातुलिङ्गी नाम, ययाऽभिमन्त्रितेन मातुलिङ्गेन हताः करि-हरिप्राया अपि बलिनो म्रियन्ते, मानवानां तु का कथा । देव ! गृहाण ताम् । भोजेन सा तस्मादात्ता । प्रमाणिता; सत्या । 20 मालिको दानमानाभ्यां भोजेन रञ्जितः । मातुलाः सर्वे भोजेन विद्याशक्तिं प्रकाश्य तोषिताः । त ऊचुः–यदि इयं ते शक्तिस्तदा प्राभृतमिषेण मातुलिङ्गानि गृहीत्वाऽस्माभिः सह पितुः समीपं व्रज । पितरं निपात्य राज्यं गृहाण । तद् रुरुचे भोजाय । चलितो बहुमातुलिङ्गशाली[4] सन् । गतः पितुर्द्वारम्, कथापितं च–तात ! त्वं पूज्योऽहं शिशुः । त्वत्तो मरणं वा राज्यं वा सर्वं रम्यं मे । राजा सन्तुष्टः । अहो विनीतः सुतः, आयातु–इति विमृश्य आहूतो भोजः । शोधितो 25 मध्यमागतः । एकासनस्थौ कण्टिका-राजानौ पृथक्पृथग् मातुलिङ्गेन जघान । सम्यग्विद्या हि नान्यथा । उपविष्टो दुन्दुकराज्ये भोजः । तन्मातुला अतुलं तोषं दधुः । माता पद्मा प्रससाद । दुन्दुकेन धनहरणेन ग्रासोद्दालनादिना दूनचरा राजन्यकाः पुनर्जातमात्मानं मेनिरे । महाजनो जिजीव । वर्णाः सर्वे उन्मेदुः । संसारसरोऽम्भोजं भोजं कमला भेजे । दोर्बलात्परिच्छदबलाच्च जगज्जिगाय । 30

§५४) अथ कृतज्ञतया मोढेरपुरे नन्नसूरये विज्ञप्तिं दत्त्वा उत्तमनरान् प्रैषीत् । ते गतास्तत्र । विज्ञप्तिर्दर्शिता तैस्तत्र । वाचिता नन्नसूरि-गोविन्दाचार्यैर्यथा–स्वस्ति श्रीमोढेरे परमगुरुश्रीनन्न-सूरि-श्रीगोविन्दसूरिपादान् सगच्छान् गोपगिरिदुर्गात् श्रीभोजः परमजैनो विज्ञपयति, यथा–इह

1 P हस्तार्के । 2 P म्रियत । 3 P भ्रान्त्वा । 4 P °शोभी ।

तावत्प्रज्ञागङ्गाहिमाद्रयः 'सर्वसमाचारीनारीसौभाग्यवर्द्धनमकरध्वजाः क्षितिपतिसदःकुमुदिनी-
श्वेतदीधितयो भारतीधर्मपुत्राः श्रीबप्पभट्टिसूरयस्त्रिदिवलोकलोचनलेह्यललितपुण्यलावण्यता-
मादधिरे। तत्स्थाने सम्प्रति दीर्घायुषो यूयं स्थ। दृष्टविज्ञप्तिप्रमाणेनात्र' पादोऽवधार्यः। तद् दृष्ट्वा
भक्तिरहस्यं सूरयः ससंघाः सुतरां जहृषुः। संघानुमत्या गोविन्दाचार्यं मोढेरके मुक्त्वा श्रीनन्नसू-
5 रयो गोपगिरिं समसरन्'। भोजः पादचारेण ससैन्यः सम्मुखमायातः। गुरोः पादोदकं पपौ।
उल्लसत्तृष्णो गिरं शुश्राव। स्थानस्थानमिलितजनहृदयसंघट्टचूरितहारमौक्तिकधवलितराजपथं
पुरं निनाय। सिंहासने निवेशयामास तान्। मङ्गलं चकार। तदाऽऽज्ञामयो बभूव। तद्भक्ताना-
त्मवद्दर्श। तदभक्तान् विषवदीक्षांचक्रे। तदुपदेशाज्जिनमण्डितां मेदिनीं विदधौ। दुन्दुकस्य
तादृग् मरणं स्मृत्वा' कुपथेषु न रेमे। मथुरा-शत्रुञ्जयादिषु यात्राश्चकार। एकादश व्रतानुचचार।'
10 पूर्वराजर्षियशांसि उद्दधार। चिरं राज्यं भेजे। इत्येवं गोपगिरौ भोजो धर्मं लालयामास उदि-
याय च। अन्यैरपि पुण्यपुरुषैरेवं भाव्यम्।

॥ इति श्रीबप्पभट्टिचरित्रम् ॥ ९ ॥

॥ ग्रन्थाग्रं ६०० ॥

परिशिष्ट : 3 .

बप्पभट्टिसूरिचरिताचे पं. कृष्णमास्वामींनी केलेले संस्कृत शब्द रूपांतर

श्रीरस्तु ॥

बप्पभट्टिचरितम् ।*

अस्ति गुर्जरेषु पाटलाभिधानं नगरम् । तत्र विजिताशेषबाह्याभ्यन्तरारातिर्निखिलशास्त्रतत्त्ववेदी सिद्धसेनो नाम मुनीन्द्र आसीत् । स कदाचिद्वीतरागं श्रीमहावीरं प्रणन्तुं मोढेरमगात् । तत्र तं तीर्थवर्यमभिवन्द्य तत्रैव निद्राणेन तेनापररात्रे कश्चन केसरिपोतो महासत्त्वश्चैत्यशृङ्गमारुह्य खेलन् स्वप्ने दृष्टः । सद्य एव स पुलकिताङ्गयष्टिरजागरीत् । स्वप्नं च तमनुस्मरन् 'नियतमयं कल्याणोदर्को भविष्यति' इति मनसि विनिश्चित्य नितरां मुमुदे । परेद्यवि प्रातर्मुदितमानसस्तत्रागतेभ्यो मुनिपुङ्गवेभ्यः स्वप्नमेनमावेद्य तस्य फलं चाकथयत्—'नूनमखिलविमतगजेन्द्रपाटनपटुः कश्चन शिष्योऽस्माकं भागधेयेनाद्य समेष्यति, मतं चार्हतं प्रचारयिष्यति' इति । एतदुपश्रुत्य मुदितमानसैस्तैः सह चैत्यमागत्य यावदयं महावीरं तीर्थकरं प्रणन्तुमारेभे तावत् षड्वर्षदेशीयः कश्चन स्पृहणीयाकृतिर्बालकः पुरः प्रादुरभूत् । बालकोऽसौ 'त्वं कस्कः ? कुतस्कुतः ?' इति पृष्टः प्रत्युवाच—'आर्याः, पाञ्चालोऽहं भट्टेस्तनूजो बप्पिगर्भे जातो नाम्ना शूरपालोऽस्मि । बालेनैव मया यदा बहवः शत्रवो विनिहतास्तदा पिता मां न्यवारयत् । तेन कुपितोऽहं पितरावनापृच्छ्यैवात्र प्रभुपादमूलमागतोऽस्मि' इति । श्रुत्वैतन्मुनिपुङ्गवास्तस्यामानुष्यकं तेजो वीक्ष्य विस्मिताः 'आयुष्मन्, किं त्वमस्माकमन्ते वस्तुमिच्छसि'? इत्यपृच्छन् । सोऽपि 'पूज्याः अद्यैव मद्भाग्यैः फलितम् , तथैव करोमि' इत्यभिधाय तद्वरिवस्यापरायणस्तत्रैव न्यवसत् । कदाचिदेकशः श्रुतमात्रेणानुष्टुभां सहस्रमवधारयतस्तस्य प्रेक्षाभियोगसंतुष्टेन मुनीन्द्रेण प्रेषिता मुनयो बालकेन सह डुम्बातिधीग्राममेत्य तत्पितरौ बालकस्य स्वेषां निकटेऽवस्थानमयाचन्त । पिता तु सुतमुखकमलदर्शनेनामन्दानन्दसागरनिमग्नोऽपि मुनिवचनाकर्णनेन कुमारस्य

---

* This prose version was made by Pandit V. Krishnamacharya of the Govt. Oriental Mss. Library, Madras, for purposes of comparison. It is published here as an appendix in the belief it may prove to be of use to the readers of the article who may need this assistance.

विरहमसहमानो नितरामखिद्यत । कृच्छ्राच्च निगृहीतखेदः प्रत्यवादीत्—
'आर्याः, नियतमर्वामि भवन्तो मम कुमारस्य निःश्रेयसाय प्रवृत्ताः ।
तथाप्ययमेक एवावयोराशाधरः पुत्रकः । तत्कथमेनं परिमोक्तुं पारयामि ?

निर्बन्धो यदि पूज्यानां तदा नावभिधां यदि ।
विश्रुतां बप्पभट्टीति कुरुध्वे तत्सुतोऽस्तु वः ॥' इति ।

ते च तथेत्यङ्गीकृत्य बालकमादाय मोढेरमागत्य सिद्धसेनानुमत्या तस्य दीक्षां कारयित्वा भद्रकीर्तिरिति दीक्षानाम चक्रुः । एतच्च विक्रमकालतो वर्षाणां सप्ताधिके शताष्टके गते निर्वृत्तम् । परंतु लोके बप्पभट्टिरिति पितृप्रतिपन्नं नामैव प्रथामुपगतम् । मोढेरस्थितैः सर्वैर्गुरुभिरभ्यर्थितः सिद्धसेनो बालकेनानेनान्यैश्च मुनिभिः सह तत्रैव वसन् कदाचिदस्मै बालकाय सारस्वतं मन्त्रमुपदिदेश । बालो निशीथे योगस्थस्तं मन्त्रमावर्तयन् तत्परितोषितया भारत्या समागत्यानुजगृहे ।

एकदा भद्रकीर्तिरेकाकी बहिर्विचरन् वृष्टिपीडितः किंचित् देवकुलमुपाश्रयत् । तदैवान्यः कश्चन बालोऽपि वृष्ट्याकुलितस्तदेव देवकुलमाजगाम । तत्र च तयोः कुमारयोः सरसमालपतोः सरसानि काव्यानि वदतोः सख्यं समजनि । शान्ते वर्षे द्वावपि तौ बालौ गुरुसमीपमाजग्मतुः । ततो गुरवो भद्रकीर्तिना सह समागतं द्वितीयं बालमुद्वीक्ष्य तमाशीर्भिरभिनन्द्य तस्योदन्तमपृच्छन् । बालः प्रत्यवादीत्—'आर्याः,

वयंमौर्यमहागोत्रसंभूतस्य महाद्युतेः ।
श्रीचन्द्रगुप्तभूपालवंशमुक्तामणिश्रियः ॥
कान्यकुब्जयशोवर्मनृपतेः सुयशोऽङ्गभूः
पित्रा शिक्षावशात् किंचिदुक्तः कोपादिहागमम् ॥'

इति संक्षेपतः स्वीयमुदन्तमावेद्य 'आम' इति स्वनाम खटिकया भूमावालिखत् । स्वनामाग्रहणेन 'धर्मरहस्यवेद्ययं कुमारः' इति विस्मिता गुरवः पूर्ववृत्तं कंचन विषयं स्मृतिपथमानिन्युः—पूर्वं श्रीरामसैन्ये षण्मासवयस्को बालः कश्चन पीलुवृक्षतले वस्त्रान्दोलिकाशायी दृष्टः । तज्जननी फलान्याचिन्वती दृष्ट्वापृच्छाम—'वत्से, कासि त्वम् ? कथमीदृशीमवस्थामापन्ना ?' इति । सा प्रत्यवादीत्-'आर्याः, अहं कान्यकुब्जभूपालस्य यशो-

वर्मणः कुटुम्बिनी । आपन्नसत्त्वां मामालोक्य मात्सर्योपहता मत्सपत्नी कमपि हेतुमारोप्य नृपेण मां नगरान्निरवासयत् । ततो वने दारकमिमं प्रसूता वन्यैर्जीवन्ती स्वानि भाग्यानि केवलं निन्दन्ती महत् कृच्छ्रमनुभवामि ' इत्युक्त्वा प्रारुदत् । अस्माभिश्च ' बाले, मा विषाद । पितृगेह इवास्मन्निकटे बालकेन सह सुखं स्थीयताम् ' इत्यभिहिता अस्मन्निकट एवावसत् । कतिपयेन कालेन तत्सपत्नी दिष्टगतिमुपगता । नृपतिश्च तां बालामगलितचारित्रामवगम्य पुनराकारयत् । नूनमसौ स एव बालः—इति । अथ बालमेनं स्निग्धेन चक्षुषोद्वीक्ष्य स्वनिकट एवावस्थाप्य भद्रकीर्तेः सच्छात्रं विधाय निखिला द्वासप्ततिं कला अध्यापयन् । एकदासौ राजकुमारः सब्रह्मचारितास्नेहात् सुहृदं बप्पभट्टिमवदत्—' सखे, यदाहं राज्यं प्राप्नुयां तदा तद्राज्य तुभ्यं प्रदास्यामि ' इति । कतिपयेन कालेन तं राजकुमारं तत्पिता समाहूय राज्ये ऽभिषिषेच । गच्छता च कालेन यशोवर्मा दिवं गतः । तस्य यथावदौर्ध्वदेहिकानि कर्माण्यामो निरवर्तयत् । अथ राजकुमारः प्रधानपुरुषैः सुहृदं बप्पभट्टिं समानाय्य राज्यं तस्मै न्यवेदयत् । बप्पभट्टिस्तु ' सर्वसङ्गमुचामस्माकं किं राज्येन ? ' इति तन्निराचकार । आमभूपोऽपि प्रतिज्ञाहान्या विमनायितः पुनः सुहृदमभ्यर्थयत्—

' सुहृदां वः पुरा पूर्वं यन्मया प्रतिशुश्रुवे ।
राज्यमाप्तं प्रदास्यामि तन्नक्षम वरवारणः ।
काममेवामुमादत्त चेयूयं तन्मम प्रभो ॥ '

इति । तदपि निराकुर्वाणं सुहृदं धरणीधरो बलात् पट्टकुञ्जरे समारोप्य जितक्रोधाद्यभिज्ञानतया छत्रचतुष्टयं धारयित्वा चामरैः संवीज्य महतोत्सवेन पुरं प्रावेशयत् । अथ धौतान्तरमनर्घं सिंहासनमानीय तस्मिन्नुपवेष्टुं तं प्रार्थयत । तेनापि ' जाते सूरिपदेऽस्माकं कल्प्यं सिंहासनासनम् ' इति प्रतिपन्ने राजा खिन्न एवान्यस्मिन्नासने तमुपावेशयत् ।

एवं महतोपचारेण सखायं कतिपयं कालं तत्रावस्थाप्य गुरुसंनिधिगमनमभिलषन्तं तं महता सैन्येन छत्रचामरादिपरिच्छदैश्च सह गुरुसंनिधिं प्रस्थापयामास । प्रधानपुरुषास्तेन सह मोढेरं प्राप्य सिद्धसेनं मुनीश्वरं प्रणम्य व्यजिज्ञपन्—' आर्य, अचन्द्रं नभो दृष्ट्वा चकोर इवानेन विनाकृतां सभां दृष्ट्वास्माकं राजा नितरां खिद्यते । तदेनमाचार्यके प्रतिष्ठाप्यास्माभिः सह राजसमीपं प्रेषयितुमनुगृहाण । अस्योपदेशेनास्माकं राजा भवाब्धिं तरतु '

इति। प्रथममेतदनभ्युपगच्छता पुनः पुनरनुनाथितेन मुनिना कथंकथमप्यनुज्ञातः पुण्येऽहनि शुभे मुहूर्तेऽर्हत्तत्त्वमुपदिष्टो बहुप्रकारमनुशिष्टश्च कान्यकुब्जं प्रतस्थे। आमभूपतिः सुहृदमागतमवगत्य महता परिवारेण तं प्रत्युद्गम्य महान्तं द्विपमारोप्य पुरं प्रावेशयत्। अतिमनोहरमभ्रंलिहं प्रासादमानाय्य महति सिंहासने गाढिकयास्तृते बलादनिच्छन्तमपि तं सुहृदं समुपावेशयत्। बप्पभट्टिर्भूपालेन सह सरसानालापान् कुर्वन् अन्तरान्तरा विविधान् धर्मानवबोधयंश्च राज्ञो नितरां प्रीतिपात्रं मान्यश्च बभूव। अथैकदा बप्पभट्टिर्भूपालमवोचत्—'महाराज, धर्म एव सम्यगनुष्ठितो नृणां परं पदं प्रयच्छति। तेषु च धर्मेषु जिनमन्दिरनिर्माणं मुख्यतया गण्यते। तद्भूपालैः संपन्नविभवैरवश्यं जिनमन्दिरं निर्मातव्यम्' इति। एतदाकर्ण्यामभूपाल आत्मानं कृतकृत्यं मन्यमानस्तस्मिन्नगरे सैकशतहस्तोच्छ्रितं प्रासादं निर्माय तत्राष्टादशभारोन्मानां श्रीवर्धमानगुरोः सुवर्णप्रतिमां स्थापयित्वा स्वसुहृदा तस्याः प्रतिष्ठां कारयामास। तथा गोपगिरौ त्रयोविंशतिहस्तोन्नतं प्रासादं निर्माप्य तत्र सपादलक्षसुवर्णटङ्कव्ययेन मण्डपं कारयित्वा तत्र श्रीवीरगुरोः प्रतिमां स्थापयामास। एवं राज्ञोऽस्मिन् पण्डितवरे निरतिशयं बहुमानं दृष्ट्वा मत्सरग्रस्ताः पौरा राजानमुपजापेन किंचिदिव तस्मिन् विमनायितमकुर्वन्। अथैकदा राजा सुहृदे यथापुरं सिंहासनमदत्वान्यमहीपालोपनिवेशार्हमासनमदात्। तेन च दुर्मनायितो बप्पभट्टी राजानमेवमबोधयत्—

'मर्दय मानमतङ्गजदर्पं विनयशरीरविनाशनसर्पम्।
क्षीणो दर्पाद्दशवदनोऽपि यस्य न तुल्यो भुवने कोऽपि॥'

इति। राजाप्येतदाकर्ण्य प्रकृतिमापन्नो विगर्हयन्नात्मानं सुहृदमनुनीतवान्। यथापुरं च सुहृद्यवर्तत।

अथैकदा राजा किंचिदिव प्रणयकुपितां पदे पदे मुखभङ्गं कुर्वतीं देवीमुद्वीक्ष्याभाषत—

'बाले चङ्क्रमन्ती पदे कुतः करोषि मुखभङ्गम्।'

इति। अस्य बप्पभट्टिः पूरणमकरोत्—

'नूनं रमणापराधे मेखलयापि पदि नह्यन्ति।'

इति। एतदाकर्ण्य राजा किंचिदिव विकृतोऽभवत्। राजानमेवं विकृतं दृष्ट्वा सूरिरयं श्लोकमिमं बहिर्द्वारकवाटयोर्विलिख्य नगरान्निष्क्रान्तः—

'याम: स्वस्ति तवास्तु रोहणगिरेर्मत्त: स्थिति: प्रच्युता
वर्तिष्यन्त इमे कथं कथमिति स्वप्नेऽपि मैवं कृथाः।
श्रीमंस्ते मणयो वयं यदि भवल्लब्धप्रतिष्ठास्तदा
ते शृङ्गारपरायणाः क्षितिभुजो मौलौ करिष्यन्तिः नः॥'

इति। कान्यकुब्जान्निनिष्क्रान्तः क्रमेण गौडेषु लक्षणावतीं नाम पुरीं प्राप्य तत्रत्येन वाक्पतिराजेन पण्डितवरेण संगतस्तेन तत्पुराधिपाय धर्मभूपालाय निवेदितः—

'वशे वाग्देवता यस्य कविर्मे पूर्वसंस्तुतः।
स इहागात्प्रभोः पुण्यैर्बप्पभट्टिर्मुनीश्वरः॥'

इति। एतदाकर्ण्य राजा तदागमनेन मुदितमना मनस्यचिन्तयत्—'नूनमद्य सुदिवसोऽस्माकं यदनेन सूरिवर्येणाहं द्रष्टव्यः। परं तु आमभूपालो मे शत्रुः कदाचिदेनमिहस्थमवगत्य पुनराकारयेत्। नूनमसौ पूर्वसौहृदात् तत्प्रार्थनामङ्गीकृत्येतो व्रजेत्। ततो मे महती तिरस्कृतिर्जायेत। अतः सूरीन्द्रेणेयं प्रतिज्ञा तावत्कारयितव्या—यदामभूपालः स्वयमेव सभामागत्याकारयति तदैवेतः प्रस्थातव्यम्, नान्यथा' इति। एवं निश्चित्य सूरीन्द्रमेतदावेदयत्। स च तथेत्यङ्गीचकार। तच्छ्रुत्वा धर्मभूपो मुदितमुदितो महतोत्सवेन तं सूरिवर्यं पुरं प्रवेश्य सभामानाय्य बहुमानयत्। बप्पभट्टिश्च विविधैः काव्यालापैः राजानमतोषयत्।

तत्रापि काव्यवक्तृत्वलीलानन्दितपर्षदः।
अवतस्थे सुखं सूरिर्दोगुंदग? इवामरः॥

आमभूपालोऽपि प्रातः सभामनागतं बप्पभट्टिमुपश्रुत्य भृशमुद्विग्नस्तदन्वेषणाय परितः पुरुषान् प्राहिणोत्। अन्येद्युर्बहिरारामे पुरा संचरमाणः परस्परमभिघ्नतोः सर्पनकुलयोः सर्पेण विनिहतं नकुलं दृष्ट्वा विस्मितः समुपसृत्य यावदुरगं ददर्श तावत्तस्य शिरसि भ्राजमानं मणिं कंचनापश्यत्। 'नूनमस्य मणेः प्रभावोऽयं यदनेन नकुलो हतः' इति विस्मितस्तं भुजङ्गं दृढं तुण्डे गृहीत्वा स्वगृहमानीय तं सर्पं यत्रापि सुरक्षितं कृत्वा सभामागम्य समस्यामिमामपठत्—

'शस्त्रं शास्त्रं कृषिर्विद्या यद्यान्ययेन जीवति।'

इति। पारिषद्याश्च विद्वांसः समस्यामेनां स्वस्वाभिप्रायानुगुणं बहुधा समपूरयन्। परं तु न किमपि राज्ञो हृदयग्राहि बभूव। ततो राजा सूरिवर्यं बप्पभट्टिमेव प्रशंसन् 'यः किल समस्यामेनां मदभिप्रायानुगुणं पूरयति तस्मै हेम्नां टङ्कलक्षं ददामि' इत्युदघोषयत्। एतदाकर्ण्य कश्चन दुरोदराजीवः 'धनार्जनोपायोऽयम्' इति निश्चित्य तत् श्लोकार्धं गृहीत्वा गौडानुपगम्य बप्पभट्टिनिकटे समस्यामेनामपठत्। बप्पभट्टिश्चानुपदमेव—

'सुगृहीतं हि कर्तव्यं कृष्णसर्पमुखं यथा।'

इति तामपूरयत्। आममहीपालं नागावलोक इत्यन्वर्थया आख्यया च समाजुहाव। ततः प्रभृति नाम्नाप्यनेनामभूपालो विख्यातिमाप। एतदादाय स द्यूतजीवी राजसमीपमागत्य समस्यां पूरितामपठत्, तस्य च नागावलोक इत्यन्यामाख्यामभिदधे। आमभूपालस्तु श्रुत्वैतत् मुदितमानसो 'नूनमियं मम सुहृदा बप्पभट्टिनैव पूरिता भवेत्' इत्यवधार्य तमपृच्छत—'भद्र, कथय तत्त्वम्, केनेयं समस्यापूरि?' इति। सोऽपि 'देव, सुगृहीतनाम्ना बप्पभट्टिना' इत्यवदत्। राजा तन्मुखेन स्वसुहृदं गौडेषु धर्मभूपालसदसि वर्तमानमवगत्यातीव हृष्टस्तस्मै दुरोदराजीविने यथार्हं धनं दत्वा तं विसृज्य सुहृदानयनाय प्रधानपुरुषान् प्राहिणोत्। ते भट्टिमुपगम्य राज्ञः संदेशं व्यजिज्ञपन्। भट्टिस्तु 'यद्यस्माकमागमनं भवतामधिपस्याभीप्सितं तर्हि तेन स्वयमेवागत्य धर्ममहीपाल आपृच्छ्यताम्' इत्यभिधाय तान् व्यसर्जयत्। आमभूपालोऽपि तन्मुखेभ्यो विदितवृत्तान्तः स्वयमेकाकी प्रस्थाय रहसि भट्टिगेहमागत्य रात्रौ सुहृदा संमन्त्र्य सर्वं करणीयजातं निश्चिकाय। प्रातर्भट्टिर्यथावद्राजास्थानमगच्छत्। आमभूपालोऽपि स्थगीधरवेषमादाय करे पत्रिकां गृहीत्वा राज्ञः सभामाजगाम। सूरीन्द्रः पत्रिकामादाय राज्ञेऽदर्शयत्। राजा तु तं दूतमपृच्छत् - 'कीदृशोऽस्य ते राजा?' इति। दूतः प्रत्यवदत्—'महाभाग, किं ब्रवीमि। ताम्बूलकरङ्कवाहतुल्यो भवति' इति। अथ मातुलिङ्गं करे बिभ्राणं तं भट्टिरपृच्छत्—'किं ते करे?' इति। स प्रत्यवदत्—'बीजऊर' इति। ततो राज्ञा समनुज्ञातो दूतवेषो राजा ततः प्रस्थाय रात्रौ वेश्यागृहे सुखमवसत्। वेश्यया तया स्वनामाङ्कितं कङ्कणमेकं दत्त्वा अन्यत् राजगृहद्वारे प्रक्षिप्य कस्मिंश्चिन्नगरोद्याने गूढमवतस्थे। परेद्यवि भट्टिर्धर्ममहीपालस्य समीपमागत्य स्वस्य कान्यकुब्जप्रस्थानमनुमन्यमानं ययाचे। राजा तु—'महाभाग, पूर्वमेव भवता प्रतिज्ञा कृता—यद्यामभूपालः स्वयमेव सभामागत्य प्रार्थयते तदैव गन्तव्यं नान्यथेति। अद्य तु स न साक्षादागतः, परं दूतमेव प्रजिघाय।

तत् कुतस्त्वया प्रस्थातव्यम् ? इति । बप्पभट्टिः प्रत्यवदत्—'महाराज, नूनं स एवामभूपालस्ताम्बूलकरङ्कवाहवेषमादायात्रागतः । भवता कीदृशोऽद्य राजेति पृष्टः ताम्बूलकरङ्कवाहतुल्य इति प्रत्युवाच । मया च किं ते करे इति पृष्टः बीजपूर इति प्रत्यवदत्' इति । अत्रान्तरे कश्चन भृत्यो राजसमीपमागत्य 'देव, कङ्कणमेतत् प्रासादद्वारि प्रक्षिप्तं दृष्टम्; अन्यच्च वेश्यागृहे समधिगतम्' इत्यभिधाय कङ्कणद्वयं राज्ञः पुरस्तान्निदधे । राजा तु तदादाय तत्रोल्लिखितानि आमभूपाल इत्यक्षराणि दृष्ट्वा सभामागतं शत्रुमनधिगतवन्तमात्मानं मूढं मत्वा बहु विजगर्हे । कृच्छ्राच्च भट्टेर्गमनमनुमेने । भट्टिस्तं समाश्वास्यामभूपालेन सह नगरोद्याने संगतः कान्यकुब्जं प्राप ।

अत्रान्तरे सिद्धसेनो जरया प्रपीडितो बप्पभट्टिं दिदृक्षुर्मुनीन् प्रेषयामास । मुनिभिरावेदितवृत्तान्तो भट्टिरामभूपालेनानुज्ञातः सद्य एव प्रस्थाय मोढेरे सिद्धसेनं प्रणनाम । अथ भट्टौ स्वस्य संन्यासस्वीकारमभियाचमाने, सिद्धसेनस्तं प्रतिषिध्य दिवं जगाम । अस्य पारलौकिकं कर्म यथावत् विनिर्वर्त्य भट्टिः पुनरामभूपालसमीपमाययौ ।

अथैकदा धर्मभूपाल आमभूपाय संदेशमिमं प्राजिघाय—'अस्ति मत्कटके कश्चन सौगतो भिक्षुर्वर्धनकुञ्जरो नाम । सोऽतीव पण्डितो वादनिपुणश्च । तस्य भवत्पण्डितेन सह वादः करणीयः । आवयोर्देशसन्धिरेव वाददेशः परिकल्पनीयः । तस्मिन् वादे यस्य राज्ञः पण्डितो जयति तस्मै अन्येन राज्ञा स्वस्य राज्यादिकं सर्वं समर्प्य तदधीनेन भाव्यम्' इति । आमभूपोऽपि भट्टिना सह संमन्त्र्य 'तथैवास्तु' इति प्रतिसंदिदेश । एतदवगत्य धर्मभूपालो वर्धनकुञ्जरं वाहनमारोप्यानेकैः पण्डितप्रवरैः सहाजगाम ।

> परमारमहावंशसंभूतः क्षत्रियाग्रणीः ।
> तस्य वाक्पतिराजोऽस्ति विद्वान्निरुपमप्रभः ।
> पूर्वं परिचितश्चासौ बप्पभट्टिप्रभोस्ततः ।
> तस्य वाङ्मर्मविज्ञानहेतोः संवाहितो मुदा ॥

कान्यकुब्जादामभूपोऽपि बप्पभट्टिं विद्वद्वृन्दैः सार्धमानीय तामेव भुवमाजगाम । एवं समुदितेषु सर्वेषु व्यवस्थिते दिने बप्पभट्टिवर्धनकुञ्जरयोर्वादः समारभत ।

> ततः श्रीसौगताचार्यः पूर्वं वर्धनकुञ्जरः ।
> आशीर्वादमुदाजह्रे व्यर्थकं द्वीपपर्षदाम् ॥

बप्पभट्टिचरितम्

‘शर्मणे सौगतो धर्मः प्राच्यवाचंयमेन यः।
आदृतः साधयन्विश्वं क्षणक्षणविनश्वरम्॥’

इति।

अथ श्वेताम्बराचार्यो बप्पभट्टिः सुधीपतिः।
अभ्यधत्ताशिषं स्वीयां भूपालाय यथा तथा॥
‘अर्हन् शर्मोन्नतिं देयान्नित्यानन्दपदस्थितः।
यद्वाचा विजिता मिथ्यावादा एकान्तमानिनः॥’

इत्याशिषं प्रयुज्य स्वं स्वं मतमवलम्ब्य विवदमानयोरनिर्णयजयपराजययोस्तयोः षण्मासा व्यतीयुः। अन्येद्युः श्रीमानामभूपालः सूरिमवदत्— ‘प्रभो, राजकार्याणामतिपातो जायते। कदा वादः संपूरयिष्यते?’ इति। अथाचार्यः ‘महाराज, वाग्विनोदसुखायायमेतावन्तं कालमुपेक्षितः। पश्य, श्वः प्रभाते भिक्षुकमेनं निग्रहीष्यमि’ इत्युक्त्वा गुरूपदिष्टं सारस्वतं मन्त्रमावर्तयन् वाग्देवीं तुष्टाव। तेन प्रसेदुषी भारती ‘वत्स, प्रसन्नास्मि। वरं वृणु’ इत्यवदत्। आचार्यश्च ‘देवि, श्वः प्रभाते वादिनममुं जेतुमिच्छामि। प्रसीदानुगृहाणैतत्’ इत्यवादीत्। सरस्वती प्राह—‘पूर्वं सप्त वारानहममुना समाराधिता तदभ्यर्थनया कांचनाक्षय्यवचनां गुटिकां तस्मै प्रादाम्। तामास्ये निधाय यद्ययं विवदितुमारभेत, तदा धिषणेनापि नासौ पराजेतुं शक्यः इति। ततः ‘देवि, न सांप्रतं भवत्या जैनसमयप्रत्यनीकमेनमनुग्रहीतुम्’ इत्याचार्येणाभ्यर्थिता वाणी ‘वत्स, नाहं जैनसमयविरोधिनी। तद्वदामि कंचिदुपायम्। श्रूयताम्—वादारम्भसमये करके तीर्थमानाय्य सर्वेऽपि गण्डूषान् कृत्वा वादमारभध्वम्। सोऽपि तथैव नियतं गण्डूषमाचरिष्यति। गण्डूषसमये सा गुटिका गलिता भवेत्। ततो भवतः सुजयो भविष्यति’ इत्यभिधायान्तरधात्। सूरिः कृतकृत्यमात्मानं मन्यमानो गूढं वाक्पतिराजमेत्य वृत्तान्तमेनं न्यवेदयत्। वाक्पतिराजेनापि ‘सखे सूरिवर्य, सम्यगाचरितं भवता। तथैवाहं करके तीर्थमादाय सभ्यान् सर्वान् गण्डूषान् कारयिष्यामि। नियतमसावपि गण्डूषमाचरिष्यति, त्वत्समीहितं च सेत्स्यति’ इत्यभिहितः सूरिवर्यो यथागतं स्वावासमगात्। परेद्युर्निखिलेषु पार्षदेषु मिलितेषु वाक्पतिराजेन समानीतं तीर्थं गृहीत्वा सर्वेऽप्यास्यशुद्धये गण्डूषान् व्यदधुः। वर्धनकुञ्जरोऽपि गण्डूषानकरोत्। गुटिका च प्रमादाज्जलेन सह गलिता। ततो यथावत् वादे समारब्धे बप्पभट्टिना वर्धनकुञ्जरो द्वित्रैरेव वाक्यैर्विजिग्ये। सर्वतो भेरिजयोऽजोघुष्यत। ‘वादिकुञ्जरकेसरी’ इति बिरुदं च दत्तम्। ततो यथासमयमामभूपालो धर्मभूपालस्य राज्यं ग्रहीतुमारभत। तदा

बप्पभट्टिरवदत्—'महाराज, वादे विजयस्य मुद्रालेखनमेव शास्त्रसंमतं प्रमाणम्; न पराजितस्य निग्रहः। तत् धर्मभूपालस्य राज्यं तस्मिन्नेव तिष्ठतु ' इति। एतदाकर्ण्य आमभूपालोऽनिच्छन्नपि गुरुवाक्यबहुमानात् तथेत्यङ्गीचकार। अथ भट्टिः सौगतं भिक्षुं पराजितं गोपगिरिमानाय्य श्रीमहावीरबिम्बं दर्शयित्वा तस्य चेतसि जैनं धर्मं सुप्रतिष्ठितमकरोत्। ततो वर्धनकुञ्जरो द्वादशभिर्व्रतैः सम्यक्त्वं ग्राहितो बप्पभट्टिमापृच्छय स्वं स्थानं प्रययौ। राजानावपि पूर्ववैरं परित्यज्य सोदर्याविव परस्परमापृच्छय स्वं स्वं पुरं जग्मतुः। अन्यदा वर्धनकुञ्जरो धर्मभूपालमवोचत्—'न मे तत्रापि व्यथा यद्बप्पभट्टिर्मां विजिग्ये। परमेतद्विमृशन् नितरां दूये यत् त्वदन्नपरिपोषितो वाक्पतिराजो मुखशुद्धिकरणव्याजेन गुटिकां भ्रंशयन्नस्मास्वपाकरोत्' इति। राजा तु तस्य छलवादं श्रुत्वापि वाक्पतिराजेन स्नेहं न शिथिलयांचकार।

यशोवर्मनृपो धर्ममन्यदा चाभ्यषेणयत्।
तस्माद् द्विगुणितबलस्तं भूपं युद्धेऽवधीद्बली॥
तदा वाक्पतिराजश्च बन्धे तेन निवेशितः।
काव्यं गौडवधं कृत्वा तस्माच्च स्वममोचयत्॥
कान्यकुब्जे समागत्य संगतो बप्पभट्टिना।
स राजसंसदं नीतस्तुष्टुवे चेति भूपतिम्॥
'पृथुरसि गुणैः कीर्त्या रामो नलो भरतो भवान्
महति समरे शत्रुघ्नस्त्वं सदैव युधिष्ठिरः।
इति सुचरितैः ख्यातिं बिभ्रच्चिरंतनभूभृतां
कथमसि न मां धाता देवस्त्रिलोकविजय्यपि॥'
संमानातिशयो राज्ञा विदधे तस्य भूभृतः।
गङ्गां गेहागतां को हि पूजयेदलसोऽपि न॥
त्यागाद्धर्मस्य मा कार्षीर्मनस्यनुशयं सखे।
तवाधीनमिदं राज्यं विचिन्त्य सुखमास्स्व तत्॥
इत्यामराजव्याहारामृतसारपरिप्लुतः।
उपाश्रयमनुप्राप्यातिष्ठत्परमया मुदा॥

राजा च वृत्त्यर्थं सुवर्णटङ्कानां लक्षद्वयं तस्मै प्रादात्। एवं वाक्पतिराजो बप्पभट्टिना सहामभूपालस्य सदसि वसन् गौडबन्धो मदमहीविजयश्चेति काव्यद्वयमरचयत्। अथ बप्पभट्टिः स्वस्य सतीर्थ्यौ नन्नसूरिगोविन्दसूरी आनाय्य राज्ञा सह सख्यं कारयित्वा संमानितावकरोत्।

एवमतिक्रामत्सु कतिपयेषु वत्सरेषु राजा गायन्त्या कयाचन मातङ्ग्या संसर्गमभजत। तेन निर्विण्णो वाक्पतिराजस्तं हित्वा मथुरामभजत।

398

बप्पभट्टिस्तु राजानमपथप्रवृत्तं दृष्ट्वा मनस्येवमचिन्तयत्—'नूनं सादिन एवैष दोषो यदश्वो विपथं व्रजति। तद्राजानं विपथगामिनं दृष्ट्वाप्युपेक्षमाणं मामेव लोकोऽयं विगर्हेत। तत् यथाकथंचिदयं निवर्तनीयोऽस्मादुन्मार्गात्' इति। इत्थमवधार्य पद्यमिदं राजगृहे नव्येषु पट्टेषु खटिकया विलिख्य स्वगृहमाययौ—

'शैत्यं नाम गुणस्तवैव तदनु स्वाभाविकी स्वच्छता
किं ब्रूमः शुचितां व्रजन्ति शुचयः संगेन यस्यापरे।
किं वातः परमस्ति ते स्तुतिपदं त्वं जीवितं देहिनां
त्वं चेन्नीचपथेन गच्छसि पयः! कस्त्वां निषेद्धुं क्षमः॥'

इति। परेद्यवि राजा यावदेतत् पद्यमपठत् तावत् तस्य मोहो दुग्धादिव धुत्तूरजो दोषोऽनश्यत्। लब्धप्रकृतिः सुहृदमेव प्रशंसंस्तस्य मुखं प्रेक्षितुं लज्जमानो दुष्कृतस्यास्य देहत्यागमेवोचितं प्रायश्चित्तं विनिश्चित्य चितानले देहं त्यक्तुमुदयुङ्क्त। एवं साहसे प्रवृत्तं राजानं ज्ञात्वा गुरुप्रवरः 'महाराज, किमिदमनुचितं कर्मारभ्यते। सत्यं विद्वांसोऽपि क्वचित् प्रमाद्यन्ति। तत्रानुशय एव पर्याप्तं प्रायश्चित्तं विहितम्। तन्मुधा लोकंभरमात्मानं मा विनाशय' इति बहुधा राजानमबोधयत्। ततो राजा तं व्यवसायं त्यक्त्वा गुरूपदेशेन पुनर्जातमिवात्मानं मन्यमानः पुरं प्रविवेश। बप्पभट्टिश्च प्रत्यहं राजानं विविधान् धर्मानन्तरान्तरा जैनं तत्त्वं चाबोधयत्। एकदा राजानं जैनमतावलम्बनमभ्यर्थयामास। राजा तु 'विद्वद्वर, नूनमार्हतो धर्मो मे हृदयंगमो वर्तते। परं तु कुलक्रमागतं शैवधर्ममुज्झितुं नोत्सहे। यदि न कुप्यति भवांस्तर्हि किमपि वच्मि—अस्ति वाक्पतिराजो मथुरां गतः। स तत्र वराहस्वामिप्रासादे यज्ञोपवीतवीतास्त्रस्तुलसीमालालंकृतकण्ठो नासाग्रन्यस्तदृष्टिरनेकैर्वैष्णवब्राह्मणैः सहितो भगवन्तं पुराणपुरुषं पुण्डरीकाक्षं ध्यायन्नास्ते। तं चेदुपगत्य जैनमतमवबोध्यार्हतं मतं ग्राहयसि मयापि गृहीतमेव तं धर्ममवगच्छ' इत्यभ्यधात्। बप्पभट्टिरपि तथेत्यभ्युपगम्यानेकैः सामन्तनृपैः पण्डितैश्च साकं मथुरायां वराहस्वामिमन्दिरं प्राप्य तत्र पूर्वोक्तावस्थं परमात्मन्यधोक्षजे न्यस्तचेतसं वाक्पतिराजमपश्यत्। उदाहरच्च तस्य चेतः परीक्षितुमिमान्यन्यानि च कानिचित् पद्यानि—

'दर्पणार्पितमालोक्य मायास्त्रीरूपमात्मनः।
आत्मन्येवानुरक्तो वः श्रियं दिशतु केशवः॥
कुलं पवित्रं जननी कृतार्था वसुंधरा पुण्यवती त्वयैव।
अबाह्यसंवित्सुखसिन्धुमग्नं लग्नं परे ब्रह्मणि यस्य चित्तम्।
संध्यां यत्प्रणिपत्य लोकपुरतो बद्धाञ्जलिर्याचसे
धत्से यच्च परां विलज्ज! शिरसा तच्चापि सोढं मया।

श्रीर्जातामृतमन्थने यदि हरः कस्माद्विषं भक्षितं
मां स्त्रीलम्पट मा स्पृशेत्यभिहितो गौर्या हरः पातु वः ॥'

इति । एवं शृङ्गाररसस्वप्रशंसापराणि पद्यान्याकर्ण्य 'केन वा दुष्टेनेमानि पद्यानि पठता मम समाधिः प्रतिहन्यते ?' इति कोपेन यावदुन्मील्य लोचने पुरः पश्यति तावत् स्वस्य पुराणसुहृदं बप्पभट्टिमपश्यत् । सुहृदालोकनसंजातहर्षश्च भाट्टना सह विविधाः कथाः कुर्वाणस्तेन कथाप्रसङ्गेनार्हतं तत्त्वमवबोध्य तन्मतं प्रवेश्य श्वेताम्बरो भिक्षुः कारितः । ततः सामाजिकैः स्तुतो बप्पभट्टिः कान्यकुब्जं प्रतस्थे । पूर्वमेव ज्ञातवृत्तान्तेनामभूपालेन प्रत्युद्गम्य नगरं प्रवेशितेन तेन जैनगुरुणा बप्पभट्टिना राजा जैनं मतमवालम्भ्यत । तत्प्रेरितश्च राजा पट्टचतुष्टये श्रीवर्धमानस्य बिम्बं विलिख्य कान्यकुब्ज एकं मथुरायामेकमणहिल्लपुर एकं सतोर चैकं न्यधात् । भट्टिस्तत्सदसि वर्तमानस्तारागणादीन् द्वापञ्चाशतं प्रबन्धानरचयत् ।

अन्यदा राजा समुद्रसेनमभिषेणयन् तदधिष्ठितं राजगिरिनामकं दुर्गं रुरोध । एवं यतमानोऽपि स यदा तद्भेत्तुं नाशकत् तदा भट्टिमपृच्छत्—'सखे, बहु प्रयतमानेनापि मया दुर्गमिदं न भेत्तुं शक्यते । कथय, कदा वा कथं वा दुर्गमिदं गृह्येत' इति । भट्टिस्तु प्रश्नचूडामणिं विमृश्य प्रत्यब्रवीत्—'महाराज, तव पौत्रो भोजनामा जनिष्यते । तेनेदं ग्रहीष्यते' इति । राजा तु दुर्गमिदं वशेऽकृत्वा न पुरं प्रवेक्ष्यामीत्युक्त्वा तत्रैवावसत् । द्वादशसु वत्सरेषु गतेषु दुन्दुकस्य सूनोर्भोजो नाम सुतो जज्ञे । जातमात्रमेव तं प्रधानपुरुषाः पर्यङ्किकाशायिनं तत्रानयन् । यदा स शिशुस्तद् दुर्गं ददर्श तदैव तत् शकलशो बिभिदे । ततश्चामभूपालो दुर्गं प्रविश्य स्ववशमकरोत् । समुद्रसेनस्तु कथंचिन्नगराद्विनिर्गत्य पलायितः। ततश्चामभूपालो बप्पभट्टिना सह तीर्थयात्रां प्रस्थितः पुण्डरीकाद्रिवासं युगादिनाथं रैवतकाद्रिस्थं श्रीनेमिं पिण्डतारके दामोदरं द्वारकायां श्रीकृष्णं सोमेश्वरपुरे सोमनाथं च संपूज्य पुनः स्वं पुरमाययौ । ततो दुन्दुकं सुतं राज्येऽभिषिच्य गङ्गां प्राप्य नावमारुह्य मागधं गन्तुं गङ्गां तरन् मध्येगङ्गं धूमनिर्गममभिवीक्ष्य निर्वाणसमयं प्रतिबोधितो राजा सर्वज्ञं जिनदेवं मनसा चिन्तयन् प्राणान् जहौ ।

विक्रमतो वर्षाणां शताष्टके सनवतौ च भाद्रपदे ।
शुक्ले सितपञ्चम्यां चन्द्रे चित्राह्वयऋक्षस्थे ॥
तुलाराशौ तथा चन्द्रस्थितेऽर्के प्रहरेऽन्तिमे ।
श्रीमान्नागावलोकाह्वयो राजा प्राप दिवं तदा ॥

एवं स्वर्गतस्यामभूपालस्य भट्टिः सकला और्ध्वदेहिकीः क्रियास्तत्सनाभिभिर्निरवर्तयत् । अथ वप्पभट्टिः कान्यकुब्जमेत्य दुन्दुकस्य राज्ञः समीपेऽवसत् । राजा तु कन्याख्यायां वेश्यायां सक्तो भोजं कुमारमद्रुह्यत् । विदितवृत्तान्तैर्मातुलैरागत्य भोजः पाटलीपुरं निन्ये । एकदा दुन्दुको वप्पभट्टिमवदत्— "पण्डितवर, त्वं पाटलीपुरं गत्वा 'राजा सुतेऽतीव वत्सलो जातः सुतस्य मुखकमलं दिदृक्षते' इति बान्धवान् प्रलोभ्य भोजमानय" इति । भट्टिस्तु तथा कर्तुमनिच्छन् कथं कथमपि पञ्च वर्षाण्यत्यवाहयत् । अथैकदा दुन्दुको वप्पभट्टिं सुतानयनाय बलात् प्रस्थापयामास । भट्टिरपि पाटलीपुरसमीपमेत्य मनस्यचिन्तयत्—'यद्यहं भोजं दुन्दुकसमीपं नयेयं तदा नियतमसौ वेश्यासक्तचित्तः सुतं हन्यात् । यदि भोजमनादाय रिक्तहस्तः प्रतिनिवृत्योपगच्छेयं तदा मूर्खो मां हन्यादेव । अतोऽत्रैव प्रायोपवेशनेन प्राणत्याग एव वरम्' इति । एवं निश्चित्य पाटलीपुरोपकण्ठ एव दिनान्येकविंशतिं क्षुधातृष्णादीन् विजित्य निराहारो भूत्वा द्वाविंशेऽहनि प्राणानहासीत् ।

> विक्रमतः शून्यद्वयवसुवर्षे (800) भाद्रपदतृतीयायाम् ।
> रविवारे हस्तर्क्षे जन्माभूद्बप्पभट्टिगुरोः ॥
> षड्वर्षस्य व्रतं चैकादशे वर्षे च सूरिता ।
> पञ्चाधिकनवत्या च प्रभोरायुः प्रकीर्तितम् ॥
> शरनन्दसिद्धिवर्षे (895) नभःशुक्लाष्टमीदिने ।
> स्वातिभेऽजनि पञ्चत्वमामराजगुरोरिह ॥

इत्थं वप्पभट्टेर्मृतिमाकर्ण्य भोजो भृशं रुदन् सद्य एव चितानलं प्रवेष्टुमिच्छन् मात्रादिभिः प्रतिषिद्धः स्वस्योत्तरीयं गुरोश्चितायां प्रक्षिप्य गुरोः सकला और्ध्वदेहिकीः क्रियाः स्वयमेव निरवर्तयत् ।

अन्यदा भोजो दुर्वृत्तं पितरमसहमानो जिघांसुर्मातुलैः सह कान्यकुब्जमेत्य राजगृहद्वारे मालाकारेणोपायनीकृतं बीजपूरत्रयं गृहीत्वान्तः प्रविश्य वेश्यया सह प्रवरासनासीनं पितरं वेश्यां च तैरेव बीजपूरैर्गाढमाजघान । दृढप्रहाराभिहतौ तावुभावपि प्राणान् जहतुः । अथ मृतं क्रोष्टारमिव परेतं राजानं निर्जीवया वेश्यया सहापद्वारेण बहिर्निष्कासयामास । अथ प्रकृतयस्तं भोजं सिंहासने निवेश्याभिषिषिचुः । अन्येद्युः आमविहाराख्यं तीर्थं प्रणन्तुमुपगतो भोजो नन्नसूरिं गोविन्दसूरिं च तत्राचार्यकेऽवस्थाप्य नन्नसूरिं मोढेरे निवेश्य गोविन्दसूरिं स्वनिकटेऽवास्थापयत् । इत्थं भोजराज आमादप्यधिकं जैनं [illegible] चिरं [illegible] ।

बप्पभट्टिर्भद्रकीर्तिर्वादिकुञ्जरकेसरी ।
ब्रह्मचारी गजवरो राजपूजित इत्यपि ॥
विख्यातो विरुदैर्जैनशासनक्षीरसागरे ।
कौस्तुभः कृतसंस्थानः पुरुषोत्तमवक्षसि ॥
जयताज्जगतीपीठे धर्मकल्पद्रुमाङ्कुरः ।
इदानीमपि यन्नाममन्त्रो जाड्यविषापहः ॥

वैयाकरणमूर्धन्यमणिना कृष्णसूरिणा ।
चरितं बप्पभट्टीयं रचितं पठनोचितम् ॥

परिशिष्ट ४

आचार्य बप्पभट्टिसूरिविरचित तारागण

नंदउ सच्छंद - गई निम्मल - पय - पूर - गारव - महग्घो ।

जलहि - पडिरुद्ध - पसरो सुकईण सरस्सई - पवहो ॥ १ ॥

हिययाईं सज्जणाणं रंजइ कसिणेइ खलयण - मुहाई ।

सब्बं सुहासियं पि हु जाण नमो ताण सुकईणं ॥ २ ॥

उययमदोसंतरियं फुरिय - पयावं पि सेवियं सुहयं ।

नमिमो बिसमाइच्चस्स ठइय - तेयस्सि - निउरंबं ॥ ३ ॥

सुयणो थुइ - निरवेक्खो विवरीयं फलइ खलयण - पसंसा ।

सज्जण - खल - निरवेक्खं जह - ट्ठियाणं गुणाण नमो ॥ ४ ॥

गोयम - गोतुप्पण्णो भवप्पओ संकुउ त्ति नामेणं ।

ना (या) वलोय - गोट्ठी - छइल्ल - संसग्गि - निम्माओ ॥ ५ ॥

सद्द - गुणाहि नहाहि व अंतिल्ल - परिट्ठियत्थ - विहवाहिं ।

उच्चेउं गयवइणो गाहाओ तारयाओ व्व ॥ ६ ॥

तेणेस दोस - पुण्णो गुण - सय - संपुण्ण - कब्ब - रसियाण ।

आणाए पडिवद्धो कोसो तारागणो नाम ॥ ७ ॥

जेसिं जाणिहइ जणो सुहेण कोसम्मि संचरंतो हि ।

ताई सुभणिय - निहिणो कइणो नामाई वोच्छामि ॥ ८ ॥

जाणिहइ बप्पभट्टिं गुणाणुरायं च भद्दइत्तिं च ।

तह गयवइवइमायरियं च सेय - भिक्खुं च वाई च ॥ ९ ॥

कइ - बप्पभट्टिणो च्चिय अंतो - नाणं निहित्त - तेलोक्कं ।

इयरेण कह णु तीरइ भणिउं बद्धेक्क - कक्कडयं ॥ १० ॥

सो जयइ जएक्क - पहू तेलोक्कक्कंत - मज्झिमुद्देसं ।

नाणं जस्स विरायइ फलं व बद्धेक्क - कक्कडयं ॥ ११ ॥

भव - हुत्त - मणा दाढा - फड्क्कए दोहिं चेव गाहाहिं ।

अइसय - जय - संबद्धाहि वाइणा भुवणमइसइयं ॥ १२ ॥

भव - हुत्त - मण त्ति जहा -

पडिवण्ण - चरम - तणुणो अइसय - लेसं पि जस्स दट्ठूणं ।

भव - हुत्त - मणा जायंति जोइणो तं जिणं नमह ॥ १३ ॥

दाढा - फडक्कप त्ति जहा -

सो जयइ जस्स दाढा - फढक्कए उच्छलंत - निवडंतो ।

नीसासुग्गम - विगमेसु होइ गुलिओ व्व महि - गोलो ॥ १४ ॥

संखो साहय वट्टि त्ति वाइणा जह पसंसिया कइणो ।

तह मण्णे सो च्चिय तिहुयणे वि कइ - सद्दमुब्बहउ ॥ १५ ॥

संखो त्ति जहा -

णंदंतु ते कइंदा जेसिं अत्थो छणेण छिप्पंतो ।

संखो व्व निही तत्थेव जाइ सेसं पि घेत्तूण ॥ १६ ॥

साहय - षट्टि त्ति जहा -

ते कइणो पुहइ - परिट्ठिएसु - अत्थेसु जण - ण - दिट्ठेसु ।

साहय - साहिय - वट्टि व्व जाण वाणी परिट्ठाइ ॥ १७ ॥

दाढाओ गयवइणो निच्चिय - रइ रुंदहइ ँउ रेहंति ।

सज्जावेसालोयण - कव्व - विसुद्धि त्ति गाहाओ ॥ १८ ॥

सज्जावेसालोयण - महल्ल - कोऊहलेण जइ नडिओ ।

पर - वसणं दाणि खलस्स किं पि ता दुक्कह कहेसु ॥ १९ ॥

सुयणो दोसे वि गुणीकरेइ इयरो गुणे वि दूसेइ ।

कव्व - विसुद्धि - निमित्तं न - याणिमो कं समुल्लीमो ॥ २० ॥

ता पायलमहो च्चिय तइं असि - लट्ठीए महियलं जेउं ।

जालाहि वाइ विजियं जोइस - चक्कं तडि - निहेण ॥ २१ ॥

उय जोइंगण - परिगय - जलहर - पेरंत - घोलिरी विज्जू ।

निग्गय - फुलिंग - साणा - निसिज्जमाणी सिलट्ठि व्व ॥ २२ ॥

वडवानल - संवलियं मण्णे पीयं घणेहिं उयहि - जलं ।

जेण वमंति रसेता जालाउ इमे तडि - निहेण ॥ २३ ॥

कोलंबा केयारं जलहर - खल्ला य हारि - वडिओ य ।

नूणं गुणाणुराओ इमेहिं वयणेहिं चउ - वयणो । २४ ॥

विज्जु - कढिज्जंत - जला बलाय - फेणुग्गमा मसी - मइला ।

गज्जिय - गवण - पयहर - कोलंबा कलयलंति व्व ॥ २५ ॥

मारुय - तोत्तय - संचोइण्ण गाहेइ पाउस - हुडुंबी ।

नह - केयारं कसिणब्भ - मंडली - माहिसक्केण ॥ २६ ॥

जलहर - खल्ला -सित्ताए पाउसो वारिउ व्व धरणीए ।

गोमय - रस - दुआलिं व देइ हरियंकुरुप्पूरं ॥ २७ ॥

घण - पडलेहि छइज्जंतयाइं दट्ठूण जणवय - घराइं ।

छाएइ तहेव नहं पि पाउसो हारि - पडिओ व्व ॥ २८ ॥

नह - चंडिलं नह - कप्पर - गयणच्छिति य तिहा - कय - नहेहिं ।

आयरियस्स पएहिं हरिणो व्व जयं समक्कंतं ॥ २९ ॥

सुरचावोलवण - घणोह - भंडिया - निहिय - तडिगुण - छुरस्स ।

नह - चंडिलस्स रेहइ चंद - कला फलिह - सिलिय व्व ॥ ३० ॥

दव - दड्ढ - पव्वउड्डीण पारयाबद्ध - बिंदु - निवहं व ।

नह - कप्परं विरायइ फुरंत - तारा - गणाइण्णं ।। ३१ ॥

गयणच्छिणो गलंतस्स कालिया - नीलि - पिहिय - तारस्स ।

देइ सरओ सियब्भं पय - गब्भं रूय - पडलं व ॥ ३२ ॥

मरगयमयायवत्तं गयवइणो जयइ पयडिय - च्छायं ।

जेणोवरिट्ठिएन वि सेसा कइणो हय - च्छाया ॥ ३३ ॥

उयह नहं मज्झगएक्क - मेह - मुच्चंत - संतय - जलोहं ।

सरयस्स फलिह - दंडं मरगय - मयायवत्तं व ॥ ३४ ॥

फणि - वार - रमणि - पईव - वरिस - पाहुणय - इय - पईवेहिं ।

उज्जाइयं जयं सेय - भिक्खुणा पयडियत्थेहिं ॥ ३५ ॥

पायालोअरण - मणा कय - घण - कज्जा - फणि - व्व फुड - मणिणो ।

बद्धुद्ध - धूम - दंडा महीए दीवा विरायंति ॥ ३६ ॥

तुह वार - रमणि - संमह - खुडिय - फुड - पोमराय - संवलिया ।

डज्झंतेहि पयंगेहिं नवर दीवा मुणिज्जंति ॥ ३७ ॥

एएण विम्हओ म्हं जं पहु बहु - विमल - रयण - दीवस्स ।

दीवालियाए वि तुहं दीसेइ एक्को वि न पईवो ॥ ३८ ॥

दड्ढ - पयावइ - निम्मिय घराहरिं वरिस - पाहुणय ।

णिय - णेह - क्खय - कारय होसि पईवो न संदेहो ॥ ३९ ॥

अगया सुहत्थिणो सुरयणं च नालक्खयं रयण - कोडी ।

इय थुव्वइ नरनाहो तह वि जसो भद्दइत्तिस्स ॥ ४० ॥

सव्वे वि कया अगया जइय च्चिय नूणमहि वइ तुमए ।

सयल - विस - मेत - सिद्धी तइय च्चिय तुज्झ संपन्ना ॥ ४१ ॥

तुह रिउणो णाह सुहत्थिणो वि भद्दत्तणं कइ लहंत ।

जाण दूह च्चेव गई एक्के मन्दा मगा अण्णा ॥ ४२ ॥

आयासे अ - ठविंतो वि कुणसि जं सुरयणं पणइ - सत्थं ।

तं विन्नायमउव्वो नरनाह पयावई तं सि ॥ ४३ ॥

वाएण दूसहेणं कंपाविंतो अहोरणे सुहडे ।

सिसिरो व्व पणइ - कमलाण नाह नालक्खयं देसि ॥ ४४ ॥

पणईण देव दिंतो बहुसो लक्खाइं उत्तुणो कीस ।

पडिवक्खाण वि तुह दिंति गयवरा रयण कोडीओ ॥ ४५ ॥

सुसियत्तण - बहुलक्खय - सिरीस - जलदुग्ग - वारणारीहि ।

गाहाहि पसंसंतं वादि कहं तं पसंसेमो ॥ ४६ ॥

जो अण्णवाणरोहं परं पवण्णो सइ च्चिय नरिंद ।

मा किर सो तुज्झ जसो पावउ सुसियत्तणं परमं ॥ ४७ ॥

बहुलक्खएण बहुसो महा - पसाएण तुज्झ नर - नाह ।

पणइ - समूहो चंदो व्व वंदणिज्जो जए जाओ ॥ ४८ ॥

अण्णो च्चिय आयारो अन्नो च्चिय पत्थिवाण ववहारो ।

जेण सिरीसो वि तुमं देसि महा - पीलु - पब्भारं ॥ ४९ ॥

संपुण्ण - कोस - दंडं जल - दुग्ग - गयं पि दलइ - कमल - वणं ।

दिट्ठम्मि जम्मि कह सो सूरो मा भुवणमक्कमउ ॥ ५० ॥

तं पि हु अच्छिन्न - सिरिं सेवज्जइ ते पि वारणारीहिं ।

तुह कडया रिउ - नयरस्स मिज्जए नाह न तिलो पि ॥ ५१ ॥

सव्व - गयस्स स - जीवे अंतेउरियाउ नेय सद्दहियं ।

एयाहिं सुगाहाहिं वाइ अगाहो कहं सि तुमं ॥ ५२ ॥

सव्व - गयस्स विवासो रिउ - बहु - नयणेसु तुह पहु जसस्सा ।

ताण घणं विगमेण जेण सो होइ धवलयरो ॥ ५३ ॥

नूणं धणुम्मि तुह पहु संकमइ विवक्ख - जीवियं समरे ।

इहरा तम्मि स - जीवे कह रिउणो हुंति अज्जीवा ॥ ५४ ॥

बहुसोहग्गाउ अ - विहवाओ वट्टंति तुज्झ वेरीणं ।

किं अंतेउरियाओ न हु न हु नरनाह नयरीओ ॥ ५५ ॥

तं कुणसि भीम - साहस - लंघिय - नय - देव्व पुरिसयार - पहं ।

जं अणुहविज्जमाणं पि तीरए नेय सद्दहिउं ॥ ५६ ॥

अवरिड्डिय - लीहं ति य चक्कयरेणं ति तह य गाहाओ ।

वंकाओ वि अ - वंकाउ वाइ तो कह णु घडियाओ ॥ ५७ ॥

अव्वो तुमाइ जं - पिच्छएण तं किं पि एत्थ ववहरियं ।

अवरिड्डिय - लीहं जेण देइ पढमं तुहं लोओ ॥ ५८ ॥

हा हा संतं पावं नरिंद डज्झंतु ताण वयणाइं ।

चक्कयरेण वि हरिणा समत्तणं जे उ पयडंति ॥ ५९ ॥

गयवइ सुमेह सुन्देर सूर कलि कंचुइ त्ति मयणो त्ति ।

गाहाउ जिणंति जयं गयवइ तुह सत्त साराओ ॥ ६० ॥

उव्वहसि कीस गव्वं एत्थ जय गयवई अहं एक्को ।

तुह वेरियाण नरवर महिला सव्वा वि गयवइणो ॥ ६१ ॥

अव्वो सुमेह तइं किं पि तं कयं जेण विणडियं गयणे ।

धारासय - ण - पहुप्पंत - चंचुयं चायय - कुटुंबं ॥ ६२ ॥

सुंदेर - तुलिय - कंदप्प तुज्झ णिव्विग्घ - दंसण - मणाओ ।

परिवाडि - निमिसणं लोयणाहं सिक्खंति तरुणीओ ॥ ६३ ॥

फुरिय - पयावस्स तुहं सव्वरिउम्मूउणं कुणंतस्स ।

सोहंति सूर महिहर - सिरेसु परिसंठिया पाया ॥ ६४ ॥

तं परिवड्ढंति दढं खणं पि निवसंति जत्थ सप्पुरिसा ।

जाआ फेलिम्मि जस्सिं तइं उण सो सा चेय निद्दविओ ॥ ६५ ॥

दढ - पढिवण्णंतेउर - रक्खा - वाबारमज्ज कंचुइणो ।

निंदंति निरत्थय - वित्ति - भुंजया तुज्झ सोहग्गं ॥ ६६ ॥

तइं दिट्ठे वियलिय - रूव - मित्त - रइ - चित्त - रंजणासंघो ।

मयणो वि नियय - सत्थत्थ - पालणा - संटलं पत्तो ॥ ६७ ॥

आमोइय - सुमणाए कोमल - वण्णाए बप्पभट्टिस्स ।

असमंजस त्ति गाहा - लयाए छाय च्चिय अउव्वा ॥ ६८ ॥

कह नाम न होसि तुमं भायणमसमंजसस्स नरनाह ।

निच्चं चिय कुणमाणो जहिच्छमत्थाण - विणिओगं ॥ ६९ ॥

अणतिंतिय - समचित्ता - निय - हियय - पयारणं त्ति महिल त्ति ।

कुल - वालिय त्ति गाहाण गयवई चेव मुणियत्थो ॥ ७० ॥

अणचिंतियममुणंती चिंतिय - करणेण तस्स मण - खेयं ।

कायव्वेसु कुणंती न - याणिमो कत्थ वच्चिस्सं ॥ ७१ ॥

सम - चिताइ वि घरिणीए भत्तुणा सह इमो विसंवाओ ।

सो सामिणि ति तं मुणइ किंकरं सा वि अप्पाणं ॥ ७२ ॥

जह से मम्मि तह मह न तम्मि नेहो त्ति दोहिं वि जणेहिं ।

निय - हियय - पयारण - दुत्थिएहिं झीणं मुह च्चेय ॥ ७३ ॥

किं सहि फुडं तह च्चिय किं वा नयणाण एस मह दोसो ।

जं तस्स समीवे अमहिला वि महिल त्ति पडिहाइ ॥ ७४ ॥

जं जं करेइ दइओ तं तं चाडु त्ति मण्णमाणीणं ।

कुल - वालियाण रोसो न लहइ हिययम्मि ओवासं ॥ ७५ ॥

अहरट्ठाण - घणुव्वेय - नयण - पडिमा य वियसइ तुमं ति ।

भायइ - मंजूसंजण - चमरमसोअ त्ति सुअणु त्ति ॥ ७६ ॥

गुणि - हियएसु इमाओ हार - लयाओ गुणानुराएण ।

विणिहित्ताउ समुज्जल - सुवण्ण - रयणेण पयएण ॥ ७७ ॥

तइयच्छि - सिहि - सिहा- भासुरेण भुवणे हरेण अक्कंते ।

अहरट्ठाणं तुह सुयणु वसइ निरुवद्दवमणंगो ॥ ७८ ॥

सुहउ त्ति जियइ विद्धो मरइ अविद्धो तुहच्छि - वाणेहिं ।

इय सिक्खविया केण - वि अउव्वमेयं धणुव्वेयं ॥ ७९ ॥

तरुण - जन - नयण - पडिमा - सहस्स - सवलंगि सहसि इंद - महे ।

फंस - सइण्ह - पुरंदर- रहस- कयाणुप्पवेस व्व ॥ ८० ॥

वियसइ तुमं ति मउलेइ न त्ति तुह दंसणूसुया सुयणु ।

इयरंगणायणे असरिसे वि सहस त्ति से दिट्ठी ॥ ८१ ॥

तुह कर - वंदिय - भायइ - चलण - जुय - प्फंस - मित्त - जीयाण ।

पुप्फवइ इमे जाहिंति वासरा कह जुआणाण ॥ ८२ ॥

वयणं फुरंत - रयणं रययं जहणं सुवण्णमंगं ते ।

संचारिमा सि सुंदरि वम्मह - भंडार - मंजूसा ॥ ८३ ॥

अच्छीहिं अदीसंतस्स नय - सिर्लिवच्छि तुज्झ एएहिं ।

दोसे य च्चि पडियं अंजण - अच्चंतमल्लियणं ॥ ८४ ॥

रेहइ मियंक - बिंबं - सुंदरि तुह गंड - मंडलावडियं ।

मयण - करि - कण्ण - घोलिर - फुरंत - सिय - चारु - चमरं व ॥ ८५ ॥

मयणनिवासो त्ति असोअमच्चसे कीस तं न अप्पाणं ।

सरिसे फलम्मि मुद्धे वाहिं को वच्चइ घराओ ॥ ८६ ॥

उण्णय - गरुय - पओहर- नियेव - बिंबंतरालमल्लीणो ।

सुयणु सउण्णो मज्झो एद्दह - मित्तो वि जं धरइ ॥ ८७ ॥

छिक्का रक्खा कंडय - सीउण्ह - जरं ति गयवइ - पयाइं ।

लीलालस - मउयाइं तरंति कह सिक्खिउं कइणो ॥ ८८ ॥

जियउ त्ति पय - सणाइं तुह गोत्तं परियणाहि सोउ - मणा ।

छिक्का - कएण बहुसो नासा - विवरे तणं छुहइ ॥ ८९ ॥

तह पूरियमोक्कणयं तुह दंसण - सउण - गंठि - बंधेहिं ।

भग्ग - सरण - ग्गहं से जह रक्खा - कंडयं जायं ॥ ९० ॥

मुक्क - जराए वि तुह गोत्त - कित्तणुक्कंप - सिज्जिरंगीए ।

सीउण्ह - जर - फला - संकिरीए नेच्छिजए पच्छं ॥ ९१ ॥

संजीवणि - कर - पल्लव - कविय त्ति सरस्सईय गयवइणो ।

पुण्णतण - निज्जिय - सेउवंधमुययं पसंसेमो ॥ ९२ ॥

दूसह - विरह - भुयंगम - निद्दय - डक्का वि धरइ सा वरइ ।

तुह दंसण - संजीवणि - विणिओय - वसेण सुइणम्मि ॥ ९३ ॥

दाविय - कर - पल्लवयं उत्तर - पडु (? डिउ) त्तरेहिं जंपंती ।

तइं सह चिंता - दिट्ठेण केण न नडि व्व सा दिट्ठा ॥ ९४ ॥

सहियाण सवं कवियं तह कहइ कहाणयं पुलइयंगी ।

जह न कलिज्जइ तुह गोत्त -कित्तणेहिं पि पुणरुत्तं ॥ ९५ ॥

सइलंभ - मोह - भमिरि त्ति मीलियच्छि त्ति वावडच्छि ।

जयइ कइ - कण्ण - सुहया रामस्स व वाइणो वाणी ॥ ९६ ॥

पडिवत्तिअं करंति मा मा आयार - बाहिरिं भणसु ।

सद्दहइ न तुह दंसणमेसा सइ - लंभ - वेलविया ॥ ९७ ॥

बाहिं तुह दंसण - लालसाए मुद्धाए मोह - भमिरीए ।

साहेज्ज - तुमं को वा न तिए हियए च्चिय वसंतं ॥ ९८ ॥

एत्तो किं दच्छामि त्ति पेच्छणीयं त्ति मीलियच्छि - जुआ ।

हिअए निहिऊण तुमं जोगब्भासं सा कुणइ ॥ ९९ ॥

(गुण - तुलिय - कोव - तरु - दुब्बल त्ति वाणीए पसरियाए) तिहा ।

तुह बप्पभट्टि भुयणं भरियं भाईरहीए व्व ॥ १२६ ॥

गुण - तुलिय - परियणायंत - भुयण- निक्खित्त - सयल - निय - विहवा ।

नालप्पंति सुपुरिसा दायार - दरिद्द - सद्देहिं ॥ १२७ ॥

दावंतो च्चिय फुल्लं फलं च गरुयाण होइ कोब - तरू ।

अगिलंतो रविमिंदुं व केण दिट्ठो नहे राहू ॥ १२८ ॥

जा जिप्पइ सो इर दुब्बला त्ति परिभाविऊण सप्पुरिसा ।

मण्णंति महाबल - भंजणे (वि) अकयत्थमप्पाणं ॥ १२९ ॥

मज्झा - थणवट्ठ - सुदंसणेहिं पिय - कंचुइ त्ति गाहाहिं ।

सहइ - त्थण - सालिणीहिं दइयाहिं व सेयभिक्खु त्ति ॥ १३० ।

कह मा हि (? झि) ज्जउ मज्झो इमीए कंदोट्ठ - दल - सरिच्छेहि ।

जो नयणेहिं न दीसइ घण - थणहर - रुद्ध - पसरेहिं ॥ १३१ ॥

थणवट्ठ तुह पसाएण फंसिमो तस्स उरयडमसेसं ।

इमिणा उण दहसि न देसि जं म्ह हियएण परिरंभं ॥ १३२ ॥

गरुएहिं घणेहिं सुदंसणेहिं पडिवण्ण - मंडलग्गेहिं ।

थण - सुहडेहिं परिरक्खियं पि कह से हडं हिययं ॥ १३३ ॥

तुज्झ पिय - कंचुए पिच्छ घण - थणुच्छंग - फंसण - सइण्हो ।

एण्हि पडियण्णो सूइयाण सीसत्तणं गामो ॥ १३४ ॥

गब्भो - निय - पडिबिंबं ति इंदुणो मंडलं सरेहिं ति ।

वायाए वि सुपसायाइ वाइ गुणिणो तुह नमंति ॥ १३५ ॥

पिय - परिरंभं मज्झस्स कढिण - थण - जहण - तुंगिमक्खित्तं ।

जं देइ तेण महिलाण नूणमइवल्लहो गब्भो ॥ १३६ ॥

निय - पडिबिंबं दट्ठूण पियइ अण्णो त्ति संकिरो डिंभो ।

ओसरइ रुयइ पहणइ करेण जणणीए थणविंट्टं ॥ १३७ ॥

मह दइया - सम - नयणाए एस बालाए वयण - पडिवक्खो ।

इय गणिऊण कुरंगेण इंदुणो मंडलं गहियं ॥ १३८ ॥

विसमेहिं सरेहिं जणं जिणंत कंदप्प दप्पिओ कीस ।

न नियसि दिट्ठीए च्चिय विणिज्जियं कुवलयमिमीए ॥ १३९ ॥

सकयग्गह - सच्छप्पय - को उण उत्तरो त्ति वाणीए ।

गयवइ पेच्छ वसाए दिसागओ ते जसो जाओ ॥ १४० ॥

स - कय - ग्गह - रहसुत्ताणियं पि न पिओ पियामुहं पियइ ।

अप्पुब्ब - तक्खणुम्मिल्ल - विब्भमुल्लोल - लोलच्छो ॥ १४१ ॥

स - च्छप्पय - कमल - दलद्ध - विब्भमद्धच्छि - पिच्छियं तिस्सा ।

कुप्पासमिसीति - वलंत - कंधरं कं ण मोहेइ ॥ १४२ ॥

तह पाविय - खंडण - पीलणो वि जो वहइ निब्भरं रायं ।

जइ सो वि होइ अहरो को उण तुह उत्तरो सुयणु ॥ १४३ ॥

झीणा सिसिरो वि विसालयाइं सइ - पंथिय त्ति वाइ तुमं ।

आसाइयाए मइओ कह न पसण्णाए वाणीए ॥ १४४ ॥

तह झीणा जह मउलिय - लोयण - पुड - विहडणे वि असमत्था ।

सक्किहइ दुक्करं घर - गयं पि दट्ठूं तुमं वरई ॥ १४५ ॥

सिसिरो वि तुह विओए दहइ ससी मुह - विणिज्जिओ वरइं ।

कय - परिभवो वियारं न वच्चए को व विहुरम्मि ॥ १४६ ॥

अमयमइया वि बाला करेइ कलमलय - दाह - मुच्छाओ ।

पेच्छंती किं कीरउ नयणाई विसालयाइं से ॥ १४७ ॥

भुवणब्भंतर - सइ - पंथियस्स हिययस्स पिययमो मामि ।

कुणइ पयाणय - भंगं कहा - पसंगेण वि पलत्तो ॥ १४८ ॥

कइ - बप्पहट्टिणो दर - दलंत - सयवत्त - णलिणि - कुमुएहिं ।

रेहइ घण - पायड - महुरसह - सुहयं सरं व मुहं ॥ १४९ ॥

रय - मुम्मुर - निब्भर - दर - दलंत - सयवत्त - णिंत - भमरोली ।

उग्गाहियग्घ - धूय व्व दीसए कमलिणी रविणो ॥ १५० ॥

आलाय - मित्त - वियसंत - कुमुइणी - पीयमाण - घण - जोण्हं ।

ओ नलिणि मियंकं परिहरंति तइं वंचिओ अप्पा ॥ १५१ ॥

जइ होज्ज निसा तीए वि सो खणो जइ तहिं पि न हु मिहिया ।

ता दच्छसि ससिलेहं हा कुमुय कहिं तुह वियासो ॥ १५२ ॥

रेवा पव्वायंगी साहीणे किं फलं ति गाहाओ ।

विरएउं गयवइणो वि विम्हओ नूण संजाओ ॥ १५३ ॥

ठाणे ठाणे णमिऊण धारिया निय - पयं पि से दिण्णं ।

बिंझस्स तह वि रेवा मणयं पि न सम्मुही जाया ॥ १५४ ॥

जोण्हा पव्वायंगी न विमद्द - सहा इम त्ति मा संक ।

ससियर - मउलिज्जंतं पि कमलमलि - चडुणं सहइ ॥ १५५ ॥

रोवंतु नाम तं जणमपिच्छमाणाइं दड्ड - नयणाइं ।

तं हियय किं विसूरसि साहीणे चिन्तियव्वम्भि ॥ १५६ ॥

ण भणह किमुज्जुयं चिय सहिओ अम्हेहिं सो तुह हिओ त्ति ।

किं फलमिमिणा माणोवएस - माया - पवंचेण ॥ १५७ ॥

एक्कावत्थं महणे एवसण - मण सप्पणामियं कुमरी ।

इय विरएउं तुमए गयवइ मूईकया कइणो ॥ १५८ ॥

अमुणिय - विसेस - पसरंत - तोस - रोसंसु - भूसियं तिस्सा ।

चाडुम्मि विप्पियाम्मि वि एक्कावत्थं मुहं सरिमो ॥ १५९ ॥

महणे तिहुयणृ साहारणे वि हरिणा सिरी सयं गहिया ।

किं बहुणा देवा वि हु सयत्थ - करणुज्जुया सव्वे ॥ १६० ॥

पवसण - मण - दइय - कया निउणाहि सहीहि विरह - सहणत्थं ।

अलिया वि हु अवराहा वहए दो - तिण्णि कहियंति ॥ १६१ ॥

जइ महसि गारवं पिय - जणम्मि मा कुणसु ता इमं माणं ।

सहि सप्पणामिया मूलिया वि लोयम्मि सु - महघा ॥ १६२ ॥

पढम - सुरयम्मि कुमरी खलीकया तह दढं अणारेण ।

जह झिंडुलि - वेणी वि हु न सहइ नामं पि पुरिसाणं ॥ १६३ ॥

कइअव - रुण्णं आसंकिऊण इय बप्पहट्टिणा भुवणं ।

बाहाहि व फुरियत्थाहि निज्जियं असइ - गाहाहि ॥ १६४ ॥

कंप - निवडंत - कुडयाण सलिल - हारीण हरिस - बाहइढं ।

तुह दीह - दंसण कए कइअव - रुण्णं न निद्दाइ ॥ १६५ ॥

आसंकिऊण गब्भं पवास - विणियत्त - भत्तुणो पुरओ ।

पुप्फवई - नेवत्थेण छिंछई पुणइ सुद्धाइ ॥ १६६ ॥

सहि - कज्ज खित्त - मुह घेणुयाउ दियरु त्ति वाइणो बाणी ।

एक्क च्चिय निज्जिय - पवरसेण - अक्खोहिणी जयइ ॥ १६७ ॥

मा झत्ति तुज्झ दंसण - रहसुम्माएण घिप्पउ वराई ।

ता सहसु जा कहेमि त्ति जंपिरी कुणइ सहि - कज्जं ॥ १६८ ॥

वावय तुह खित्त - मुहागयस्स गोसम्मि दंसण - मणाए ।

जग्गंतीए वि रयणीए तीए न थमालिओ कलमो ॥ १६९ ॥

आयामिऊण हरणं पि पंसुली घेणुयाउ नीणेइ ।

बाहिं गेहिय - निग्गमण - कंखिरी अद्ध - रत्तम्मि ॥ १७० ॥

छेयाए मुद्ध - दियरस्स लाइया तह विलासिणि - विलासा ।

संढो त्ति परिहरिज्जइ कण्णा - दाणे जह जणेण ॥ १७१ ॥

पर - देस - देउलावासियाए जो रक्खइ त्ति अणवज्जं ।

आणंदिय - सवणं सेयभिक्खुणो वंदिमो वयणं ॥ १७२ ॥

पर - देस - देउलावासियाए असईए पेल्लिय पइट्ठ ।

चोरं काऊण पई कुढियाण समप्पिओ भत्ता ॥ १७३ ॥

जो महइ परस्स धणं कुप्पइ तस्सप्पणो ण्ण मग्गंतो ।

जो रक्खइ निययं चिय कुप्पइ तस्सेव विवरीओ ॥ १७४ ॥

गंभीरो अण्णो च्चिय स एस सरसत्तणेण अग्घविओ ।

कइ - कित्तिए समुद्दो अणेय - गाहाउलो कोसो ॥ १७५ ॥

परिशिष्ट ५

आचार्य बप्पभट्टिसूरिविरचित चतुर्विंशतिका

अथ श्रीनाभेयस्य स्तुतिः -

नम्रेन्द्रमौलिगलितोत्तमपारिजात-

मालार्चितक्रम! भवन्तमपारिजात! ।

नाभेय! नौमि भुवनत्रिकपापवर्ग-

दायिन्! जिनास्तमदनादिकपापवर्ग! ॥ १ ॥

- वसन्ततिलका (८, ६)

जिनवराणां प्रार्थना -

दारिद्र्यमद्रिसमविग्रहतापनीय-

राशिप्रदानविधिना महता ऽ पनीय ।

यैर्दुःखशत्रुरिह जन्मवतामघानि

निघ्नन्तु ते जिनवरा भवतामघानि ॥ २ ॥

- वसन्त.

जैनसिद्धान्तप्रशंसा -

यद् दोपदारुदहनेषु रतः कृशानुः

स्यादापदुर्व्यपि हि यत् स्मरतः कृशा नुः ।

यद् वृष्टिरेव परिदाहिषु मेघजाऽ लं

जैनं मतं हरतु तद् गुरु मे ऽ घजालम् ॥ ३ ॥

- वसन्त.

श्रुतदेवता - संकीर्तनम् -

यां द्राग् भवन्ति सुरमन्त्रिसमा नमन्तः

संत्यज्य मोहमधियो ऽ प्यसमानसन्तः ।

वाग्देवता हतकुवादिकुला भवर्णात्

सा पातु कुन्दविकसन्मुकुलाभवर्णा ॥ ४ ॥

- वसन्त.

अथ श्रीअजितनाथस्य स्तुतिः -

कुसुमबाणचमूभिरपीडित -

स्त्रिभिरतीव जगद्भिरपीडितः ।

सकललोकमवन् वृजिनाजितः

शमयताद् दुरितानि जिनाजितः ॥ ५ ॥

- द्रुतविलम्तिम्

जिनेश्वराणां नुतिः -

कृतवतो ऽ सुमतां शरणान्वयं

सकलतीर्थकृतां चरणान् वयम् ।

सुरकृताम्बजगर्भनिशान्तकान्

रविसमान् प्रणुमो ऽ घनिशान्तकान् ॥ ६ ॥

- द्रुत.

जिनवाणी - प्रशंसा -

कृतसमस्तजगच्छुभवस्तुता

जितकुवादिगणा ऽ स्तभवस्तुता ।

अवतु वः परिपूर्णनभा रती-

नृमरुते ददती जिनभारती ॥ ७ ॥

- द्रुत.

धरणपट्टमहिलायाः स्तुतिः -

सुफणरत्नसरीसृपराजितां

रिपुबलप्रहतावपराजिताम् ।

स्मरत तां धरणाग्रिमयोषितं

जिनगृहेषु यया ऽ श्रमयोषितम् ॥ ८ ॥

- द्रुत.

अथ श्रीशंभवनाथस्य स्तुतिः -

नमो भुवनशेखरं दधति! देवि! ते वन्दिता-

मितिस्तुतिपरा ऽ गमत् त्रिदशपावली वन्दिता ।

यदीयजननीं प्रति प्रणुत तं जिनेशं भवं

निहन्तुमनसः सदा ऽ नुपमवैभवं शंभवम् ॥ ९ ॥

- पृथ्वी (८, ९)

सकलजिनेश्वराणां जन्माभिषेकः -

सुमेरुगिरिमूर्धनि ध्वनदनेकदिव्यानके

सुरैः कृतमवेक्ष्य यं मुमुदिरे ऽ तिभव्या न के ।

जगत्त्रितयपावनो जिनवराभिषेको मलं

सदा स विधुनोतु नो ऽ शुभमयं घनाकोमलम् ॥ १० ॥

- पृथ्वी

श्रीसिद्धान्तपरिचयः -

अपेतनिधनं धनं बुधजनस्य शान्तापदं

प्रमाणनयसंकुलं भृशमसदृशां तापदम् ।

जना! जिनवरागमं भजत तं महासम्पदं

यदीप्सथ सुखात्मकं विगतकामहासं पदम् ॥ ११ ॥

- पृथ्वी

रोहिणीदेव्याः स्तुतिः -

शराक्षधनुशङ्खभृन्निजयशोवलक्षा मता

कृताखिलजगज्जनाहितमहावलक्षामता ।

विनीतजनताविपद्द्विपसमृद्ध्यभिद्रोहिणी

ममास्तु सुरभिस्थिता रिपुमहीध्रभिद् रोहिणी ॥ १२ ॥ ३ ॥

- पृथ्वी

अथ श्रीअभिनंदननाथस्य स्तुतिः -

अभयीकृतभीतिमज्जनः

सुरपकृतातुलभूतिमज्जनः ।

यो भव्यमनो ऽ भिनन्दनः

शिवदः सो ऽ स्तु जिनो ऽ भिनन्दनः ॥ १३ ॥

- वैतालीयम्

तीर्थपतीनां नुतिः -

रक्षन्त्यचरं त्रसं च ये

कृतचरणाः शतपत्रसश्रये ।

अपवर्गोपायशोधनाः

ते वः पान्तु जिना यशोधनाः ॥ १४ ॥ -वैता.

जिनवाणीविलासः -

व्याप्ताखिलविष्टपत्रया

पदचम्वा नयपुष्टपत्रया ।

या मुनिभिरभाजि नो दिता

सा वागस्तु मुदे जिनोदिता ॥ १५ ॥

- वैता.

प्रज्ञप्तिदेव्याः स्तुतिः -

तन्वा ऽब्जमहादलाभया

सह शक्त्या ऽतुलमोदलाभया ।

मम भवतु महाशिखण्ड़िका

प्रज्ञप्ती रिपुराशिखण्डिका ॥ १६ ॥ ४ ॥

- वैता.

अथ श्रीसुमतिनाथस्य स्तुतिः -

कुर्वन्तमुरुप्रभं जनं

नम्रमनङ्गतरुप्रभञ्जनम् ।

भक्त्या नुत सन्महोदयं

सुमतिजिनं विकस्नमहोदयम् ॥ १७ ॥

- वैता.

जिनसमूहस्य प्रार्थना -

पोतत्वं वै भवोदधौ

पततां यो गुरुवैभवो दधौ ।

वितरतु सो ऽ तामसं वरं

निवहस्तीर्थकृतामसंवरम् ॥ १८ ॥

- वैता.

जिन-वाण्यै प्रणामः -

छिन्ते भववासदाम या

जिनवाक् सा ऽ तिशिवा सदा मया ।

विनता ऽ भ्यधिकामसङ्गतां

यच्छतु च च्युतकामसङ्गताम् ॥ १९ ॥

- वैता.

वज्रशृङ्खलादेव्याः स्तुतिः -

संस्मरत रतां कुशेशये

कनकच्छविं दुरिताङ्कुशे शये ।

अहिताद्रिहवज्रशृङ्खलां

धरमाणामिह वज्रशृङ्खलाम् ॥ २० ॥ ५ ॥

- वैता.

अथ श्रीपद्मप्रभनाथस्य स्तुतिः -

वर्णेन तुल्यरुचिसम्पदि विद्रुमाणां

पुष्पोत्करैः सुरगणेन दिवि द्रुमाणाम् ।

अभ्यर्चिते प्रमदगर्भसजे यशस्ये

पद्मप्रभे कुरुत भक्तिमजेयशस्ये ॥ २१ ॥

- वसन्त.

समस्तजिनेश्वराणां स्तुतिः -

ये मज्जनोदकपवित्रितमन्दरागा-

स्तोषेण यानलमुपासत मन्दरागाः ।

धर्मोदयाब्धिपतने वनराजिनाव -

स्ते पान्तु नन्दितसदेवनरा जिना वः ॥ २२ ॥

- वसन्त.

जिनमतविचारः -

शच्यादिदिव्यवनितौघधवस्तुत! त्व -

मव्याहतोदितयथाविधवस्तुतत्त्व! ।

स्थानं जिनेन्द्रमत! नित्यमकम्प्रदेहि

जन्माद्यनन्तविपदां शमकं प्रदेहि ॥ २३ ॥

- वसन्त.

वज्राङ्कुशीदेव्याः स्तुतिः -

अध्यास्त या कनकरुक् सितवारणेशं

वज्राङ्कुशी पटुतरा ऽ हितवारणे शम् ।

न ह्येकधैव विजये बहुधा तु सारं

वज्राङ्कुशं धृतवती विदधातु सा ऽ रम् ॥ २४ ॥ ६ ॥

- वसन्त.

अथ श्रीसुपार्श्वनाथस्य संकीर्तनम् -

आशास्ते यः स्तवै युष्मानित्यसौ ख्यातिभाजनः ।

श्री सुपार्श्व! भवत्येव, नित्यसौख्यातिभा जनः ॥ २५ ॥

- अनुष्टुप्

जिनकदम्बककीर्तनम् -

जिनांह्री नौमि यौ जुष्टावानतामरसंसदा ।

आरूढौ दिव्यसौवर्णावानतामरसं सदा ॥ २६ ॥

- अनु.

जिनवाणीविचारः -

यशो धत्ते न जातारि - शमना विलसन् न या ।

सा ऽऽ र्हती भारती दत्तां, शमनाविलसन्नया ॥ २७ ॥

- अनु.

अप्रतिचक्रादेव्याः प्रार्थना -

आरूढा गरुडं हेमा - भा ऽ समा नाशितारिभिः ।

पायादप्रतिचक्रा वो, भासमाना शितारिभिः ॥ २८ ॥ ७ ॥

- अनु.

अथ श्रीचन्द्रप्रभस्य स्तुतिः -

भवोद्भवतृपां भृशं कृतशिवप्रपं चामरैः

सहर्षमुपवीजितं वरवपुःप्रपश्चामरैः ।

प्रभावलयकान्ततापहसितोरुचन्द्रप्रभं

प्रणौमि परमेश्वरं विनयचारु चन्द्रप्रभम् ॥ २९ ॥

- पृथ्वी

जिन - स्वरूपम्

अवन्तु भवतो भवात् कलुषवासकादर्पकाः

सुखातिशयसम्पदां भुवनभासकादर्पकाः ।

विलीनमलकेवलातुलविकासभारा जिना

मुदं विदधतः सदा सुवचसा सभाराजिना ॥ ३० ॥

- पृथ्वी

जिनागम - स्मरणम् -

समस्तभुवनत्रयप्रथनसज्जनानापदः

प्रमोचयति यः स्मृतः सपदि सज्जनानापदः ।

समुल्लसितभङ्गकं तममलं भजै नागमं

स्फुरन्नयनिवारितासदुपलम्भजैनागमम् ॥ ३१ ॥

- पृथ्वी

कालीदेव्याः स्तुतिः

अशिश्रियत या ऽम्बुजं धृतगदाक्षमाला ऽ घवान्

यया वत विपूयते भयशमक्षमा ऽ लाघवा ।

घनाञ्जनसमप्रभा विहतघातकालीहितं

ममातुलमसौ सदा प्रविदधातु काली हितम् ॥ ३२ ॥ ८ ॥

- पृथ्वी

अथ श्रीसुविधिनाथाय प्रणामः -

विमलकोमलकोकनदच्छद -

च्छविहराविह राजभिरामरैः ।

सततनूततनू सुविधेः क्रमौ

नमत हे ऽ मतहेठनलालसाः! ॥ ३३ ॥

- द्रुत.

जिनेश्वरेभ्यो विज्ञप्तिः -

कलशकुन्तशकुन्तवराङ्कित -

क्रमतला मतलाभकरा नृणाम् ।

विगतरागतरा वितरन्तु नो

हितमनन्तमनङ्गजितो जिनाः ॥ ३४ ॥

- द्रुत.

जिनमताय प्रणामः -

अवमसंतमसं ततमानयत् -

प्रलयमालयमागनरोचिषाम् ।

भुवनपावनपालनमर्कवज् -

जिनमतं नम तन्नयवन्नहो! ॥ ३५ ॥

- द्रुत.

मानवीदेव्याः स्तुतिः -

जयति सायतिसामकृदन्विता

सुतरुणा तरुणाब्जसमद्युतिः ।

कजगता जगता समुदा नुता

नतिमता ऽ तिमता भुवि मानवी ॥ ३६ ॥

- द्रुत.

अथ श्रीशीतलनाथस्य स्तुतिः -

विहरति भुवि यस्मिन् देवलोकोपमानः

समजनि नरलोकः शीतलो ऽ कोपमानः ।

ऋजिमसलिलधाराधौतमायापरागः

स भवतु भवभीतेः संशमायापरागः ॥ ३७ ॥

- मालिनी (८, ७)

जिनवराणामुपासना -

यमभिनवितुमुच्चैर्दिव्यराजीववार -

स्थितचरणसरोजं भव्यराजी ववार ।

जिनवरविसरं तं पापविध्वंसदक्षं

शरणमित विदन्तो मा स्म विद्धं सदक्षम् ॥ ३८ ॥

- मालिनी

सिद्धान्तस्य स्तुतिः -

पटुररीतिमिरौघव्याहृतावर्यमेव

प्रवितरति जनेभ्य यः सदा वर्यमेव ।

स हि बहुविधजन्मव्रातजैनःकृतान्त -

कृतकुमतविघातः पातु जैनः कृतान्तः ॥ ३९ ॥

- मालिनी

पुरुषदत्तादेव्याः स्तुतिः -

भ्रमति भुवि महिष्या या ऽऽ महासिन्धु नाना -

कृतजिनगृहमालासन्महा ऽ सिं धुनाना ।

कनकनिभवपुःश्रीरञ्जसा साधिताया

रुजतु पुरुषदत्ता ऽ स्मासु सा साधितायाः ॥ ४० ॥ १० ॥

- मालिनी

अथ श्रीश्रेयांसनाथस्य वन्दनम् -

विमलितबहुतमसमलं

स्फुरत्प्रभामण्डलास्तसंतमसमलम् ।

सकलश्रीश्रेयांसं

प्रणमत भक्त्या जिनेश्वरं श्रेयांसम् ॥ ४१ ॥

- आर्यागीतिः

जिनपतिभ्यः प्रणामः -

आनन्दितभव्यजनं

घनाघघर्मार्तशिशिरसुभव्यजनम् ।

अभिवन्दे जिनदेव -

क्रमयुगलं सद्गुणैः सदा ऽ जिनदेव ॥ ४२ ॥

- आर्या.

जिनवाण्यै नमः -

जैनमुपमानरहितं

वचो जगत्त्राणकारि नो पुनरहितम् ।

प्रणमत सन्महिमकरं

भव्यमहाकुमुदबोधजन्महिमकरम् ॥ ४३ ॥

- आर्या.

महाकालीदेव्याः स्तुतिः -

या द्युतिविजिततमाला

पविफलघण्टाक्षभृल्लसत्ततमाला ।

नृस्था सुषमं तनुता -

दसौ महाकाल्यमर्त्यसामन्तनुता ॥ ४४ ॥ ११ ॥

- आर्या.

अथ श्रीवासुपूज्यस्य महिमा -

श्रीमते वासुपूज्याय, ज्यायसे जगतां नमन् ।

न मन्दो ऽपि क्षणादेव, देवपूज्यो न जायते ? ॥ ४५ ॥

- अनुष्टुप्

तीर्थकराणामभ्यर्थना -

ये स्नापिताः सुरुचितैः, रुचितैर्दानवारिभिः ।

वारिभिर्विंतते मेरौ, ते मे रौद्रं हरन्त्वघम् ॥ ४६ ॥

- अनुष्टुप्

जिनवाणीविचारः -

अनादिनिधना ऽदीना, धनादीनामतिप्रदा ।

मतिप्रदानमादेया - ऽनमा देयाज्जिनेन्द्रवाक् ॥ ४७ ॥

- अनुष्टुप्

गौरीदेव्याः स्तुतिः -

सौवर्णपट्टा श्रीगौरी, श्रीगौरी पद्महस्तिका ।

हस्तिकाया महागोधा - ऽऽगोधामध्वस्तये ऽस्तु वः ॥ ४८ ॥ १२ ॥

- अनुष्टुप्

अथ श्रीविमलनाथस्य संस्तवनम् -

निजमहिमविजितकमलं

प्रमदभरानम्रदेवपूजितकमलम् ।

विमलस्य धामयुगलं-

घनीयगुणसम्पदभिनुत क्रमयुगलम् ॥ ४९ ॥

- आर्यागीति.

जिन - सेवा -

शमिताखिलरुजि नानां-

भोजोदरलालिते ऽतिचारु जिनानाम् ।

चरणयुगे दिविजनते

भक्तिं कुरु दुर्लभे भुवि जनते! ॥ ५० ॥

- आर्या.

वाणीस्तुतिः -

विजितवती सुरवं द्या-

मापूरितवन्तमम्बुदं सुरवन्द्या ।

वीरस्य भवादवताद्

वाणी केनापि न विजिता वादवता ॥ ५१ ॥

- आर्या.

गान्धारीदेव्याः स्तुतिः -

पविमुशलकरा लाभं

शुभं क्रियादधिवसन्त्यतिकरालाभम् ।

कमलं रागान्धारी -

रणकृन्नीलप्रभोत्करा गान्धारी ॥ ५२ ॥ १३ ॥

- आर्या.

अथ श्रीअनन्तनाथस्य स्तुतिः -

निरेति गदवल्लरीगुपिलजन्मकान्तारतः

प्रणम्य यमनीप्सितोपनतदिव्यकान्तारतः ।

अनन्तजिदसौ जयत्यभिमतायदो घस्मरः

समस्तजगदंहसां हतकृतापदोघस्मरः ॥ ५३ ॥

- पृथ्वी (८, ९)

जिनानां विजयः -

भवन्ति न यदानता वरविधावलीकाननाः

श्रुतज्वलनभस्मसात्कृतभवावलीकाननाः ।

प्रपश्चितजगद्गृहदुरितकूपतारा जिना

जयन्ति वपुषेह ते ऽ नुपमरूपताराजिना ॥ ५४ ॥

- पृथ्वी

जिन - वाण्याः प्राधान्यम् -

अवन्त्यखिलविष्टपाश्रितसभाजनासूनृता

जयत्यमरयोगिभिः कृतसभाजना सूनृता ।

जिनेन्द्रगदिता नयादिवसुपाऽत्र गीर्वाणता -

मिता रिपुविभेदने कृतसुपात्रगीर्वाणता ॥ ५५ ॥

- पृथ्वी

मानसीदेव्याः स्तुतिः -

निजाङ्गलतयोज्ज्वला विशदबन्धुजीवाभया

सिताङ्गविहगा हतानमदबन्धुजीवा ऽ भया ।

ज्वलज्ज्वलनहेतिका हरतु मानसी तापदं

शुभातिशयधान्यवृद्ध्यनुपमानसीता पदम् ॥ ५६ ॥

- पृथ्वी

अथ श्रीधर्मनाथस्य स्तुतिः -

समवसरणभूमौ सज्जितार्चोदयायां

नियतमभिदधौ यः सज्जितार्चो दयायाम् ।

जनयतु मुदमुद्यद्रागसौधर्मनामा -

र्चितहरिपरिपूज्यो द्रागसौ धर्मनामा ॥ ५७ ॥

- मालिनी (८, ७)

जिनवराणां विज्ञप्तिः -

यदुदयमधिगम्य व्यापदानन्दमञ्च -

ज्जगदुपरतहिंसं व्याप दानं दमं च ।

ददतु पदमुरुश्रीतेजि नानाशयं तु

प्रतिभयमिह नो ऽघं ते जिना नाशयन्तु ॥ ५८ ॥

- मालिनी

जिनवचनप्रशंसा -

परसमयरिपूणां संसदो दारहेतौ ।

विहितविततमोहासं सदोदारहेतौ ।

जिनवचसि रता स्तापद्धतौ सत्यनीतौ

दिविजमनुजलक्ष्मीपद्धतौ सत्यनीतौ ॥ ५९ ॥

- मालिनी

महामानसीदेव्याः स्तुतिः -

असिफलकमणिश्रीकुण्डिकाहस्तिका ऽ लं

प्रवलरिपुवनानां कुण्डिका हस्तिकालम् ।

मृगपतिमधिरूढा सा महामानसी मा-

मवतु सुतडिदाभा ऽ सामहा मानसीमा ॥ ६० ॥ १५ ॥

- मालिनी

अथ श्रीशान्तिनाथाय नमः -

भव्यैः कथञ्चिदतिदुःखगभीरवापे-

रुत्तारको जगति सम्यगभीरवापे ।

यस्तं नमानि विहितावमहानिशान्तं

शान्तिं जिनं परमशान्तिमहानिशान्तम् ॥ ६१ ॥

- वसन्ततिलका

जिनानामुत्कर्षः -

यद्बाहवो वरपुरीपरमार्गलाभाः

प्राप्ता यतश्च जगता परमार्गलाभाः ।

नत्वा च यांस्तुलितवैबुधराजि ना ऽऽ स्ते

सिद्धौ जयन्त्यघदवाम्बुधरा जिनास्ते ॥ ६२ ॥

- वसन्त.

जैनवचसः प्रधानता -

यच्छृण्वतो ऽ त्र जगतो ऽ पि समा ऽ धिका ऽ रं

बुद्धिर्भवत्यनुपतापि समाधिकारम् ।

तत् पावकं जयति जैनवचो रसादि -

भोगातिलोलकरणानवचोरसादि ॥ ६३ ॥

- वसन्त.

कालीदेव्याः प्रार्थना -

धत्ते गदाक्षमिह दृक्पतिताञ्जनस्य

कान्तिं च या गतवती पतितां जनस्य ।

आमोदलोलमुखरोपरिपातुकाली

पद्मो यदासनमसौ परिपातु काली ॥ ६४ ॥ १६ ॥

अथ श्रीकुन्थुनाथस्य स्तुतिः -

हन्तुं महामोहतमो ऽ क्षमाणा-

मोजो नृणां यो ऽ कृत मोक्षमाणा ।

यं चातिकृच्छ्राज्जनता ऽऽ प देवः

स्थाप्यात् स कुन्थुः शिवतापदे वः ॥ ६५ ॥

- इन्द्रवज्रा

जिनदर्शनस्य प्रभावः -

संसाररूपः सुबृहन्नुदन्वा-

नलब्धि पीडानिवहं नुदन् वा ।

यद्दर्शनात् प्रापि जनेन नाकः

स्तूयाज्जिनांस्तान् भुवने न ना कः ।॥ ६६ ॥

- उपजातिः

जिनवाणीमाहात्म्यम् -

वज्राशनीं दुष्कृतपर्वतानां

निर्वाणदानात् कृतपर्वतानाम् ।

जिनेन्द्रवाणीमवदातनिष्ठां

समाश्रयध्वं स्ववदातनिष्ठाम् ॥ ६७ ॥

- उप.

महाकालीदेव्याः स्तुतिः -

घण्टेन्द्रशस्त्रं सफलाक्षमालं

नृस्था वहन्ती विमला क्षमा ऽ लम् ।

वरेषु वः पातु तमालकान्ता

देवी महाकाल्यसमालकान्ता ॥ ६८ ॥ १७ ॥

- उप.

अथ श्रीअरनाथस्य स्तुतिः -

स्तुत तं येन निर्वृत्त्या - मरञ्जि नवरञ्जनाः ।

विहाय लक्ष्मीर्जगता - मरं जिनवरं जनाः! ॥ ६९ ॥

- अनुष्टुप्

जिनकदम्बकस्य स्तुतिः -

त्रिलोकीं फलयन् पातु, सद्मनःपादपां स वः ।

जिनौघो यस्य वन्द्याः श्री - सद्मनः पादपांसवः ॥ ७० ॥

- अनुष्टुप्

जिनवाक्स्तुतिः -

जैन्यव्याद् वाक् सतां दत्त - माननन्दा न वादिभिः ।

जय्या स्तुत्या च नीतीना - माननं दानवादिभिः ॥ ७१ ॥

- अनुष्टुप्

वैरोट्यादेव्याः स्तुतिः -

श्यामा नागास्त्रपत्रा वो, वैरोट्या ऽ रं भये ऽ वतु ।

शान्तो ऽ रातिर्यया ऽ त्युग्र - वैरोट्यारम्भयेव तु ॥ ७२ ॥ १८ ॥

- अनुष्टुप्

अथ श्रीमल्लिनाथस्य स्तुतिः -

करोतु नो मल्लिजिनः, प्रियं गुरु चिरं हतिम् ।

द्विषां च तन्यात् सिद्धेश्च, प्रियङ्गुरुरिंहतिम् ॥ ७३ ॥

- अनुष्टुप्

जिनजन्ममहिमा -

जैनं जन्म श्रियं स्वर्ग - समग्रामं दधातु नः ।

क्षणदं मेरुशिरसः, समग्रामन्दधातुनः ॥ ७४ ॥

जिनवाण्याः स्वीकारः -

जिनस्य भारतीं तमो - वनागसङ्गनाशनीम् ।

उपेत हेतुमुन्नता - वनागसं घनाशनीम् ॥ ७५ ॥

- प्रमाणिका

श्रुतदेवतायाः स्तुतिः -

वाग्देवी वरदीभूत - पुस्तिका ऽऽ पद्मलक्षितौ ।

आपो ऽ व्याद् बिभ्रती हस्तौ, पुस्तिकापद्मलक्षितौ ॥ ७६ ॥ १९ ॥

श्रीमुनिसुव्रतनाथस्य स्तुतिः -

जयसि सुव्रत! भव्यशिखण्डिना -

मरहितापघनाञ्जननीलताम् ।

दधदलं फलयंश्च समं भुवा -

ऽ मरहितापघनां जननीलताम् ॥ ७७ ॥

- द्रुतविलम्बितम्

समग्रजिनवराणां स्तुतिः -

प्रतिजिनं क्रमवारिरुहाणि नः

सुखचितानि हितानि नवानि शम् ।

दधति रान्तु पदानि नखप्रभा -

सुखचितानि हि तानि नवानिशम् ॥ ७८ ॥

- द्रुत.

जिनमतप्रशंसा -

जयति तत् समुदायमयं दृशा-

मतिकवी रमते परमे धने ।

महति यत्र विशालवलप्रभा-

मतिकवीरमते परमेधने ॥ ७९ ॥

- द्रुत.

श्रुतदेवतायाः स्तुतिः -

श्रुतनिधीशिनि! बुद्धिवनावली-

दवमनुत्तमसारचिता पदम् ।

भवभियां मम देवि! हरादरा-

दवमनुत् तमसा रचितापदम् ॥ ८० ॥ २० ॥

- द्रुत.

अथ श्रीनमिनाथस्य स्तुतिः -

विपदां शमनं शरणं

यामि नमिं दूयमानमनुजनतमम् ।

सुखकुमुदौघविकाशे

यामिनमिन्दूयमानमनुजनतम् ॥ ८१ ॥

- गीतिः

जिनेश्वराणां प्रार्थना -

यैर्भव्यजनं त्रातुं

येते भवतो ऽ जिनास्थिरहिता ये ।

ईशा निदधतु सुस्था-

ये ते भवतो जिना स्थिरहिताये ॥ ८२ ॥

- गीतिः

जिनशासनस्य विजयः -

जिनशासनं विजयते

विशदप्रतिभानवप्रभङ्गमवत् ।

त्रिजगद् भवकान्तारं

विशदप्रतिभानवप्रभं गमवत् ॥ ८३ ॥

- गीतिः

अच्छुप्तादेव्याः स्तुतिः -

सा ऽ च्छुप्ता ऽ व्याद् गौरी -

ह वाजिना याति या नमस्यन्ती ।

द्वैषमसिकार्मुकजिता -

ऽऽ हवा जिनायातियानमस्यन्ती ॥ ८४ ॥ २१ ॥

- गीतिः

अथ श्रीनेमिनाथायाभ्यर्थना -

चिरपरिचितलक्ष्मीं प्रोज्झ्य सिद्धौ रतारा -

दमरसदृशमर्त्यावर्जितां देहि नेमे! ।

भवजलधिनिमज्जज्जन्तुनिर्व्याजबन्धो!

दमरसदृशमर्त्या वर्जितां देहिने मे ॥ ८५ ॥

- मालिनी

जिनवराणां स्तुतिः -

विदधदिह यदाज्ञां निर्वृतौ शंमणीनां

सुखनिरतनुतानो ऽ नुत्तमास्ते ऽ महान्तः ।

ददतु विपुलभद्रां द्राग् जिनेन्द्राः श्रियं स्वः-

सुखनिरततनुता नो ऽ नुत्तमास्ते महान्तः ॥ ८६ ॥

- मालिनी

जिनसिद्धान्तस्मरणम् -

कृतसुमतिबलर्द्धिध्वस्तरुग्मृत्युदोषं

परममृतसमानं मानसं पातकान्तम् ।

प्रति दृढरुचि कृत्वा शासनं जैनचन्द्रं

परममृतसमानं मानसं पात कान्तम् ॥ ८७ ॥

- मालिनी

अम्बादेव्याः स्तुतिः -

जिनवचसि कृतास्था संश्रिता कम्रमाम्रं

समुदिकसुमनस्कं दिव्यसौदामनीरुक् ।

दिशतु सततं'मम्बा' भूतिपुष्पात्मकं नः

समुदितसुमनस्कं दिव्यसौ दाम नीरुक् ॥ ८८ ॥ २२ ॥

- मालिनी

अथ श्रीपार्श्वनाथाय प्रणामः -

नमामि जिनपार्श्व! ते शमितविग्रहं विग्रहं

महानिघनमेरुके वरद! शान्त! कृत्स्नापितम् ।

शुभैस्त्रिभुवनश्रियाः सुरवरैरनीचैस्तरा -

महानिघनमेरुके ऽ वरदशान्तकृत्! स्नापितम् ॥ ८९ ॥

- पृथ्वी

जिनपतिभ्यः प्रार्थना -

सुखौघजलमण्डपां दुरितघर्मभृद्भ्यो हिता

शुभव्यजनकामिताङ्कुशलसत्पताकारिणः ।

जिनेन्द्रचरणेन्दवः प्रवितरन्तु लक्ष्मीं सदा ऽऽ-

शु भव्यजनकामितां कुशलसत्पताकारिणः ॥ ९० ॥

- पृथ्वी

जिनमतस्वरूपम् -

अशक्यनुतिकं हरेरपि भवाद्रिनिर्धा (र्दा) रणे

स्वरूपममलक्षनं मनसि किन्नरैरश्रितम् ।

नयैर्जिनपतेर्मतं जन! शिवस्पृहश्चेदिति -

स्वरूपममलं घनं मनसि किं न रैरं चितम् ॥ ९१ ॥

- पृथ्वी

यक्षराजस्य स्तुतिः -

जिनार्चनरतः श्रितो मदकलं न तुल्यस्यदं

द्विपं न मनसा धनै रतिसमानयक्षीजनः ।

जयत्यखिलयक्षराट् प्रथितकीर्तिरत्युन्नमद् -

विपन्नमनसाधनैरतिसमानयक्षीजनः ॥ ९२ ॥ २३ ॥

- पृथ्वी

अथ श्रीवीरनाथस्य स्तुतिः -

न त्वा नत्वा ऽ पवर्गप्रगुणगुरुगुणव्रातमुद्भूतमुद् भू-

रंहोरंहोभवानां भवति घनभयाभोगदानां गदानाम् ।

नन्ता ऽ नन्ताङ्गमेवं वदति यमघनं भासुराणां सुराणां

पाता पातात् स वीरः कृतततमलिनज्ञानितान्तं नितान्तम् ॥ ९३ ॥

- स्रग्धरा (७, ७, ७)

जिनेश्वराणां स्तुतिः -

ये ऽ मेये मेरुमूर्धन्यतुलफलविधासत्तरूपात्तरूपा)

सस्नुः सस्नुत्यजीर्यद्दृषदि सुरजलैः प्रास्तमोहास्तमोहाः ।

जातौ जातौजसस्ते द्युतिचितिजितसत्कुन्ददन्ता ददन्ता-

मध्यामध्यानगम्याः प्रशममिह जिनाः पापदानां पदानाम् ॥ ९४ ॥

- स्रग्.

जिनवचनविचारः -

दोषो दोषोरुसिन्धुप्रतरणविधिषु न्यायशस्या यशस्याः

प्रादुः प्रादुष्कृतार्थाः कृतनतिषु जयं सम्पराये परा ये ।

ते शान्तेशां नखांशुच्छुरितसुरशिरोराजिनानाजिनाना -

मारामा राद्धिलक्ष्म्या वचनविधिलवा वो दिशन्तां दिशं ताम् ॥ ९५ ॥

- स्रग्.

अम्बादेव्याः स्तुतिः -

सिंहे ऽ सिं हेलया ऽ लं जयति खरनखैर्वीतनिष्ठे ऽ तनिष्ठे

शुक्ले शुक्क्लेशनाशं दिशति शुभकृतौ पण्डिते ऽ खण्डिते खम् ।

याते या तेजसा ऽऽ ढ्या तडिदिव जलदे भाति धीरा ऽ तिधीरा -

पत्या ऽऽ पत्यापनीयान्मुदितसमपराद्ध्याधमं बाध'मम्बा' ॥ ९६ ॥ २४ ॥

- स्रग्.

परिशिष्ट ६

श्रीबप्पभट्टिसूरिभिर्विरचितं

।। श्रीशारदा - स्तोत्रम् ।।

कलमरालविहङ्गमवाहना

सितदुकूलविभूषणलेपना ।

प्रणतभूमिरुहामृतसारिणी

प्रवरदेहविभाभरधारिणी ।। द्रुतविलम्बितम्

अमृतपूर्णकमण्डलुहारिणी

त्रिदशदानवमानवसेविता ।

भगवती परमैव सरस्वती

मम पुनातु सदा नयनाम्बुजम् ।। १ - २ ।। युग्मम्

जिनपतिप्रथिाखिलवाङ्मयी

गणधराननमण्डपनर्तकी ।

गुरुमुखाम्बुजखेलनहंसिका

विजयते जगति श्रुतदेवता ।। ३ ।। द्रुत.

अमृतदीधितिबिम्बसमाननां

त्रिजगतीजननिर्मितमाननाम् ।

नवरसामृतवीचिसरस्वतीं

प्रमुदितः प्रणमामि सरस्वतीम् ।। ४ ।। द्रुत.

विततकेतकपत्रविलोचने

विहितसंसृतिदुष्कृतमोचने !।

धवलपक्षविहङ्गमलाञ्छिते !

जय सरस्वति ! पूरितवाञ्छिते ! ॥ ५ ॥ द्रुत.

भवदनुग्रहलेशतरङ्गिता -

स्तदुचितं प्रवदन्ति विपश्चितः ।

नृपसभासु यतः कमलावला -

कुचकलाललनानि वितन्वते ॥ ६ ॥ द्रुत.

गतधना अपि हि त्वदनुग्रहात्

कलितकोमलवाक्यसुधोर्मयः ।

चकितबालकुरङ्गविलोचना

जनमनांसि हरन्तितरां नराः ॥ ७ ॥ द्रुत.

करसरोरुहखेलनचञ्चला

तव विभाति वरा जपमालिका ।

श्रुतपयोनिधिमध्यविकस्वरो-

ज्वलतरङ्गकलाग्रहसाग्रहा ॥ ८ ॥ द्रुत.

द्विरदकेसरिमारिभुजङ्गमा-

सहनतस्कराराजरुजां भयम् ।

तव गुणावलिगानतरङ्गिणां

न भविनां भवति श्रुतदेवते! ॥ ९ ॥ द्रुत.

ॐ ह्रीं क्लींव्लीं ततः श्रीं तदनु हसकलह्रीमथो ऐं नमो ऽ न्ते

लक्षं साक्षाज्जपेद् यः करसमविधिना सत्तपा ब्रह्मचारी ।

निर्यान्तीं चन्द्रबिम्बात् कलयति मनसा त्वां जगच्चन्द्रिकाभां

सो ऽ त्यर्थं वह्निकुण्डे विहितघृतहुतिः स्याद् दशांशेन विद्वान् ॥ १० ॥ स्रग्.

रे रे लक्षण - काव्य - नाटक - कथा - चम्पूसमालोकने

क्वायासं वितनोषि बालिश! मुधा किं नम्रवक्त्राम्बुजः ।

भक्त्या ऽऽ राधय मन्त्रराजमहसा ऽ नेनानिशं भारती

येन त्वं कविताविताजसविता ऽ द्वैतप्रबुद्धायसे ॥ ११ ॥ शार्दूल.

चश्चच्चन्द्रमुखी प्रसिद्धमहिमा स्वाच्छन्द्यराज्यप्रदा

नायासेन सुरासुरेश्वरगणैरभ्यर्चिता भक्तितः ।

देवी संस्तुतवैभवा मलयजालेपाङ्गरङ्गद्युतिः

सा मां पातु सरस्वती भगवती त्रैलोक्यसंजीविनी ॥ १२ ॥ शार्दूल.

स्तवनमेतदनेकगुणान्वितं

पठति यो भविकः प्रमनाः प्रगे ।

स सहसा मधुरैर्वचनामृतै -

र्नृपगणानपि रञ्जयति स्फुटम् ॥ १३ ॥ द्रुत.

परिशिष्टः ७

आचार्य बप्पभट्टिसूरिविरचिता

शान्तावेषापराभिधानं

साधारणजिनस्तवनम् ।

शान्तो वेषः शमसुखफलाः श्रोतृगम्या गिरन्ते

कान्तं रूपं व्यसनिषु दया साधुषु प्रेम शुभ्रम् ।

इत्थम्भूते हितकृतपेतस्त्वय्यसङ्गा विबोधे

प्रेमस्थाने किमिति कृपणा द्वेषमुत्पादयन्ति ॥ १ ॥

अतिशयवती सर्वा चेष्टा वचो हृदयङ्गमं

शमसुखफलः प्राप्तौ धर्मः स्फुटः शुभसंश्रयः ।

मनसि करुणा स्फीता रूपं परं नयनामृतं

किमिति सुमते! त्वय्यन्यः स्यात् प्रसादकरं सताम् ॥ २ ॥

निरस्तदोषे ऽपि तरीव वत्सले कृपात्मनि त्रातरि सौम्यदर्शने ।

हितोन्मुखे त्वय्यपि पराङ्मुखाः पराङ्मुखास्ते ननु सर्वसम्पदाम् ॥ ३ ॥

सर्वसत्त्वहितकारिणि नाथे न प्रसीदति मनस्त्वयि यस्य ।

मानुषाकृतितिरस्कृतमूर्तेरन्तरं किमिह तस्य पशोर्वा ॥ ४ ॥

त्वयि कारुणिके न यस्य भक्तिर्जगदभ्युद्धरणोद्यतस्वभावे ।

नहि तेन समो ऽधमः पृथिव्यामथवा नाथ! न भाजनं गुणानाम् ॥ ५ ॥

एवंविधे शास्तरि वीतदोषे महाकृपालौ परमार्थवैद्ये ।

मध्यस्थभावो ऽपि हि शोच्य एव प्रद्वेषदग्धेषु क एष वादः ॥ ६ ॥

न तानि चक्षूंषि न यैर्निरीक्ष्यसे न तानि चेतांसि न यैर्विचिन्त्यसे ।

न ता गिरो या न वदन्ति ते गुणान्न ते गुणा ये न भवन्तमाश्रिताः ॥ ७ ॥

तच्चक्षुर्दृश्यसे येन तन्मनो येन चिन्त्यसे

सज्जनानन्दजननी सा वाणी स्तूयसे यया ॥ ८ ॥

न तव यान्ति जिनेन्द्र! गुणा मिर्ति

मम तु शक्तिरुपैति परिक्षयम् ।

निगदितैर्बहुभिः किमिहापरै-

रपरिमाणगुणो ऽसि नमो ऽस्तु ते ॥ ९ ॥

परिशिष्ट ८

बप्पभट्टिसूरिकहाच्या हस्तलिखित संहितेतील

मूळ पाठ व सुधारित पाठ

अ. क्र.	गाथा क्र.	मूळ पाठ	सुधारित पाठ
१	१	सिरिहेमचंदसूरिपरो	सिरिहेमचंदसूरी
	१	चयारिक्ककरणतल्लिछो	परोवयारेक्करणतल्लिच्छो
२	८	सूपसिद्धो	सुपसिद्धो
३	९	जनएणं	जणएणं
४	११	भणीओ	भणिओ
५	११	अच्चोरहणं	अच्चोरहरणं
६	१४	जहट्ठिअस्साअच्छस्स	जहट्ठिअस्सत्थस्स
७	१८	संपई	संपइ
८	२४	चिरनेहुकंठाए	चिरनेहुक्कंठाए
९	२६	विन्नव्वइ	विन्नवइ
१०	२७	गिन्हज्जउ	गिण्हिज्जउ
११	२९	निल्लिभत्तं	निल्लोभत्तं
१२	३२	डूंबिम्मी	डुंबिम्मि
१३	३६	आयारिंगियकुशलेण	आयारिंगियकुसलेण
१४	४४	सविक्कमाणसो	सचितमाणसो
१५	४६	दट्ठूं	दट्ठुं
१६	५०	पारितप्पइ	परितप्पइ

१७	५१	ट हरिय कनो	टहरियकन्नो
१८	५२	अंतेअरियाहिं	अंतेउरियाहिं
१९	५८	अछमइ	अच्छमइ
२०	६१	संमूहो	सम्मुहो
२१	६२	विच्छडण	विच्छड्डेणं
२२	६६	संमं	समं
२३	८०	चडिओ	पडिओ
२४	९१	चिंतिउण	चिंतिऊण
२५	९४	काउणं	काऊण
२६	९४	समपिउं	समप्पिउं
२७	१०८	ईत्थ	इत्थ
२८	१२०	आम	आमो
२९	१४८	पव्वरो	शब्द घेऊ नये.
३०	१४९	सच्चा	सोच्चा
३१	१५७	दुवारमुहमी	दुवारमुहम्मि
३२	१६६	लज्जावनमवयणो	लज्जावनयवयणो
३३	१८२	सुरि	सूरि
३४	१८९	संचलिचलिओ	संचलिओ
३५	१९१	करेइमारुद्धो	करउमारद्धो
३६	१९७	मोहोह	मा होह
३७	१९९	वीरजिनंदस्स	वीरजिणिंदस्स
३८	२०६	दट्टसे	दृष्यसे

३९	२०८	वियप्वक्को	?
४०	२१०	नेमिजिणवंदत्थं	नेमिजिणवंदणत्थं
४१	२११	बप्पभत्ति	बप्पभट्टि
४२	२१८	रुसीयव्वं	रुसियब्बं
४३	२२०	चडओ	चडिओ
४४	२२९	वक्तुं	वत्तुं
४५	४६	नियम्विर्नी	नियम्बिर्नी
४६	१४१	वन्देऊणं	वन्देऊण
४७	२१६	विम्मविया	निम्मविया

परिशिष्ट ९

बप्पभट्टिसूरिकहाचा गाथानुक्रम

अ. क्र.	गाथा	गाथा क्र.
१०५	ता ए वि हु रयणीए	४५
१०६	ता उदयणेण भणियं	५
१०७	ता तेहिं चिय एसो	१८६
१०८	ता मन्ने रत्तीए	१८५
१०९	ता मित्तसंपओगो	१०५
११०	ताहे ससंभमेणं	१३६
१११	तिए भणिअं भयवं	८७
११२	तीए वि विलक्खाए	२२४
११३	तुम्हेहिं अणेगाच्चिअ	१९४
११४	ते के वि आत्थि	१७४
११५	तेणं अणगारेणं	८९
११६	तेण सचिवेण सिरी	१२२
११७	तो अणुलवइ धम्मनिवो	६८
११८	तो अणुवयणं भणियं	४३
११९	तो उदयणेण गुरुभत्ति	२३०
१२०	तो करुणाए सिरिबप्प	२१९
१२१	तो जनपरं पराए	२१३
१२२	तो तेणं कारवियं	१८९
१२३	तो नरवइस्स तइआ	७४
१२४	तो पंडिएहिं सव्वेहिं	९५
१२५	तो बप्पभट्टिणा विय	२१६
१२६	तो बप्पभट्टिसूरी पभणइ	८४
१२७	तो बप्पभट्टिसूरी सिर वाएण	२१५
१२८	तो बप्पभट्टिसूरी सिर	१२१
१२९	तो बप्पभट्टिसूरी संभरिओ	९६
१३०	तो बप्पभट्टिहत्थे	८०
१३१	तो बीअदिणे सिरिबप्पभट्टिणा	१८४
१३२	तो रयणिए सूरी	२२२
१३३	तो लज्जिउण गणिया	१६३
१३४	तो विम्हिइओ राया	१८२
१३५	तो सूरिहिं भणियं	१९
१३६	तो सूरिहिं भणीओ	११
१३७	दट्ठूण तत्थ सूरिं	१२०
१३८	देववंदणमज्झाओ	२२८
१३९	देसंतराओ केणवि	१५०
१४०	दो पुरिसे	२
१४१	धम्मनरिंदे इत्थंतरंमि	१३५

अ. क्र.	गाथा	गाथा क्र.
१४२	धम्मनरिंदो ताहे	११५
१४३	धम्मनिवस्स मिलित्ता	८५
१४४	धम्मसहाए सिरि	६४
१४५	धाराधरस्य धारायां	२०३
१४६	नरवइणा विन्नतं	१९२
१४७	नहमसि आईपई	१२
१४८	नियपरिवारसमेओ	६१
१४९	नियंमंतिराएणपुण पेसइ	१४०
१५०	निसुणित्तु इमं राया	४४
१५१	निहु चंकमंतीए	४२
१५२	पइगामं पइनगरं	२०९
१५३	पच्छावलो अणेणं	४८
१५४	पडिउवयारं काउं	३९
१५५	पडिगाहत्थंरन्ना	७७
१५६	पंडिअजणाण पुरओ	१८०
१५७	पंडिअपंचसयाणं	७१
१५८	पभणइ बप्पभट्टी	१३७
१५९	पभणेइ बप्पभट्टी एवं	१५९
१६०	परिहा तीरे कहिअं	१३४
१६१	पहु पसिऊणं संपई	१८
१६२	पारद्धा धम्मकहा	१७२
१६३	पासो पढम समस्साई	५३
१६४	पिअसंभरणपलुट्टं	१५१
१६५	पुन्निमरत्तीइ तओ	१७९
१६६	बीयदिणे मज्झन्ने	१४६
१६७	भणियं सूरिवरेणं	२८
१६८	भवनिव्वेयपहाणं सूरीहिं	१९८
१६९	मज्झ अवन्ना एसा	१७१
१७०	मंतिवरेण ताहे विन्नता	८२
१७१	मह पडिवक्खगिहंमि	१०९
१७२	महया विच्छडेणं	६२
१७३	मेलेऊणं संघं	२२७
१७४	मोहोह सुयग्गाही	१९७
१७५	यथा पइं मुक्काहिं	७६
१७६	येन त्वं दट्टसे देव	२०६
१७७	राया वि सूरिदिहिं	१५४
१७८	रेमेयः स्वेच्छया भृंग	२०५

संदर्भ सूची

१. अय्यंगार एस्. के., **द बप्पभट्टिचरित अँड द अर्लि हिस्टरी ऑफ द गुजरात एम्पायर,** जे.बी.बी.आर्. ए. एस्. व्हॉ. ३, मुंबई,१९२८.

२. उद्योतनसूरी, **कुवलयमाला,** संपा. - उपाध्ये ए. एन्., प्रका. सिंधी सीरीज जैन ग्रंथमाला, भारतीय विद्याभवन, बंबई, १९५९.

३. उपाध्ये ए. एन्., **'बप्पभट्टी अँड हिज तारागण ',** संबोधि खंड ३, भाग ४, एल्.डी. इन्स्टिट्यूट ऑफ इंडॉलॉजी, अहमदाबाद, १९७४ - ७५.

४. कोउहल, **लीलावईकहा,** संपा. उपाध्ये ए. एन्., प्रका. सिंधी सीरीज जैन ग्रंथमाला, भारतीय विद्याभवन, बंबई, १९४९.

५. कृष्णम्माचार्य व्ही., **बप्पभट्टिचरितम्** (प्रभाचंद्रकृत **प्रभावकचरिता**तील **बप्पभट्टिचरिता**चा संस्कृत गद्य सारांश), जे.बी.बी.आर्.ए. एस्. व्हॉ. ३, गव्हर्नमेंट ओरिएण्टल मॅन्युस्क्रिप्ट लायब्ररी, मद्रास.

६. गंगदास, **छंदोमंजरी,** संपा. भट्टाचार्य रामधन, मेट्रोपॉलिटन प्रिंटिंग अँड पब्लिशिंग हाउस लि., कलकत्ता, १९३५.

७. गोडबोले प.ब., **वृत्तदर्पण,** संपा. जोशी ना.ग., शतसंवत्सरी आवृत्ती, प्रका. गुड कम्पॅनियन्स बडोदे, १९५४.

८. घाटगे ए.एम्., **इंट्रोडक्शन टू अर्धमागधी,** सन्मतितीर्थ प्रकाशन, पुणे, १९९३.

९. चतुर्विजयमुनी, **जैन स्तोत्र संदोह** (प्राचीन स्तोत्र संदोह), भाग पहिला, प्र.आ., प्रका. साराभाई मणिलाल नवाब, अहमदाबाद, १९३२.

१०. जयवल्लभ, **वज्जालग्गम्,** संपा. पटवर्धन एम्.व्ही., प्राकृत टेक्स्ट सोसायटी, अहमदाबाद ९, १९६९.

११. जिनप्रभसूरी, **विविध तीर्थकल्प,** संपा. जिनविजयमुनी, प्रका. सिंधी जैन ज्ञानपीठ, १९३४.

१२. जोग रा. श्री., **अभिनव काव्यप्रकाश,** व्हीनस प्रकाशन, ४१०, शनिवार पेठ, पुणे - २.

१३. जैन जगदीशचंद्र, **प्राकृत साहित्यका इतिहास,** चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी - १, १९६१.

१४. जैन प्रेमसुमन, **कुवलयमाला का सांस्कृतिक अध्ययन,** प्रका. प्राकृत जैन शास्त्र एवं अहिंसा शोध - संस्थान, वैशाली, बिहार, १९७५.

१५. त्रिपुटी महाराज, **जैन परंपरानु इतिहास,** भाग १, प्र. आ., प्रका. भिखाबाई शाह आणि चंदुलाल परीख, अहमदाबाद - मुंबई , **१९५२.**

१६. देशपांडे ग. त्र्यं. व निजसुरे पु. गो., **अलंकार प्रदीप,** ठाकूर आणि कं. लि., अमरावती, १९६६.

१७. प्रद्युम्नसूरी, **विचारसारप्रकरण,** प्रका. आगमोदय समिती, भावनगर, १९२३.

१८. प्रभाचंद्रसूरी, **प्रभावकचरित,** प्रथम भाग, प्र. आ., संपा. जिनविजय, सिंधी जैन ग्रंथमाला, अहमदाबाद - कलकत्ता, १९४०.

१९. फोगल आर्. एच्., **द इमेजरी ऑफ कीट्स अँड शेली,** युनिव्हर्सिटी ऑफ नॉर्थ कॅरोलिन प्रेस, यू. एस्. ए., १९४९.

२०. बप्पभट्टिसूरी, **चतुर्विंशतिका,** संपा. व अनु. हिरालाल रसिकदास कापडिया, आगमोदय समिती, निर्णयसागर मुद्रणालय, मुंबई, १९२६.

२१. बप्पभट्टिसूरी, **तारागण,** संपा. हरिवल्लभ चुनीलाल भायाणी, प्र. आ., प्राकृत ग्रंथ परिशोध, क्रमांक २४, अहमदाबाद, १९८७.

२२. बप्पभट्टिसूरी, **वीरस्तुती / साधारण जिनस्तवन,** संपा. चतुर्विजय, जैन स्तोत्र संदोह, भाग १, प्र. आ., अहमदाबाद, १९३२.

२३. बप्पभट्टिसूरी, **शारदा स्तोत्र,** संपा. व अनु. हिरालाल रसिकदास कापडिया, आगमोदय समिती, निर्णयसागर मुद्रणालय, मुंबई, १९२६.

२४. मम्मट, **काव्यप्रकाश,** संपा. बनहट्टी द. ना., ति. आ., निर्णयसागर मुद्रणालय, १९१७.

२५. मेरुतुंग, **प्रबंध चिंतामणी,** प्रका. रामचंद्र दीनानाथ, बॉम्बे, १८८८.

२६. मोनियर विल्यम्स, **अ संस्कृत - इंग्लिश डिक्शनरी,** मोतीलाल बनारसीदास, पुनर्मुद्रण, दिल्ली, १९९५.

२७. मोल्सवर्थ, **मराठी - इंग्लिश डिक्शनरी,** संपा. डॉ. कालेलकर एन्. जी., सहावी आवृत्ती, शुभदा सारस्वत प्रकाशन, पुणे - ४११००५, १९९६.

२८. रविवर्धनगणि, **पट्टावली,** पंडित एम्. बी. व उटगीकर एन्. बी., प्रस्तावना, गौडवहोवरून उद्धृत, दु. आ., भांडारकर ओरिएंटल रिसर्च इन्स्टिट्यूट, पुणे, १९२७.

२९. राजशेखरसूरी, **प्रबन्धकोश,** प्रथम भाग, संपा. जिनविजयमुनी, प्र. आ., सिंधी जैन ग्रंथ माला, शांतिनिकेतन, १९३५.

३०. वाक्पती, **द गौडवहो**, अनु. पंडित एम्. बी. आणि उटगीकर एन्. बी., दु. आ., भांडारकर ओरिएंटल रिसर्च इन्स्टिट्यूट, पुणे, १९२७.

३१. वाटवे के. ना., **संस्कृत काव्याचे पंचप्राण**, संपा. केळकर मनोहर म., प्र. आ., पुणे, १९४७.

३२. विश्वनाथ, **साहित्यदर्पण**, प्र. आ., संपा. प्रा. बादरायणी ब. गो., प्रका. स्कूल अँड कॉलेज बुक स्टॉल, कोल्हापूर - २, १८८६.

३३. वेलणकर एच्. डी., **जिनरत्नकोश** - भाग १, भांडारकर ओरिएंटल रिसर्च इन्स्टिट्यूट, पुणे - ४.

३४. शास्त्री नेमिचंद्र, **अभिनव प्राकृत व्याकरण**, तारा पब्लिकेशन्स, वाराणसी, १९६३.

३५. शास्त्री नेमिचंद्र, **प्राकृत भाषा और साहित्यका आलोचनात्मक इतिहास**, पुनर्मुद्रण, तारा बुक एजन्सी, वाराणसी, १९८८.

३६. शास्त्री नेमिचंद्र, **हरिभद्रके प्राकृत कथासाहित्यका आलोचनात्मक परिशीलन**, रिसर्च इन्स्टिट्यूट ऑफ प्राकृत जैनॉलॉजी अँड अहिंसा, वैशाली (बिहार), मुजफ्फरपूर, १९६५.

३७. शास्त्री नृसिंहदेव, **वृत्तरत्नाकर**, मेहरचंद लछमनदास, दिल्ली - ६, १९७१.

३८. संघमित्रा साध्वी, **जैन धर्म के प्रभावक आचार्य**, जैन विश्वभारती प्रेस, लाडनु.

३९. समयसुंदर, **गाथासहस्री**, संपा. जिनरत्नसूरी, प्राचीन पुस्तकोद्धार फंड, सुरत, १९४०.

४०. सुंदरसूरी, **उपदेशसाररत्नाकर**, प्रका. देवचंद्र लालभाई जैन, पुस्तकोद्धार ग्रंथमाला, बम्बई, १९१४.

४१. सुरू एन्. जी., **गौडवहो**, प्राकृत ग्रंथ परिषद, ग्रंथांक १८, अहमदाबाद - ९, वाराणसी - ५, १९७५.

४२. सेठ हरगोविंददास त्रिकमचंद, **पाईय - सद्द - महण्णवो**, मोतीलाल बनारसीदास, ४१ यू. ए. बंगलो रोड, जवाहरनगर, दिल्ली - ११०००७.

४३. हडसन डब्ल्यू. एच्., **इंट्रोडक्शन टू द स्टडी ऑफ लिटरेचर**, दु. आ., पुनर्मुद्रित, जॉर्ज जी. हॅरप अँड को., लंडन, १९४६.

४४. हाल, **गाथासप्तशती**, गंगाधर भट्ट टीकेसहित, काव्यमाला ग्रंथांक ३१, निर्णयसागर प्रेस, बम्बई.

४५. हेमचंद्र, **सिद्ध हेमशब्दानुशासन**, ८ वा अध्याय, संपा. पी. एल्. वैद्य, प्रका. भांडारकर ओरिएंटल रिसर्च इन्स्टिट्यूट, पूना, संशोधित प्रत, १९५८.